जैन विश्वभारती संस्थान

लाडनूं - ३४१३०६ (राज.)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

वाणिज्य स्नातक-तृतीय वर्ष
Bachelor of Commerce (Third Year)

पंचम पत्र
Paper-V

वित्तीय प्रबन्धन
Financial Management

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

COPYRIGHT
Jain Vishva Bharati Insitute, Ladnun

Written By :
Dr. V.D. Dave (Section-A,B,C)
Sh. Rakesh Kankani (Section-D)

Edition : 2013

Printed Copies : 200

Printed By:

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

	vuØef.kdk (Contents)	
[k.M&v	वित्तीय प्रबन्ध–अर्थ, उद्देश्य, लाभ, लाभ अधिकतम करना बनाम सम्पदा अधिकतम, वित्तीय कार्य, वित्तीय नियोजन, पूंजी बजटन	01–58
[k.M&c	पूंजी की लागत, पूंजी की संरचना	59–88
[k.M& l	परिचालन एवं वित्तीय उत्तोलक, लाभांश नीतियां	89–148
[k.M&n	कार्यशील पूंजी–अर्थ, प्रकृति महत्व, निर्धारण घटक, कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध, रोकड़ का प्रबन्ध, प्राप्योंका प्रबन्ध, स्कन्ध प्रबन्ध	149–200

खण्ड–अ

वित्तीय प्रबन्ध के उद्देश्य (Financial Goals)

वित्त का कुशल प्रबन्ध एक व्यवसायिक प्रतिष्ठान को ऊचाईयों की और ले जाती हैं। वही इसका सही प्रबन्ध न होने के कारण व्यवसायिक प्रतिष्ठान बन्द होने के कगार पर आ जाते हैं अतः हमें वित्त का प्रबन्ध विवेक से करना चाहिए।

एक व्यावसायिक उपक्रम में वित्तीय प्रबन्ध के उद्देश्य क्या होते हैं? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। संकुचित दृष्टिकोण से देखने पर कहा जा सकता है कि वित्तीय प्रबन्ध का तात्कालिक उद्देश्य उपक्रम के लिए पर्याप्त तरल एवं लाभदायक वित्त की व्यवस्था करना होता है। परन्तु विस्तृत रूप से देखने पर कहा जा सकता है कि वित्तीय प्रबन्ध का उद्देश्य फर्म के उद्देश्य की प्राप्ति में अधिकतम सहायता पहुँचाना होता है।

एक संगठन के वित्तीय प्रबन्ध को निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहिए :–

- कोषों की पर्याप्त एवं नियमित आपूर्ति।
- स्वामियों को उचित प्रतिफल दिलवाना।
- पूँजी का कुशलतम उपयोग करना।
- पूँजी की न्यूनतम लागत संभव बनाना।
- प्रतिभूतियों का मितव्ययतापूर्वक संयोजन।

इस बात पर सामान्य सहमति है कि फर्म का वित्तीय उद्देश्य फर्म के स्वामियों के आर्थिक कल्याण को अधिकतम करना होना चाहिए। स्वामियों के आर्थिक कल्याण को किस प्रकार अधिकतम किया जा सकता है, इसके लिए अत्यधिक चर्चित दो आधार बताये जाते हैं, से हैं–(i) लाभ को अधिकतम करना; तथा (ii) सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करना। हम इन दोनों ही आधारों का अध्ययन करेंगे तथा यह स्पष्ट करेंगे कि स्वामियों के कल्याण को अधिकतम करने के लिए सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करने का आधार व्यवहार में लागू करने की दृष्टि से अधिक प्रामाणिक आधार है ।

I. लाभ को अधिकतम करना :–

परम्परागत रूप से व्यवसाय को एक आर्थिक संस्था माना गया है तथा संस्था की कुशलता को जाँचने के लिए लाभ को एक अच्छा प्रमाप माना गया है। इसलिए व्यवसाय का यह एक प्राकृतिक उद्देश्य है कि अधिकतम लाभ अर्जित करे।

लाभ को अधिकतम करने के सिद्धान्त के पक्ष में तर्क अथवा इसके गुण–लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य की उपयुक्तता को निम्नलिखित तर्को के आधार पर न्यायोचित बताया जाता है (पक्ष में तर्क) :–

(1) **लाभ अधिकतम करना विवेक के आधार पर ठीक है :–** एक व्यक्ति कोई आर्थिक क्रिया विवेकपूर्ण ढंग से करता है तो उसका उद्देश्य उपयोगिता को अधिकतम करना होता है । यह तर्क दिया जाता है कि उपयोगिता को लाभ के रूप में मापा जा सकता है। अतः विवेक के आधार पर लाभ को अधिकतम करना उचित ठहराया जा सकता है।

(2) **आर्थिक कुशलता का सूचकः–** एक उपक्रम में लाभ उसकी आर्थिक कुशलता का सूचक होता है जबकि हानि आर्थिक अकुशलता का।

(3) **साधनों का कुशल आबंटन एवं उपयोग :–** उपलब्ध साधनों का कुशल आबंटन एवं प्रयोग लाभ के आधार पर किया जा सकता है। वित्तीय प्रबन्ध साधनों को कम लाभदायक उपयोगों से निकाल कर अधिक लाभदायक उपयोगों में लगाता है जिससे कुशलता बढ़ती है ।

(4) **व्यावसायिक निर्णयों की सफलता का मापक** :– सभी व्यावसायिक निर्णय लाभोपार्जन के उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिये जाते है, अतः लाभ निर्णयों की सफलता का प्रमुख मापक है। एक उपक्रम अपने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उत्पादन, विक्रय तथा निष्पादन में कुशलता अर्जित करके ही लाभ अर्जित कर सकता है, प्रबन्ध का कोई अथवा निर्णय सफल हुआ है अथवा नहीं, इसका मापन लाभ के आधार पर किया जा सकता है।

(5) **प्रेरणा का स्त्रोत** :– लाभ व्यवसाय में प्रेरणा का एक प्रमुख स्त्रोत होता है। अधिक लाभ अर्जित करने के लिए फर्म अन्य फर्मो से अधिक कुशल बनने का प्रयत्न करती है, अतः लाभ व्यावसायिक कुशलता का आधार है। यदि व्यावसायिक उपक्रमों में लाभ की प्रेरणा समाप्त कर दी जाये तो प्रतियोगिता का अन्त हो जायेगा तथा इससे विकास एवं प्रगति की दर धीमी पड़ जायेगी।

(6) **सामाजिक लाभ को अधिकतम बनाना** :– एक फर्म अपने लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य का पालन करके समाजिक आर्थिक कल्याण को अधिकतम करती है, क्योंकि फर्म लाभ अर्जित करके ही विभिन्न सामाजिक कार्यो, जैसे–शिक्षा, चिकित्सा, श्रम क्ल्याण, आवास, मनोरंजन आदि पर व्यय करके लोगों के कल्याण को बढ़ा सकती है ।

व्यवसाय के लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य की पिछले वर्षो में अनेक आलोचनाएँ की गई है (विपक्ष में तर्क)। प्रथम– अब अनेक विद्वानो द्वारा यह माना जाता है कि एक व्यवसाय लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य केवल पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ही प्राप्त कर सकता है, जबकि आजकल सभी देशों में तथा सभी बाजारों में अपूर्ण प्रतियोगिता देखने को मिलती है। अतः अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य उचित नहीं जान पड़ता है। द्वितीय–यह भी कहा जाता है कि जब 19वीं शताब्दी के आरम्भ में लाभ अधिकतम करने को व्यवसाय का उद्देश्य स्वीकार किया गया, उस समय व्यवसाय के ढ़ाँचे की विशेषताएँ स्वयं का वित्त, निजी सम्पत्ति तथा एकाकी संगठन थे। एकाकी स्वामी के उद्देश्य अपनी निजी सम्पत्ति एवं शक्ति को बढ़ाना होता था जो लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य द्वारा सन्तुष्ट किये जा सकते थे। परन्तु आधुनिक व्यवसाय की प्रमुख विशेषताएँ सीमित दायित्व एवं प्रबन्ध तथा स्वामित्व में पृथक्करण हैं। आज व्यवसाय के लिए वित्त की व्यवस्था अंशधारियों तथा लेनदारों द्वारा की जाती है तथा उसका प्रबन्ध पेशेवर प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है। तृतीय–व्यवसाय से अन्य पक्षकार ग्राहक,कर्मचारी, सरकार एवं समाज भी सम्बन्धित होते हैं। परिवर्तित व्यावसायिक ढ़ाँचे के अन्तर्गत स्वामी प्रबन्धक का स्थान पेशेवर प्रबन्धकों ने ले लिया है, जिसे व्यवसाय से सम्बन्धित सभी पक्षों के विभिन्न टकराव वाले हितों में मेल बैठाना होता है। इस नवीन व्यावसायिक वातावरण में लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य अवास्तविक, कठिन तथा अनैतिक लगता है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के अतिरिक्त लाभ को अधिकतम करने का विचार व्यवसाय के स्वामियों के आर्थिक कल्याण को प्राप्त करने के आधार के रुप में भी अव्यावहारिक लगता है। इसके द्वारा वैकल्पिक कार्या का श्रेणीबद्ध करना सम्भव नहीं हैं।

लाभ को अधिकतम करने के सिद्धान्त की आलोचनाएँ अथवा विपक्ष में तर्क लाभ को अधिकतम करने के सिद्धान्त को निम्न आधारों पर आलोचना की जाती है।

(1) **अस्पष्ट धारणा** :– लाभ की धारणा एक अस्पष्ट धारणा है। फर्म अल्पकालीन लाभ को अधिकतम करे तथा दीर्धकालीन लाभ को? लाभ के अनेक रुप हो सकते हैं, जैसे – सकल लाभ, ब्याज एवं कर के पूर्व लाभ, कर के बाद लाभ, शुद्ध लाभ आदि। इसमें से कौन से लाभ को अधिकतम किया जाये।

(2) **मुद्रा के समय मूल्य की उपेक्षा** :– लाभ को अधिकतम करने के उद्धेश्य की इस आधार पर भी आलोचना की जाती है कि यह विभिन्न समय अवधियों में प्राप्त की गई लाभ की राशियों में अन्तर नहीं करता हे अर्थात् यह मुद्रा के समय मूल्य को महत्व नहीं देता हैं आज जो लाभ होता है तथा एक साल दो अथवा अधिक सालों बाद प्राप्त होने वाले लाभ मुद्रा के मूल्य की दृष्टि से समान नहीं हो सकते है। आज प्राप्त होने वाले एक रुपये का मूल्य आज से एक साल बाद प्राप्त होने एक रुपये के मूल्य से निश्चित रुप से अधिक होगा। इसका कारण है कि इससे मुद्रा का समय मूल्य कहा जाता है, जिसकी इस विचारधारा द्वारा उपेक्षा की जाती है।

(3) **भावी क्रियाओं से लाभ के उत्कर्ष तत्व की उपेक्षा** :– यह सिद्धान्त लाभ के उत्कर्ष तत्व की ओर ध्यान नहीं देता है। किसी कार्य के करने पर प्राप्त होने वाले लाभ की निश्चिता का अंश अधिक अथवा अनिश्चितता का कम मात्रा में हो सकता है जोखिम की न्यून मात्रा का प्रतीक होता है, जबकि किसी कार्य में अनिश्चितता अधिक हो सकती है जो अधिक जोखिम का प्रतीक होगा। किसी कार्य के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

फलस्वरुप लाभ की निश्चितता अधिक परन्तु थोड़ा कम लाभ हो, इसके विपरीत लाभ की अधिकता परन्तु बहुत अधिक अनिश्चितता हो, तो पहली स्थिति को अधिक पसन्द किया जाना चाहिए। यह सिद्धान्त इस पर विचार नहीं करता है।

(4) व्यवसाय के सामाजिक दायित्व की उपेक्षा :– यह विचारधारा स्वामियों के लाभ को अधिकतम करता है तथा व्यवसाय के सामाजिक दायित्व की उपेक्षा करता है। इसमें श्रमिकों, उपभोक्ताओं, सामान्य जनता व सरकार की उपेक्षा की गई है।

पूर्वोक्त अध्ययन के बाद यह कहा जा सकता है कि लाभ को अधिकतम करने का उद्धेश्य आज की परिवर्तित व्यावसायिक परिस्थितियों में ठीक नहीं जान पड़ता तथा इसको व्यवहार में वित्तीय निर्णयों पर लागू करना भी कठिन है।

(II) सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करने का सिद्धान्त :–

अब लाभ को अधिकत करने के स्थान पर फर्म की सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करना व्यवसाय का मूल उद्धेश्य माना जाता है।, अतः वित्तीय प्रबन्ध का उद्धेश्य भी फर्म की सम्पदा के मूल्य का अधिक करना होता है। वित्तीय प्रबन्ध को फर्म के लिए ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे फर्म की सम्पदा का मूल्य बढ़ता है तथा ऐसे कार्य नहीं करने चाहिए जिससे सम्पदा का मूल्य कम होता हैं वह कार्य अवश्य किया जाना चाहिए जिससे सम्पदा का निर्माण होता है तथा फर्म का शुद्ध मूल्य बढ़ता है। यदि वित्तीय प्रबन्ध के सामने एक से अधिक वैकल्पिक कार्यो में किसी एक को चुनने की समस्या हो, तो वह कार्य चुना जाना चाहिए क्योंकि इससे फर्म की सम्पदा के मूल्य में वृद्धि होती है। किसी कार्य का शुद्ध वर्तमान मूल्य उस कार्य से प्राप्त कुल वर्तमान मूल्य में से उस कार्य में की गई प्रारम्भिक पूँजी विनियोजन की राशि को घटाने से प्राप्त हो सकता है।

सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करने का सिद्धान्त परिवर्तित व्यावसायिक परिस्थितियों में निगमित उपक्रमों के लिए भी उपयुक्त होता है। यह सिद्धान्त सम्भावित लाभों के समय मूल्य को मान्यता देता है तथा जोखिम एवं अनिश्चितता का भी विश्लेषण करता हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार विभिन्न विकल्पों का चुनाव किया जा सकता है।

जो कम्पनियां साधारण अंश निर्गमित करती हे तथा जिनके अंशो का मूल्य बाजार में उद्धत किया जाता है, उनमें अंशो के बाजार मूल्य के आधार पर यह देखा जाता है कि कम्पनी की सम्पत्तियों का मूल्य बढ़ रहा है अथवा नही। अंशो का बाजार मूल्य कम्पनी की सम्पत्तियों के मूल्य को व्यक्त करता है। कम्पनी के अंशधारियों की विनियोजित सम्पत्ति तभी बढ़ती है जब उसके अंशो के बाजार मूल्य में बढ़ोत्तरी हो। कम्पनी के अंशो का मूल्य उसके द्वारा अर्जित लाभों की मात्रा से प्रभावित होता है, परन्तु यह भी सम्भव है कि लाभ कमाने वाली कम्पनियों के अंशो के बाजार मूल्य में पर्याप्त वृद्धि न हो, क्योकि अंशो का बाजार मूल्य कम्पनी लाभ कमाने वाली कम्पनियों के अंशो के बाजार मूल्य में पर्याप्त वृद्धि न हो, क्योंकि अंशो का बाजार मूल्य कम्पनी लाभ की मात्र के साथ–साथ उसके भावी लाभ कमाने की क्षमता, कम्पनी की लाभांश नीति, सम्पत्तियों की तरलता तथा कम्पनी की शोधन क्षमता जेसे अन्य तत्वों पर भी निर्भर करता है। इसीलिए दो अथवा अधिक कम्पनियों में लाभ की मात्रा समान होने पर भी उनके अंशो के बाजार मूल्यों में भिन्नता होती है। कम्पनी के अंशो का बाजार मूल्य कम्पनी की समृद्धि तथा सम्पन्नता का सूचक तथा प्रबन्ध की कुशलता का प्रतीक माना जाता है। इसीलिए वित्तीय प्रबन्ध का उद्धेश्य उपक्रम की सम्पत्तियों के मूल्यों को अधिकतम करना होना चाहिए। निगमित उपक्रमों में यदि अंशो का मूल्य एक लम्बे समय में लगातार बढ़ रहा है तो यह कहा जा सकता है। कि वित्त प्रबन्ध निगम उद्धेश्यों की पूर्ति में सक्षम रहा है।

सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करने के सिद्धान्त के गुण–सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करने के सिद्धान्त के निम्न लाभ है –

- सम्पदा मूल्य अधिकतम करना एक स्पष्ट कारण है, इसमें भावी रोकड़ प्रवाहों का वर्तमान मूल्य लिया जाता है।
- यह सिद्धान्त मुद्रा के समय मूल्य पर विचार करता है, जिससे रोकड़ प्रवाहों को वर्तमान मूल्य के आधार पर प्रबन्ध महत्वपूर्ण निर्णय ले सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

- इस सिद्धान्त को सार्वभौमिक स्वीकृति प्राप्त हुई है, क्योंकि यह वित्तीय संस्थाओं, स्वामियों कर्मचारियों तथा समाज सब के हित का ध्यान रखता है।

- यह सिद्धान्त प्रबन्ध को सुदृढ़ लाभांश नीति अपनाने का निर्देशन देता है जिसके समता अंशधारियों को अधिकतम प्रत्याय प्राप्त हो।

- यह सिद्धान्त जोखिम तत्त्व को विनियोग निर्णयों में आवश्यक महत्व प्रदान करता है।

एक फर्म जो अपने अंशाधारकों की सम्पत्ति का मूल्य अधिकतम बनाने का कार्य करती हूं उसे निम्न कार्य करने चाहिए :–

(1) **ऊँचे स्तर की जोखिमों से बचा जाए :–** यदि फर्म के दीर्घकालीन व्यावसायिक प्रचालनों को देखा जाये तो उसमें अनावश्यक तथा अधिक मात्रा वाली जोखिमों से बचना चाहिए। अधिक जोखिमपूर्ण कार्यो की तुलना में कम जोखिमपूर्ण तथा अधिक लाभदायकता वाले क्षेत्रो को चुनना चाहिए। ऊँचें स्तर की जोखिम की क्रियाएँ फर्म के लिए बड़ी घातक सिद्ध हो सकती है।

(2) **लागत में कमी :–** संस्था को एक तरह पूंजी की लागत कम करनी चाहिए अर्थात् साधन न्यूनतम लागत पर प्राप्त किये जावें तथा द्वितीय इसे अपने कार्यचालन की लागत को कम करना चाहिए।

(3) **लाभांश का भुगतान :–** लाभांशो का भुगतान फर्म तथा अंशधारियों की आवश्कताओं के अनुरुप होना चाहिए। फर्म के जीवन के प्रारम्भिक वर्षो में नीची दर से लाभांश दिया जाये तथा जैसे–जैसे फर्म परिपक्व हो तथा उसे विस्तार के लिए घन की कम आवश्यकता हो, वैसे–वैसे अधिक लाभांश बॉटा जाये। निरन्तर उपयुकत मात्रा में लाभांश दिये जाने पर विनियोक्ता आकर्षित होते है। फर्म के अंशो का बाजार मूल्य तथा फर्म की वर्तमान सम्पदा बढ़ती है।

(4) **विकास अथवा वृद्धि की प्राप्ति** :– एक फर्म को अपने वर्तमान मूल्य को अधिकतम करने के लिए अपने विक्रय तथा लाभों में वृद्धि करनी होती हैं अतः विकास एवं विस्तार की योजनाऐं बनाकर लागू करनी चाहिए। कोई भी संस्था या तो विकास करती है या उसका पतन हो जाता हैं इसलिए फर्म को सदैव विकास व विस्तार के लिए कार्यशील रहना चाहिए।

(5) **अंशो के बाजार मूल्य को बनाये रखना :–** जो प्रबन्ध फर्म की सम्पदा के मूल्य को अधिकतम करना चाहता है, उसका कर्तव्य है कि वह फर्म के अंशो का बाजार में ऊँचा मूल्य बनाये रखे। वित्तीय प्रबन्ध को उपक्रम के स्वस्थ्य के साथ–साथ स्वामि–हित भी अक्षण रखना होता है।

लाभ अधिकीकरण (PROFIT MAXIMISATION)

प्रत्येक व्यावसायिक उपक्रम का मूल उद्धेश्य उसके स्वामियों का हित साधन माना जाता है, जिसकी पूर्ति अधिकतम लाभोपार्जन द्वारा की जा सकती है अतः इस मापदण्ड के अनुसार उपक्रम के विनियोग, वित्तपूर्ति तथा लाभांश निणयों को लाभों को अधिकतम करने की ओर अभिमुख होना चाहिए अर्थात् उन सम्पत्तियों, परियोजनाओं एवं निर्णयों का चयन किया जाये जो अधिक लाभप्रद है तथा जो लाभप्रद नही हैं उन्हे अस्वीकार किया जाये। वित्तीय प्रबन्ध के इस उद्धेश्य को निम्नलिखित तर्को के आधार पर न्यायोचित बतलाया गया है।

(1) **विवेकपूर्ण** : किसी आर्थिक क्रिया को विवेकपूर्ण ढंग से करने का उद्धेश्य उपयोगिता को अधिकतम करना होता है। इस उपयोगिता को लाभ के रुप में मापा जा सकता है। अतः विवेक के आधार पर लाभ को अधिकतम करना उचित ठहराया जा सकता हैं

(2) **आर्थिक कुशलता का माप** : किसी भी व्यावसायिक उपक्रम में अर्जित किया गया लाभ उसकी उत्पादन कुशलता, विक्रय तथा प्रबन्धकीय कुशलता का परिणाम माना जाता है। अतः लाभ के आधार पर किसी व्यावसायिक उपक्रम की कार्य निष्पत्ति का मूल्यांकन किया जा सकता है क्योंकि लाभ में वृद्धि उत्पादन को अधिकतम अथवा लागतों को न्यूनतम करके ही की जा सकती हैं

(3) **प्रमुख प्रेरणा स्त्रोत** : लाभ व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को काठोर परिश्रम एवं कडी प्रतिस्पर्धा द्वारा एक दूसरे से अधिक कुशल बनाने का मार्ग प्रशस्त करता है। यदि लाभ का आकर्षण समाप्त कर दिया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जाये तो पारस्परिक प्रतिस्पर्धा एवं प्रतियोगिता का कोई स्थान नही रह जायेगा । ऐसी स्थिति में विकास एवं प्रगति की गति भी धीमी हो जायेगी ।

(4) **अधिकतम सामाजिक कल्याण** : अधिक लाभ होने पर ही एक उपम्रम विभिन्न सामाजिक कार्यो जैसे – शिक्षा, चिकित्सा, श्रम कल्याण आदि पर व्यय करके समाज का अधिकतम कल्याण कर सकता है ।

(5) **निर्णयन का आधार** : व्यवसाय में सभी निर्णय लाभोपार्जन के उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही लिये जाते है। यही निर्णय की सफलता का मूल आधार है ।

उपर्युक्त तर्को के आधार पर व्यवसाय का लाभ अधिकीकरण का उद्देश्य न्यायोचित होते हुए भी इसकी पिछले कुछ वर्षो से अनेक आलोचनाएँ की गई है । प्रथम, लाभ अधिकतम करने वाली संस्था श्रमिकों एवं उपभोक्ताओं का शोषण करती है। इसलिए यह अनैतिक है तथा भ्रष्ट तरीकों को बढ़ावा देती है। इसके अतिरिक्त यह सामाजिक असमानताओं की और अग्रसर होती हैं एंव मानवीय मूल्यों जो कि एक आदर्श सामाजिक पद्धति के लिए अनिवार्य है, का हनन करती हैं द्वितीय, अब अनेक विद्वानों का यह मत है कि लाभ अधिकतम करने का उद्धेश्य पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ही प्राप्त किया जा सकता है। अपूर्ण प्रतियोगिता में अपूर्ण प्रतियोगिता ही दिखलाई पड़ती है तृतीय लाभ अधिकतम करना 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में व्यवसाय का प्रमुख उद्धेश्य माना गया था। उस समय व्यावसायिक ढाँचे की विशेषताऐं स्ववित्त में पृथक्करण है। अब व्यवसाय का प्रबन्ध पूर्व की भांति व्यवसाय की विशेषताएँ सीमित दायित्व एवं प्रबन्ध तथा स्वामित्व में पृथक्ककरण हैं अब व्यवसाय का प्रबन्ध पूर्व की भांति व्यवसाय स्वामियों द्वारा न किया जाकर पेशेवर प्रबन्धकों द्वारा किया जाता हैं जो अनके परस्पर विरोधी हितों (ग्राहक, कर्मचारी, सरकार एवं समाज) में उचित सामंजस्य रखकर ही व्यवसाय को लाभप्रद स्थिति में रखने में सफल हो सकते है। अतः इस नवीन व्यावसायिक वातावरण में लाभ अधिकीरण का उद्धेश्य अवास्तविक, कठिन, अनुचित तथा अनैतिक लगता हैं इतना ही नहीं, बल्कि निम्नलिखित कमियों के आधार पर लाभ अधिकीरण व्यवसाय स्वामियों के अधिकतम आर्थिक कल्याण के मापदण्ड के रुप में अस्वीकार किया जा चुका है।

(1) **अस्पष्टः** वित्तीय निर्णय के लिए लाभ अधिकतम करने के मापदण्ड की एक कठिनाई लाभ की अस्पष्ट अवधारणा हैं फर्म अल्पकालीन लाभ को अधिकतम करे तथा दीर्धकालीन लाभ को ? लाभ के अनेक स्वरुप हो सकते है। जैसे–सकल लाभ, ब्याज एवं कर के पूर्व लाभ, कर के पश्चात लाभ, शुद्ध लाभ आदि । इनमें से कौन से लाभ को अधिकतम किया जाये?

(2) **मुद्रा के समय मूल्य की अवहेलनाः** लाभ अधिकीकरण का उद्धेश्य विभिन्न समय अवधियों में प्राप्त की गई लाभ की राशियों कें अन्तर नहीं करता है। इसमें विभिन्न वर्षो में प्राप्त आय को समान महत्व प्रदान किया जाता है। जो कि सिद्धान्ततः सही नहीं हैं आज प्राप्त होने वाले एक रुपये का वर्तमान मूल्य एक या दो वर्ष बाद प्राप्त होने वाले रुपये के समान नहीं होगा, बल्कि निश्चित रुप से अधिक होगा।

(3) **जोखिम की अवहेलनाः** किसी कार्य से भावी वर्षो में प्राप्त होने वाली आय में निश्चतता या अनिश्चितता का अंश अधिक या कम मात्र में हो सकता हैं जो न्यूनाधिक जोखिम का प्रतीक माना जायेगा। उदाहरणार्थ, दो फर्मो की सम्भावित अर्जनों का योग समान हो सकता है।, किन्तु यदि एक फर्म की अर्जनें दूसरी की तुलना में अधिक बढ़ती–घटती हो तो यह अधिक जोखिपूर्ण होगी।

(4) **व्यवसाय के सामजिक दायित्व की अवहेलनाः** लाभ अधिकीरण का उद्धेश्य व्यवसाय के सामाजिक दायित्व पर विचार नहीं करता। इसमें श्रमिकों, उपभोक्ताओं सरकार एवं सामान्य जनता के हितों की अवहेलना की जाती हैं केवल लाभ अधिकरण का उदेश्य प्रबन्धकों को भ्रमित कर सकता है। इससे उसके द्वारा शोध, अधिशाषी विकास एवं अन्य अपूर्ण विनियोगो की अवहेलना करने में संस्था का अस्थित्व खतरे में पड़ सकता हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वित्तीय प्रबन्ध का लाभ अधिकरण का उद्धेश्य के रुप में एक पुरातन सिद्धान्त की माना जाता हैं मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार भी अधिकतम लाभ के विचार को शोषण का प्रतीक माना जाता हैं इस कथन के बार में मतभेद हो सकता हैं, किन्तु सत्य है कि अपूर्ण प्रतियोगिता में लाभ अधिकीकरण का सिद्धान्त निश्चत ही आर्थिक सत्ता के केन्द्रीयकरण व एकाधिकारी प्रवृत्तियों को जन्म देगा। यही कारण है कि अब वित्तीय प्रबन्ध का मुख्य उद्धेश्य लाभ अधिकीकरण के स्थान पर सम्पदा अधिकतम करना माना जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सम्पदा अधिकीकरण :-(WEALTH MAXIMISATION)

लाभ अधिकीकरण का उद्धेश्य जैसाकि विवेचित किया जा चुका हैं, केवल अस्पष्ट एवं संदिग्ध ही नही बल्कि वित्तीय प्रबन्ध के दो महत्वपूर्ण आयाम–(1) जोखिम तथा (2) मुद्रा के समय मूल्य की भी अवहेलना करता है। इसलिए वित्तीय प्रबन्ध के निर्णय मापदंड के रुप में अब लाभ अधिकतम करने के उद्धेश्य का स्थान सम्पदा अधिकतम करने के उद्धेश्य ने ले लिया इसे मूल्य अधिकरण या शुद्ध वर्तमान मूल्य अधिकरण भी कहा जाता हैं स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के.प्रो. इजरा सोलोमन के अनुसार एक व्यवसाय के वित्तीय प्रबन्ध का मुख्य उद्धेश्य उसकी सम्पदा अधिकरण होना चाहिए। उनके ही अनुसार यह एक ऐसा केन्द्र बिन्दु है जिस पर व्यवसाय के अन्य सभी उद्धेश्य निर्भर करते है। प्रो. इरविन फ्रेण्ड ने भी इसकी मत का समर्थन करते हुए व्यवसाय का उद्धेश्य विशुद्ध सम्पत्तियों के मूल्य में वृद्धि करना बतलाया है।

अंशधारियों की सम्पदा अधिकीरण का आशय प्रबन्ध द्वारा कम्पनी के स्वामियों की सम्भावित भावी प्रत्याय के वर्तमान मूल्य को अधिकतम करना है। यह प्रत्याय सामयिक लाभांश भुगतान अथवा समता अंशो की बिक्री से प्राप्त राशि हो सकती हैं। जबकि वर्तमान मूल्य किसी उचित बट्टा दर पर मूल्यांकित भावी भुगतानों का आज का मूल्य होता हैं बट्टा दर का निर्धारण किसी विशिष्ट समयावधि में वैकल्पिक विनियोजन से मिलने वाली प्रत्याय के आधार पर किया जाता हैं इस प्रकार शुद्ध वर्तमान मूल्य में वृद्धि होने से विनियोजन मूल्य बढ़ जावेंगे फलतः इससे अंशो के बाजार मूल्य में वृद्धि होगी। स्वामियों की सम्पदा कम्पनी के अंशो के बाजार मूल्य के रुप में परिलक्षित होती हैं अतः सम्पदा अधिकीरण के सिद्धान्त के अनुसार वित्तीय प्रबनध का मूलभूत उद्धेश्य कम्पनी के समता अंशों के बाजार मूल्य में अधिकतम वृद्धि करना होना चाहिये, क्योंकि अंशधारियों की विनियोजित सम्पत्ति तभी बढ़ती है जब उनके अंशो के बाजार मूल्य में वृद्धि हो। दीर्घकाल में संस्था का मूल्य अथवा अंशो का बाजार मूल्य संस्था की वृद्धि, विनियोजकों द्वारा स्वीकार्य जोखिम, लाभांश नीति, प्रबन्धकीय कुशलता तथा प्रभावशीलता पर निर्भर करती है। अतः अंशधारियों को सम्पदा को अधिकीकरण के लिए संस्था का निम्नलिखित उपाय करने चाहिए।

- नये उत्पाद प्रक्रिया विकास तथा उत्पाद की गुणवत्ता में सुधार द्वारा हिस्से में वृद्धि करना।
- ग्राहक संतुष्टि, ग्राहक लाभप्रदता तथा विक्रय पश्चात् सेवा द्वारा ग्राहक बनाना एवं बनाये रखना।
- कर्मचारियों को सम्बद्ध, ही एवं समय पर सभी प्रकार की सूचनाएँ उपलब्ध कराने हेतु सूचना पद्धति की विकास।
- अनावश्यक एवं उच्च स्तरीय जोखिम से दूर रहना।
- वित्त पूर्ति में ऋण एवं समता में संतुलन बनाये रखना।
- संतोषप्रद लाभांश नीति को निरन्त बनाये रखना।

सम्पदा अधिकीरण की श्रेष्ठता :–

वित्तीय प्रबन्ध के लक्ष्यों या उद्धेश्यों का विवेचन करने के पश्चात प्रश्न यह उठता हैं कि में से कौनसा उद्धेश्य लाभ अधिकीकरण या सम्पदा अधिकीरण, वित्तीय प्रबन्ध का उद्धेश्य हैं। वर्तमान परिवर्तित व्यावसायिक परिस्थितियों में लाभ अधिकीकरण के सिद्धान्त से सम्पदा अधिकीकरण का सिद्धान्त निम्नलिखित कारणों से अधिक उपयुक्त है।

(1) **आय का रोकड़ प्रवाहों में मापः–** इसमें विनियोग से होने वाली आय की माप लेखांकन लाभों के आधार पर न की जाकर रोकड़ प्रवाहों के आधार पर की जाती है। इसलिए आय का माप रोकड़ प्रवाहों में किया जाने के कारण लेखाकंन लाभों की अस्पष्टता एवं संदिग्धता समाप्त हो जाती है।

(2) **मुद्रा के समय मूल्य को मान्यता :–** यह सिद्धान्त विभिन्न वर्षो में प्राप्त होने वाली सम्भावित आय को एक निश्चित बट्टा दर पर कटौती करके समय मूल्य को भी मान्यता प्रदान करता है।

(3) **जोखिम एवं अनिश्चितता का विश्लेषण** :– इसमें जोखिम एवं अनिश्चितता की सीमा का भी विश्लेषण किया जाता है जिसके अनुसार विभिन्न विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव आसानी से किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(4) अन्य उद्धेश्यों के प्रतिकूल नहीं :– सम्पदा अधिकतम करने का उद्धेश्य संस्था के अन्य उद्धेश्य जैसे–बिक्री अथवा बाजार अंश अधिकतम करने से प्रतिकूल नही हैं, बल्कि यह इन अन्य उद्धेश्यों की प्राप्ति में सहायता करता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सम्पदा अधिकीरण का उद्धेश्य लाभ अधिकीकरण के उद्धेश्य से श्रेष्ठ है। इसमें लाभों पर दीर्घकालीन दृष्टिकोण से विचार किया जाता हैं किसी भी संस्थान के मूल्य का वास्तविक सूचक इसके अंशो का बाजार मूल्य होता है जो प्रति अंश अर्जन, अर्जनों का समय, जोखिम आदि सभी घटकों को परिलक्षित करता है। इस प्रकार सम्पदा अधिकीकरण के उद्धेश्य के अनुसार वित्तीय प्रबन्ध का उद्धेश्य दीर्धकाल में कम्पनी के अंशो का बाजार मूल्य अधिकीकरण होना चाहिए। यह कम्पनी की उन्नति एवं अंशधारियों की सम्पदा का वास्तविक दिग्दर्शक है। किन्तु जैसा कि लारेन्स जे. गिटमैन ने लिखा है, ''लाभ अधिकरण करना भी सम्पदा अधिकरण की योजना का अंग हो सकता हैं सम्भवः कभी–कभी इन दोनों उद्धेश्यो को एक साथ जारी रखा जा सकता है, किन्तु लाभ अधिकीकरण को कभी भी सम्पदा अधिकतम करने के वृहत् उद्धेश्य पर हावी होने की अनुमति नहीं देनी चाहिए।''

वित्तीय कार्य (FINANCE FUNCTIONS)

वित्तीय कार्य व्यवसाय में प्राण वायु के समान महत्व रखते है। वित्तीय कार्यो का अध्ययन हम निम्न वर्गो में बांटकर कर सकते है :–

1. विनियोजन निर्णय।
2. वित्तयन निर्णय।
3. लाभांश निर्णय।

(1) विनियोजन निर्णय :–

किसी भी व्यावसायिक संस्था के लिए विनियोग अथवा विनियोजन सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है प्रायः व्यावसायिक प्रतिष्ठान लाभ अर्जन हेतु स्थापित किये जाते है तथा उनका उद्धेश्य अपने लाभ को अधिकतम करना अथवा स्वामियों के सम्पत्ति मूल्य को अधिकतम करना होता है, इस उद्धेश्य की प्राप्ति के लिए उन्हे विभिन्न विनियोजन निर्णय करने होते है। विनियोजन निर्णय लाभ अवसरो की उपलब्धता के अनुसार किये जाते है। वित्ततय प्रबन्धकों को विनियोजन के सम्बन्ध में निम्न कार्य करने होते है।

(i) पूँजीगत परियोजनाओं के चयन के सम्बन्ध में निर्णय :– पूँजी बजटन विनियोजन का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है। पूँजी बजटन में पूँजी व्यय का विश्लेषण, श्रेष्ठ विकल्प का चुनाव, विभिन्न पूँजी व्ययो में समन्वय, पूँजी व्ययो पर नियंत्रण तथा पूँजी व्ययों में अनिचिचता को कम करने के कार्य शामिल होते हैं।

पूँजीगत परियोजनाएँ अनेक प्रकार की हो सकती है। ये परियोजनाऐं वर्तमान कार्यो के विस्तार हेतु नवीन मशीनों के क्रय, भवनों के विस्तार, नई इकाइयों के क्रय आदि के लिए हो सकती है। ये परियोजनाऐं पुरानी मशीनो के पुनसंस्थापन हेतु हो सकती है अथवा विविधीकरण अथवा सुधार हेतु हो सकती है।

प्रत्येक पूँजीगत परियोजना के चयन हेतु वित्तीय विश्लेषण किया जाता है। परियोजना से उत्पन्न रोकड़ बहिर्वाह तथा रोकड़ अन्तर्वाह का अध्ययन किया जाता हैं पूंजीगत परिव्यय परियोजनाओं के चुनाव हेतु अनके विधियाँ विकसित हो चुकी है। इसमें अदायगी अवधि विधि विनियोग पर औसत प्रत्याय विधि, शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि, आन्तरिक प्रत्याय पद विधि आदि प्रमुख है जिसके आधार पर किसी परियोजना का चुनाव किया जा सकता है।

वित्तीय प्रबन्धक लाभदायक परियोजनाओं को चुनने, उन्हें लागू करने तथा उनमें अनिश्चितता के तत्व को कम करने में प्रबन्ध को सहायता पहुंचाते है।

(ii) चालू सम्पत्तियों में विनियोग निर्धारण – वित्त प्रबन्धक को चालू सम्पत्तियों का प्रबन्ध भी करना होता है तथा व्यवहार में एक वित्त प्रबन्धक अपने दैनिक कार्य का अधिकांश समय इन्हीं सम्पत्तियों के प्रबन्ध में लगाता है। वित्त प्रबन्धक को निर्धारित करना होता है कि रोकड़ विक्रयशील प्रतिभूतियां

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

देनदार तथा सामग्री में कितना विनियोग हो? वित्तीय प्रबन्धक इन चालू सम्पतियों में विनियोग को नियंत्रित करके ही संस्था के लिए पर्याप्त कार्यशील पूंजी की व्यवस्था इन चालू सम्पतियों में विनियोग को नियंत्रित करके ही संस्थान के लिए पर्याप्त कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करता हैं। चालू सम्पत्तियों के विनियोग के प्रबन्ध हेतु वित्त प्रबन्धक इन चालू सम्पत्तियों में विनियोग को नियंत्रित करके ही संस्था के लिए पर्याप्त कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करता है। चालू सम्पत्तियों के विनियोग के प्रबन्ध हेतु वित्त प्रबन्धक को सामग्री नियंत्रण की उपयुक्त तकनीकों का ज्ञान तथा प्रयोग करना आना चाहिए।

इसे रोकड़ प्रबन्ध के सिद्धान्तों एवं प्रमेयों की जानकारी हो तथा उसे साख प्रबन्ध का भी ज्ञान होना चाहिए। चालू सम्पतियों के उचित प्रबन्ध हेतु सामग्री नियत्रण तकनीको रोकड़ बजट एवं नियत्रण तथा साख विश्लेषण तकनीको का उपयोग करना होता हैं

कार्यशील पूंजी के सही अनुमान हेतु परिचालन चक्र विधि, परम्परागत अनुमान विधि तथा प्रक्षेषण चिट्टा विधि का उपयोग किया जाता है।

अधिक कार्यशील पूंजी भी संस्था के लिए ठीक नहीं तथा कम कार्यशील पूंजी भी समय के लिए हानिकारक होती है।

(iii) **पुनसंरचना सम्बन्धी निर्णय :–** आज तेजी से बदलाव व वैश्वीकरण का युग है जिसमें फर्मो की अपनी उत्तरजीवता सुनिश्चित करने हेतु समय समय पर सविलयन, पुनर्निर्माण तथा समापन जैसे कार्यवाहियां करनी होती है। इन कार्यवाहियों की शर्तो व प्रक्रिया का निर्धारण वित्त प्रबन्धक करता है।

II वित्तयन निर्णय

वित्तीय कार्यो में वित्तयन अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है तथा वित्त प्रबन्धक को यह कार्य बड़ी कुशलता से सम्पन्न करना होता है। वित्तीयन निर्णय कार्यो में प्रायः निम्न को शामिल किया जाता हैं :–

(i) **वित्तीय पूर्वानूमान एवं नियोजन –** एक वित्त प्रबन्धक को नये स्थापित उपक्रम के सम्बन्ध में विनियोग निर्णयों के अनुरुप वित्तीय नियोजन करना होता हैं जबकि पूर्व स्थापित उपक्रम के सन्दर्भ में पहले वित्तीय पूर्वानुमान किये जाते है तथा उसके आधार पर वित्तीय योजना का निर्माण करना होता हैं वित्तीय नियोजन अल्पकालीन अथवा दीर्घकालीन हो सकता हैं

(ii) **वित्त व्यवस्था –** वित्तीय योजना के बाद वित्त प्रबन्धक को वित्तीय साधनों की व्यवस्था करनी होती है और इसके लिए अनेक कार्य करने होते है, जिनमें से प्रमुख निम्न है :–

(अ) आदर्श संयोग का चुनाव – एक संस्था समता अंशो, पूर्वाधिकार अंशो, ऋणपत्रों, अवधि ऋणों, बैंक अधिविकर्ष आदि से वित्त प्राप्त कर सकता हैं एक पूर्व स्थापित फर्म अपने लाभों के पुनर्नियोजन से भी साधन प्राप्त कर सकती है। वित्तीय प्रबन्धक को एक आदर्श वित्तीय संयोग का चुनाव करना होता हैं आदर्श वित्तीय संयोग वह होता हैं जिससे संस्था की पूंजी की औसत लागत न्यूनतम होती है।

(ब) वित्त प्राप्ति की शर्तो व समय का निर्धारण – वित्तीय प्रबन्धक को आदर्श संयोग के चुनाव के बाद वित्त के विभिन्न साधनों से वित्त प्राप्ति की शर्तो व समय का निर्धारण करना होता है। इस कार्य के लिए अर्थव्यवस्था की स्थिति, पूंजी बाजार की स्थिति, विनियोक्ताओं की मनोदशा आदि का भी ध्यान रखना होता है। उचित शर्तो व समय का निर्धारण वित्त कार्य को सफल बनाता है।

(iii) वित्तीय नियंत्रण – वित्त प्रबन्धक को वित्तीय नियंत्रण भी करना होता है, इसके लिए विभिन्न प्रकार के बजटों एवं प्रमापों का निर्धारण करना होता है तथा संस्था की वास्तविक स्थिति को बजटेड़ स्थिति के अनुरुप रखने का प्रयास किया जाता है तथा दोनों में सहन सीमा से अधिक अन्तर होने पर सुधारात्मक कार्यवाही करनी होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

III लाभांश निर्णय

आज के निगमी उपक्रमों के सफल संचालन एवं नियंत्रण हेतु लाभांश निर्णय अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गये है। एक संस्था के लाभांश निर्णय, संस्था के अंशो के बाजार मूल्य तथा विनियोक्ताओं के निर्णयों तथा फर्म के कुल मूल्य के प्रभावित करते है। लाभांश निर्णय कम्पनी की अर्जनों तथा विनियोक्ताओं की प्रत्याशाओं एवं कम्पनी की विनियोग आवश्यताओं को ध्यान में रख कर किये जाने चाहिए। कम्पनी की लाभांश नीति सुस्थिर तथा प्रभावशाली होनी चाहिए। लाभांश का भुगतान नगद अथवा स्कन्ध के रुप में किया जा सकता हैं। नगद भुगतान के लिए संस्था के पास पर्याप्त तरलता होनी चाहिए। अनके बार संस्था के पास प्रतिधारित अर्जनें बहुत होती हैं जिसका पूंजीकरण करके बोनस अंशो के रुप में लाभांश का भुगतान किया जाता है जिससे संस्थान की तरलता तथा कोर्षो पर तुरन्त कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है।

लाभांश निर्णयों में निम्न का निर्धारण महत्वपूर्ण होता है :–

(i) सुस्थिर एवं प्रभावशाली लाभांश नीति का निर्धारण।

(ii) लाभांश के लिए संस्था के पास उपलब्ध साधनों का निर्धारण।

(iii) लाभांश की घोषणा का संचालक मण्डल तथा साधारण वार्षिक सभा द्वारा अनुमोदन।

(iv) लाभांश वारन्टों का निर्माण व प्रेषण, तथा।

(v) उपरोक्त, लाभांश प्रमेयो का नीति निर्धारण हेतु उपयोग करना।

वित्तीय नियोजन (FINANCIAL PLANNING)

एक व्यावसाय की स्थापना करने से पूर्व उद्यमी को विभिन्न पहलुओं पर विचार करना होता है। ये पहलु व्यवसाय के स्थल के चुनाव, उत्पादन प्रक्रिया के चुनाव, कच्चे माल की उपलब्धि तथा वित्त की प्र्याप्तता आदि से सम्बन्धित होते हैं। इन सभी पहलुओं में व्यावसायिक वित्त का पहलू सबसे अधिक महत्तवूर्ण है। एक व्यवसाय की स्थापना के 'विचार के जन्म लेने से लेकर उसके प्रवर्तन, संचालन, विकास विस्तार तथा समापन सभी परिस्थितियों में वित्त का विशेष महत्व है। एक व्यवसाय के लिए सदैव ही प्र्याप्त व्यावसायिक वित्त उपलब्ध होना चाहिए अन्यथा वह कुशलतापूर्वक नहीं चल सकता है। व्यावसायिक वित्त की समुचित व्यवस्था करने के लिए ठोस वित्तीय नियोजन आवश्यक है।

अतः यह कहना ठीक नहीं है कि प्र्याप्त वित्तीय नियोजन के बिना व्यवसाय जीवित नही रह सकता है तथा प्रभावपूर्ण वित्तीय प्रबन्ध के बिना कोई व्यवसाय प्रगति नहीं कर सकता है।

वित्तीय नियोजन का अर्थ :–

वित्तीय नियोजन का आशय उपक्रम के मूल उद्देश्य की प्राप्ति हेतु वित्तीय क्रियाओं का अग्रिम निर्धारण है। वित्तीय नियोजन के अर्थ के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विचारों में भिन्नता पाई जाती है। वित्तीय नियोजन के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विचारों को दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता हैं –

(1) संकीर्ण अर्थ में वित्तीय नियोजन तथा

(2) विस्तृत अर्थ में वित्तीय नियोजन

(1) **संकीर्ण अर्थ में वित्तीय नियोजन :–** इस अर्थ में वित्तीय नियोजन का तात्पर्य संस्था के लिए आवश्यक पूँजी के पूर्वानुमान से लगाया जाता है। इस विचार के समर्थकों के अनुसार वित्तीय नियोजन का तात्पर्य संस्था की पूँजी संरचना निश्चय करने से होता है अर्थात् संस्था पूँजी का कितना भाग अंश पूँजी से तथा कितना भाग ऋण पूँजी से प्राप्त करें। यह विचारधारा त्रुटिपूर्ण है। क्योंकि यह वित्तीय नियोजन के केवल एक पक्ष पर विचार करती है कि संस्था अपनी पूँजी किन साधनों से प्राप्त करे। यह विचार संकीर्ण भी हैं, क्योंकि इसके द्वारा संस्था की वित्त सम्बन्धी समस्त समस्याओं का अध्ययन एवं विशलेषण सम्भव नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(2) **विस्तृत अर्थ में वित्तीय नियोजन** :–विस्तृत अर्थ में वित्तीय नियोजन का तात्पर्य व्यवसाय के लिए वित्तीय उद्देश्यों का निर्धारण, वित्तीय नीतियों का निर्माण तथा वित्तीय प्रविधियों का विकास करना है। इस अर्थ में वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत फर्म के लिए आवश्यक साधनों का अनुमान लगाने, उनको प्राप्त करने के लिए विभिन्न साधनों का चुनाव करने तथा वित्तीय नीतियों का निर्धारण एवं लागू करने को शामिल किया जाता हैं। आर्थर एस. डेविंग के मतानुसार वित्तीय नियोजन में निम्न तीन बातें सम्मिलित की जाती हैं –

(1) पूँजीकरण – पूँजी का आवश्यक मात्रा का अनुमान लगाना।

(2) पूँजी संरचना – पूँजी के विभिन्न स्रोत निश्चित करना तथा पूँजी में विभिन्न प्रतिभूतियों का पारस्परिक अनुपात निश्चित करना।

(3) पूँजी का प्रबन्ध – यह देखना कि पूँजी का लाभप्रद एवं उचित ढ़ंग से प्रयोग हो रहा है।

डेविंग की वित्तीय नियोजन की उपरोक्त धारणा काफी उचित है, परन्तु यह वित्तीय नियोजन स्वभाव व कार्य–क्षेत्र को स्पष्ट नहीं करती हैं। इस सम्बन्ध में वाकर एवं बॉघन की परिभाषा अधिक उपयुक्त है। उनके शब्दों में ''वित्तीय नियोजन वित्त कार्य से सम्बन्धित है, जिसमें फर्म के वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण, वित्तीय नीतियों का निर्माण एवं अनुमान तथा वित्तीय प्रविधियों का विकास सम्मिलित है। विस्तृत अर्थ में वित्तीय नियोजन में निम्न बातें सम्मिलित होती हैं –

(1) **वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण** – वित्तीय योजना का पहला तत्व फार्म के दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन वित्तीय लक्ष्यों का निर्धारण करना होता है। वित्तीय लक्ष्य के निर्धारण में वित्त कार्य में संलग्न व्यक्तियों को दिशा–निर्देश मिलता रहता है। फर्म का दीर्घकालीन वित्तीय लक्ष्य उसके उत्पादक साधनों का अधिकतम तथा मितव्ययी उपयोग करना होना चाहिए जिससे फर्म की सम्पत्तियों का मूल्य अधिकतम हो सके तथा फर्म का अल्पकालीन वित्तीय उद्देश्य फार्म की प्रक्रिया के लिए आवश्यक तरलता की व्यवस्था करना होना चाहिए।

(2) **वित्तीय नीतियों का निर्माण** – वित्तीय नियोजन दूसरा महत्वपूर्ण पहलू ऐसी वित्तीय नीतियों का निर्माण करना है जिससे वित्तीय लक्ष्यों की पूर्ति हो सके। इस सम्बन्ध में निम्न वित्तीय नीतियाँ महत्वपूर्ण हैं –

- पूँजी की आवश्यक मात्रा निश्चित करने वाली नीतियाँ,
- पूँजी प्रदान करने वाले पक्षों से फर्म के सम्बन्ध निश्चित करने वाली नीतियाँ,
- स्वामी पूँजी एवं ऋण पूँजी का अनुपात निर्धारित करने वाली नीतियाँ,
- विभिन्न स्रोतों से पूँजी प्राप्त करने के सम्बन्ध में निर्णय लेने में सहायक नीतियाँ
- आय के वितरण में सहायक नीतियाँ, तथा
- स्थायी सम्पत्तियों व चालू सम्पत्तियों के कुशल प्रबन्ध में सहायता देने वाली नीतियाँ।

ये नीतियाँ वित्त विभाग में विभिन्न स्तरों पर काम करने वाले अधिकारियों द्वारा बनायी जाती है। इन नीतियों के पालन में पूँजी के अनुकूलतम तथा कुशलतम प्रयोग में सहायता मिलती है।

(3) **वित्तीय प्रविधियों का विकास** – वित्तीय नियोजन का तीसरा पहलू वित्तीय प्रविधियों का विकास करना है। इस कार्य के लिए वित्त कार्य को छोटो टुकड़ों में बाँटना, उन कार्यों को अधीनस्थ अधिकारियों को सौंपना तथा वित्तीय निष्पादन की व्यवस्था करना होता है। वित्तीय निष्पादन के लिए प्रमाप निर्धारित किये जाते हैं तथा वास्तविक प्रगति को के सन्दर्भ में जांच कर विचलन ज्ञात किये जाते है। विचलनों एवं विसंगतियों को रोकने के लिए नियन्त्रण आवश्यक है। वित्तीय नियन्त्रण के लिए बजटरी नियन्त्रण, लागत नियन्त्रण, वित्तीय विवरण विश्लेषण एवं निर्वचन आदि विधियों का प्रयोग किया जाता है।

वित्तीय नियोजन की प्रकृति अथवा विषय–वस्तु

एक सम्पूर्ण वित्तीय योजना में निम्न विषयों का समावेश किया जाता हैं –

(1) **पूर्वानुमानित वित्तीय विवरण** – इस स्थिति विवरण, आय विवरण, रोकड़ प्रवाह विवरण तथा कोष प्रवाह विवरण मुख्य है। इन विवरण में फर्म के वित्तीय लक्ष्य सन्निहित होंगे, अतः ये निष्पक्ष पूर्वानुमान नहीं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कहे जा सकत हैं। परन्तु फिर भी जहाँ तक सम्भव हो, पूर्वानुमानों को ईमानदारी से बनाया जाना चाहिए।

(2) **पूँजी निवेश प्रस्ताव** – प्रस्तावित पूँजी निवेश को विभाजन अथवा व्यापार के प्रकार के अनुसार अथवा प्रतिस्थापन, विस्तार अथवा नये प्रदार्थों पर निवेश के आधार पर प्रदर्शित किया जा सकता है। प्रत्येक निवेश के कारणों का उल्लेख किया जायेगा तथा उन नीतियों की ओर संकेत किया जायेगा जिनकी सहायता से वित्तीय लक्ष्य को प्राप्त किया जावेगा। स्मरण रहे कि ये प्रस्ताव सभी स्तर के प्रबन्धकों के परस्पर विचार विनिमय के पश्चात् ही प्रस्तुत किये जाने चाहिए। इससे सभी प्रन्धक जान पायेंगे कि उन्हें क्या करना है तथा योजना का निष्पादन सभी की भागीदारी के कारण अधिक प्रभावी होगा।

(3) **नियोजित वित्त व्यवस्था** – किन साधनों से वित्त जुटाया जाये, यह एक जटिल प्रश्न हैं। इसके लिए अनेक कामों पर ध्यान देना होता है। यदि कम्पनी उदार लांभांश नीति का अनुसरण रकती है तथा निवेश आवश्यकताएं भारी है, तो बाह्य साधनों से वित्त जुटाना आवश्यक हो जाता है। यदि वर्तमान आय में गिरावट की प्रवृत्ति है तो समस्या अधिक गम्भीर होती है तथा कम्पनी को अल्पकालीन ऋण अथवा परिवर्तनशील ऋणपत्र निर्गमन करना अभीष्ट माना जाता है।

इसके विपरीत कुछ कम्पनियों के समक्ष निवेश के अवसर शून्य होते है किन्तु उनके रोकड़ प्रवाह यथेष्ट होते हैं तथा लाभांश नीतियाँ भी अनुदार होती है। ऐसी कम्पनियों की वित्तीय योजनाएँ एक रूढ़ि की भाँति होती है तथा प्रबन्धकों के समक्ष तनावपूर्ण स्थितियाँ नहीं आती है।

(4) **वित्तीय प्रविधियों का विकास** – इसके अन्तर्गत वित्तीय कार्यों को छोटे–छोटे उपविभागों में बाँटा जाता है। इसके पश्चात इन कार्यों का अधिकारियों में बाँटकर उनका निष्पादन एवं नियन्त्रण किया जाता है। इसके लिए बजटरी नियन्त्रण, लागत नियन्त्रण प्रमाप लागत, सीमान्त लागत एवं वित्तीय लेखों के निर्वचन एवं विश्लेशण आदि तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

(5) **वित्तीय का निर्धारण** – वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत पूँजी की मात्रा निश्चित करने, ऋण व स्वामित्व पूँजी का परस्पर अनुपात निश्चित करने, पूँजी के विभिन्न स्रोतों का चुनाव करने, आय का विवरण करने तथा स्थिर व परिवर्तनशील सम्पत्तियों के कुशल प्रबन्ध करने सम्बन्धी नीतियाँ सम्मिलित हैं।

आर्थर एस डेविग ने वित्तीय नियोजन मे निम्न तीन बातों का समावेश बताया है –

- पूँजी की आवश्यक मात्रा नियोजन मे निम्न तीन बातों का समावेश बताया हैं 7
- पूँजी के प्रबन्ध एवं नियन्त्रण की नीतियाँ निर्धारित करना, तथा
- पूँजी के स्रोतों का निर्धारण एवं उनका पारस्परित अनुपात निश्चित करना।

वित्तीय नियोजन के प्रकार

समय अवधि के अनुसार वित्तीय नियोजन तीन प्रकार का होता है –

(1) **अल्पकालीन वित्तीय नियोजन** – सामान्यता एक व्यवसाय मे एक वर्ष की अवधि के लिए जो वित्तीय योजना बनाई जाती है, वह अल्पकालीन वित्तीय योजना कहलाती है। अल्पकालीन वित्तीय योजनाएँ मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन योजनाओं का ही भाग होती हैं अल्पकालीन वित्तीय योजना में प्रमुख रूप से कार्यशील पूँजी के प्रबन्ध की योजना बनाई जाती है तथा उसकी विभिन्न अल्पकालीन साधनों से वित्तीय व्यवस्था करने का कार्य किया जाता है। विभिन्न प्रकार के बजट एवं प्रक्षेपित लाभ–हानि विवरण, कोषों की प्राप्ति एवं उपयोग का विवरण तथा चिट्ठा बनाये जाते हैं।

(2) **मध्यकालीन वित्तीय नियोजन** – एक व्यवसाय में एक वर्ष से अधिक तथा पाँच वर्ष से कम अवधि के लिए जो वित्तीय योजना बनाई जाती है, उसे मध्यकालीन वित्तीय नियोजन कहते हैं। मध्यकालीन वित्तीय योजना सम्पतियों के प्रतिस्थापन, रख–रखाव, शोध एवं विकास कार्यो को चलाने, अल्पकालीन उत्पादन कार्यों की व्यवस्था करने तथ बढ़ी हुई कार्यशील पूँजी की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बनायी जाती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(3) **दीर्घकालीन वित्तीय नियोजन** – एक व्यवसाय में पाँच वर्ष अथवा अधिक अवधि के लिए बनाई गई वित्तीय योजना दीर्घकालीन वित्तीय योजना कहलाती है। दीर्घकालीन वित्तीय योजना विस्तृत दृष्टिकोण पर आधारित योजना होती है जिसमें संस्था के सामने आने वाली दीर्घकालीन समस्याओं के समाधान हेतु कार्य किया जाता है। इस योजना में संस्था के दीर्घकालीन वित्तीय लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु पूँजी की मात्रा, पूँजी ढाँचे, स्थायी सम्पत्तियों के प्रतिस्थापन, विकास एवं विस्तार हेतु अतिरिक्त पूँजी प्राप्त करने आदि को शामिल किया जाता है।

वित्तीय नियोजन की प्रक्रिया अथवा सोपान

वित्तीय नियोजन को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है, जिसके द्वारा –

1. एक फर्म को उपलब्ध वित्त तथा निवेश विकल्पों के अन्तर्सबन्धों का विश्लेशण किया जा सके।
2. वर्तमान निर्णयों के भावी परिणामों का पूर्वानुमान लगाया जा सके ताकि प्रबन्धक असमंजस्य का सामना करने से बच सकें तथा वर्तमान एवं भावी निर्णयों का सम्बन्ध भली प्रकार समझ सकें।
3. स्वीकार किये जाने वाले विकल्पों का निर्णय लिया जा सके तथा वित्तीय योजना का अन्तिम सम्पादन किया जा सके।
4. योजना में वर्णित उद्देश्यों तथा मानकों के सम्बन्ध में भावी निष्पादनों का मापन किया जा सक।

वित्तीय योजना की अवधि एक वर्ष या उससे अधिक हो सकती है। अल्पकालीन योजना प्रायः एक वर्ष की अवधि के लिए निर्मित की जाती है तथा दीर्घकालीन योजनाएँ पाँच वर्ष या इससे अधिक की अवधि के लिए होती है।

वित्तीय योजना एक समूचे उपक्रम या प्रतिष्ठान के लिए की जाती है जिसमें प्रतिष्ठान के सम्पर्क निवेश कार्यक्रमों को शामिल किया जाता है। वित्तीय योजना छोटे–छोटे विभागों अथवा छोटे–छोटे निवेशक प्रस्तावों के लिए नहीं की जाती है। प्रतिष्ठान अथवा संस्था के सभी प्रस्तावों को संगठित कर लिया जाता है तथा आयोजन समस्त प्रस्तावों तथा विभागों पर सम्मिलित रूप से लागू होता है।

व्यवहार में ऐसा भी हो सकता है कि संस्था का आयोजन विभाग सभी विभागों अथवा डिवीजन से आगामी पाँच वर्षो के लिए तीन–तीन वैकल्पिक योजनाएँ बनाकर प्रस्तुत करने को कह सकता है। वैकल्पिक योजनाएँ निम्न प्रकार की होती है :–

1. एक तीव्र विकास योजना जिसके अधीन नये उत्पादों, नये बाजारों तथा विद्यमान बाजारों में अतिरिक्त अंश प्राप्ति के लिए भारी निवेश प्रस्तावित है।
2. एक सामान्य विकास योजना जिसके अधीन विभाग सामान्य गति से बढ़ना चाहता है तथा प्रतियोगियों से कुछ छीनना नहीं चाहता है।
3. एक संकुचित योजना जिसके अन्तर्गत विभाग या तो अपनी क्रियाओं को समाप्त करना चाहता है अथवा अधिक विशेषीकरण करना चाहता है ये निवेश को न्यूनतम करेंगी। विभाग विनिवेश अथवा विक्रय की योजना भी तैयार कर सकता है।

संक्षेप में वित्तीय नियोजन प्रक्रिया में निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते है –

1. **दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं का पूर्वानुमान** – उपक्रम के विकस हेतु निवेश नीति तैयार करनी चाहिए। योजना की क्रियान्विति हेतु कुल आवश्यकता एवं समय की योजना बनानी चाहिए जो कि पूँजी बजटन पर निर्भर हैं
2. **संचालन क्रियाओं का विश्लेशण** – संस्था की सम्भावित आयो एवं व्ययों के निर्धारण हेतु उनकी संचालन क्रियाओं का विश्लेशण किया जाता है। इसके अन्तर्गत उत्पादन, बिक्री, विपणन एवं स्कन्ध आदि कार्यशील क्रियाएँ शामिल हैं।
3. **विभिन्न योजनाओं में सामन्जस्य** – वित्तीय नियोजन के अन्तर्गत विभिन्न योजनाओं में मुकाबला नहीं होना होना चाहिए बल्कि समन्वय एवं सामन्जस्य होना चाहिए।
4. **ऐतिहासिक विश्लेष्ण** – संस्था की वर्तमान स्थिति के विश्लेष्ण हेतु पूर्व के कार्यों का अध्ययन आवश्यक है। यदि संस्था नई है, जहाँ अभिलेख उपलब्ध नहीं हो तो अन्य विद्यमान संस्था के गत निश्चित पर विचार किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5. **वित्तीय स्रोतों का निर्धारण** – लक्ष्यार्थ पूँजी की संरचना को ध्यान में रखते हुए आवश्यक दीर्घकालीन कोषों की व्यवस्था विभिन्न स्रोतों से की जानी चाहिए।

एक सुदृढ़ वित्तीय नियोजन की विशेषताएँ

किसी भी व्यवसाय का भविष्य एवं उसकी सफलता बहुत बड़ी सीमा तक उसकी वित्तीय योजना पर निर्भर करती है। अतः एक व्यवसय की वित्तीय योजना बहुत अधिक सावधानीपूर्वक तैयार की जानी चाहिए। एक श्रेष्ठ वित्तीय योजना में निम्न विशेषताएँ होती है।

(1) सरलता – व्यवसाय की वित्तीय योजना जटिल नहीं होनी चाहिए। व्यवसाय की वित्तीय योजना सरल होनी चाहिए जिससे विनियोक्ता विनियोग के लिए सहज ही आकर्षित हो सकें। बहुत अधिक प्रकार की प्रतिभाव नहीं होनी चाहिए अन्यथा व्यवसाय का पूँजी ढाँचा जटिल हो जावेगा। व्यवसाय की वित्तीय योजना होनी चाहिए जिससे वर्तमान में ही नहीं बल्कि भविश्य में भी व्यवसाय की आवश्यकताओं के अनुसार प्राप्त वित्त प्राप्त किया जा सके।

(2) लोचशीलता – एक व्यवसाय की वित्तीय योजना लोचशील होनी चाहिए जिससे तेजी मन्दी के समय व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं के अनुसार समायोजन किया जा सके। व्यवसाय की वित्तीय योजना इस प्रकार निर्मित की जानी चाहिए जिससे कम लाभ के समय व्यवसाय पर स्थायी भार अधिक न हो। व्यवसाय की वित्तीय योजना मे समता अंश, पूर्वाधिकार अंश तथा ऋण पत्र का सन्तुलित भाग होना चाहिए तथा उसमें परिवर्तन करने की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए।

(3) दूरदर्शिता – एक व्यवसाय की वित्तीय योजना इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे उसकी वर्तमान आवश्यकताओं का ही नहीं बल्कि भविष्य की आवश्यकताओं का ध्यान रखा गया हो। व्यवसाय की स्थायी तथा कार्यशील दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओ की पूर्ति का ध्यान रखा जाना चाहिए। व्यवसाय की वित्तीय योजना अधिक दूरदर्शी होनी चाहिए। प्रवर्तकों को उपक्रम की अल्पकालीन एवं दीघ्रकालीन आवश्यकताओं का अनुमान लगाने के लिए पूर्वानुमानों का प्रयोग करना चाहिए।

(4) तरलता – व्यवसाय के सफलतापूर्वक संचालन के लिए यह आवश्यक है कि व्यवसाय में सदैव पर्याप्त तरलता उपलब्ध रहे। अनेक बार तरलता के अभाव में व्यवसाय अपनी देनदारियों का समय पर भुगतान नहीं करना है जिसका उसकी ख्याति तथा स्थायित्व पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा अनेक बार व्यवसाय की सधन करना पड़ता है।

(5) उपयोगिता – व्यवसाय की वित्तीय योजना ऐसी होनी चाहिए जो व्यवसाय में उपलबध विभिन्न वित्तीय साधनों का श्रये उपयोग कर सके। स्थायी तथा कार्यशील पूँजी के मध्य उचित सम्बन्ध होना चाहिए। व्यवसाय के पून्जीकरण तथा अतिपूँजीकरण की स्थिति नहीं होनी चाहिए।

(6) पूर्णता – वित्तीय योजना हर दृष्टि से पूर्ण होनी चाहिए उसमें सभी भावी आकस्मिकताओं का ध्यान रखना चाहिए। भविय में घटित होने वाली घटनाओं का पूर्वानुमान लगा कर उनके लिए वित्त की पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए।

(7) मितव्ययी – वित्तीय योजना का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे पूँजी प्राप्त करने एवं उसका विनियोग करने में कम से कम व्यय हो। पूँजी निर्गमन के विभिन्न खर्चे जैसे – अभिगोपन, कमीशन, दलाली, बट्टा छपाई, इत्यादि कम से कम होने चाहिए।

(8) संचार – एक श्रेष्ठ वित्तीय नियोजन विनियोजकों तथा वित्त पूर्तिकर्ताओं को उपयुक्त सूचना का साधन होना चाहिए। इससे संस्था की योजना व कार्यों में उनका विश्वास बढ़ता है जो फर्म के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से लाभदायक होता है।

(9) सुगमता से लागू किया जाना – वित्तीय योजना तब ही श्रेष्ठ कही जा सकती है जब उसको सुगमता से लागू किया जा सके तथा उसके लाभ संस्था को प्राप्त हो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(10) नियन्त्रण – वित्तीय नियोजन एवं उससे निर्मित पूँजी ढाँचा ऐसा होना चाहिए। जिससे संस्था का नियन्त्रण बाहरी लोगों के हाथों में जाने से रोक लगे तथा नियन्त्रण बनाये रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि अंश पूँजी छितरी हुई हो।

(11) कम जोखिम – वित्तीय योजना इस तरह बनाई जानी चाहिए कि संस्था की जोखिम लगातार कम होती जाए।

पूंजी बजटन (CAPITAL BUDGETING)

प्रायः सभी व्यायसायिक संस्थाओं में किये जाने वाले व्यय दो प्रकार के होते है। आयात व्यय जिनका लाभ संस्था को अधिक से अधिक एक वर्ष की अवधि में प्राप्त हो जाता है। जिनका नियोजन एवं नियत्रण विभिन्न क्रियात्मकों बजटों के द्वारा किया जाता है। पूंजीगत व्यय जिनका लाभ संस्था को ऐसे अधिक वर्षों में प्राप्त होता है एवं ऐसे कें व्यय भूमि, भवन, संयत्र आदि स्थायी सम्पतियों के क्रय पर किये जाते है अथवा नवीनीकरण, आधुनिकीकरण, उत्पादन क्षमताओं में वृद्धि, मशीनों का प्रतिस्थापन, उत्पादन की किसी नई तकनीक का विकास, खोज एवं अनुसन्धान आदि कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने के लिए किये जाते है। इस प्रकार के व्यय यद्यपि दिन–प्रतिदिन नहीं किये जाते बल्कि यदा कदा ही किये जाते है। किन्तु इन व्ययों के रूप में संस्था की पूंजी का एक बहुत बड़ा हिस्सा दीर्घकाल के लिए विनियोजित हो जाता है। इसलिए ऐसे तथ्यों को बहुत सोच–विचार करके ही करना चाहिए। ऐसे व्ययों को करने से भविष्य में व्यय से अधिक राशि आय के रूप में प्राप्त होने की सम्भावना होती है। इसलिए यदि प्रबन्ध द्वारा ऐसे व्ययों को करने के बारे में गलत निर्णय ले लिया जाता है तो संस्था की भावी अर्जनों, रोजगार क्षमता, उत्पादन की किस्म एवं मात्रा तथा विनियोग सुअवसरों सभी को प्रभावित करता है। अतः पूंजीगत व्ययों का दीर्घकालीन नियोजन तथा उनके करने या न करने के बारे में सही निर्णय लेना प्रबन्धक का एक महत्वपूर्ण दायित्व है। इस दायित्व के निर्वाह के लिए प्रबन्ध जिस तकनीक का प्रयोग करता है, वह 'पूंजी बजटन' कहलाती है। इसे 'पूंजी व्यय निर्णय' पूंजी व्यय प्रबन्ध, दीर्घकालीन विनियोग निर्णय तथा स्थायी सम्पतियों का प्रबन्ध पूंजी व्यय नियोजन आदि नामों से भी पूकारा जाता है।

पूंजी बजटन क्या हैं ?

पूंजी बजटन का आशय के विभिन्न स्त्रोतों से पूंजी प्राप्त करने केलिए बजट बनाने से नहीं है, बल्कि यह एक विनियोजन निर्णय है। इसलिए कि पूंजी बजटन पूंजी के दीर्घकालीन नियोजन से सम्बन्धित एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत पूंजीगत विनियोग की भावी लाभोत्पादकता का अध्ययन करना, उसकी पूंजी लागत की गणना करके अर्जन और लागत की तुलना करना तथा अन्त में उस विनियोग के करने अथवा न करने के बारे में अन्तिम निर्णय लेना सम्मिलित है। इस प्रकार पूंजी बजटन से आशय पूंजी व्यय विकल्पों के उद्‌भव, मूल्यांकन, चयन तथा अनुवर्तन की सम्पूर्ण प्रक्रिया से है। प्रो. इन्द्र मोहन पाण्डे के अनुसार, पूंजी बजटन निर्णय भावी लाभों के अपेक्षित प्रवाहों की प्रत्याशा में संस्था द्वारा अपने चालू कोषों को दीर्घकालीन क्रियाओं में मुआवजा पूर्वक विनियोजित करने के निर्णय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। आर.एम. लिन्च के शब्दों में, ''पूंजी बजटन में संस्था की दीर्घकालीन लाभप्रदता (विनियोग पर प्रत्याय) को अधिकतम करने के उद्देश्य से पूंजी के विस्तार का नियोजन सम्मिलित है।

पूंजी बजटन की प्रकृति अथवा विशेषताएँ

विभिन्न निर्णयन में पूंजी बजटन के निर्णय सर्वाधिक महत्वपूर्ण होते है, क्योंकि ये आने वाले अनेक वर्षो के लिए संस्था की परिचालन कुशलता एवं लाभप्रदता को प्रभावित करते है। पूंजी बजटन निर्णयों का विशेष महत्व इनकी विशेषताओं के कारण है जिनका विवेचन नीचे किया गया हैं –

(1) **दीर्घकालीन प्रभाव** – सम्भवतः पूंजी व्यय निर्णयों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इनका संस्था कीभावी लाभदायकता और लागत संरचना पर प्रभाव है। ये संस्था की वृद्धि दर एवं दिशा को प्रभावित करते है। एक उचित निर्णय विस्मयकारी प्रत्यय दे सकता है; जबकि गलत विनियोग निर्णय संस्था के अस्तित्व को ही खतरे में डाल सकता है। इसीलिए यह कहा जाता है कि पूंजी व्यय निर्णय संस्था के भाग्य को तय करते है।

(2) **जोखिम से सम्बंद्ध** – कोषों के दीर्घकालीन विनियोग में अनेक प्रकार की जोखिमें निहित होतीहै। एक विनियोग प्रस्ताव के फलस्वरूप संस्था के औसत लाभों में तो वृद्धि होती है किन्तु साथ ही उसकी अर्जनों बार–बार उच्चावचन भी होते है। ऐसा निरन्तर शोध एवं तकनीकी विकास के कारण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ग्राहकों की रूचि एवं फैशन में परिवर्तन की वजह से होता है। परियोजना की अवधि जितनीदीर्घ होगी, जोखिम एवं अनिश्चितता उतनी ही अधिक होगी।

(3) **कोषों का वृहत आकार** – पूंजी व्यय निर्णयों में स्थायी सम्पतियों की अवाप्ति अथवा कुछ विशाल परियोजनाओं के क्रियान्वयन हेतु अधिक कोषों की आवश्यकता होती है। यह सर्वविदित है कि अधिकांश संस्थाएं ऐसे अधिक कोष उपलब्ध नहीं करा सकती क्योंकि उनके पूंजीसंसाधन सीमित होते है। इसलिए यह आवश्यक है कि वृहत्पूंजी कोषों का विनियोग पूर्ण मूल्यांकन के बाद ही लाभप्रद परियोजनाओं हमें करना चाहिए।

(4) **अप्रत्यावर्ती निर्णय** – पूंजी बजटन निर्णय अप्रत्यावर्ती होते है तथा विनियोजित राशि वापस वसूल नहीं की जा सकती। यह इस कारण है कि पुरानी पूंजी सम्पतियों के लिए न तो कोई बाजार होता है तथा न ही इन सम्पतियों को अन्य किसी लाभदायक विकल्प में परिवर्तित किया जा सकता हैं। केवल एक ही उपाय है कि इनको गहरी हानि पर निस्तारण किया जाये। इसलिए ऐसे निर्णय परियोजना की बारीकी से विस्तृत जांच एवं मूल्यांकन करने के पश्चात् ही लिये जाने चाहिए।

(5) **सर्वाधिक कठिन निर्णय** – पूंजी बजटन निर्णय लेना एक दुष्कर कार्य है, क्योंकि इनका मूल्यांकन संस्था की भावी घटनाओं एवं क्रियाओं की अनिश्चितता पर निर्भर करता है। इसी तरह किसी विशेष विनियोग निर्णय के भावी लाभों एवं लागतों का मुद्रा एवं परिमाण में सही अनुमान लगाना भी कठिन होता है, क्योंकि ये लाभ एवं लागतें आर्थिक, राजनीतिक तथा तकनीकी कारणों से प्रभावित होते है। अतः ये निर्णय लेना उतना आसान नहीं है।

(6) **संस्था की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति पर प्रभाव** – पूंजी बजटन निर्णय संस्था के भावी लाभों एवं लागतों का निर्धारण करते है जो कि अन्ततः संस्था की प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति को प्रभवित करते है। उदाहरणार्थ, यदि एक संस्था अपने संयंत्र का आधुनिकरण करने के निर्णय में देरी करती है, अथवा सही तरीके से नही लेती है तो वह प्रतिस्पर्धात्मकता खो देगी। इसलिए पूंजी बजटन निर्णय संस्था की प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता एवं शक्ति को प्रभावित करते है।

(7) **लागत संरचना पर प्रभाव** – पूंजी बजटन निर्णयों के परिणामस्वरूप एक संस्था को एक बहुत बड़ी राशि स्थायी व्ययों यथा पर्यवेक्षण व्यय, बीमा, भवन किराया, पूंजी पर ब्याज आदि के रूप में भी वाहन करनी पड़ती है। यदि परियोजना भविष्य में असफल हो जाती है अथवा अपेक्षित लाभों से कम लाभ अर्जित करती है, तो संस्था को इन स्थायी व्ययों का भार वहन करना होगा जो कि अन्ततः संस्था की लाभदायकता को प्रभावित करेगी।

- अत्यधिक सम्भावित आय
- तुलनात्मक रूप से उच्च जोखिम मात्रा
- प्रारम्भिक विनियोग एवं प्रतयाशित लाभों के बीच तुलनात्मक रूप से दीर्घकालीन अवधि।

पूंजी बजटन के उद्देश्य अथवा महत्व

(1) **अंशधारियों की सम्पदा अधिकतम करना** : वित्तीय प्रबन्ध का मूल उद्देश्य अंशधारियों की सम्पदा को अधिकतम करना है। इसलिए पूंजी बजटन का उद्देश्य उन दीर्घकालीन विनियोजन परियोजनाओ का चयन करना है जो दीर्घकाल में अंशधारियों की सम्पादा को अधिकतम कर सके। पूंजी बजटन निर्णय अंशधारियों एवं संस्था के हितों को संरक्षण देते है क्योंकि ये स्थायी सम्पतियों में अति विनियोग या न्यून विनियोग का परिहार करते है।

(2) **प्रस्तावित पूंजी व्ययों का मूल्यांकन** : इस बजट की सहायता से बजट अवधि में संस्था द्वारा विभिन्न सम्पतियों के लिए किये जाने वाले व्ययों का मूल्यांकन किया जाता है। ऐसा करने से प्रत्येक व्यय की सार्थकता आंकी जा सकती है।

(3) **प्राथमिकता निर्धारित करना** : प्राथमिकता निर्धारित करने का आशय विभिन्न परियोजनाओं को उनकी लाभप्रदता के क्रम में विन्यासित करना है। पूंजी बजट द्वारा ऐसी विभिन्न पूंजी–परियोजनाओं में प्राथमिकता निर्धारित की जाती है। तत्पश्चात् प्रबन्ध इनमें सबसे अधिक लाभप्रद योजना का चुनाव कर लेता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(4) **लागत नियंत्रण** : पूंजी व्यय कितना किया जाये और कब किया जाये, यह निर्धारित करने से पूर्व लागत–लाभ तुलना की जाती है। व्यवसाय का यह निरन्तर प्रयास रहता है कि जितनी लागत निर्धारित की गई है उससे अधिक न हो। यदि कहीं विचरण होते है तो सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है तथा उत्तरदायित्व एवं जवाबदेही निश्चित कर दी जाती है। इस प्रकार लागत पर स्वतः ही नियंत्रण हो जाता है।

(5) **पूंजी व्ययों पर नियंत्रण** : अन्य व्यावसायिक बजटों की भांति पूंजी बजट का भी एक प्रमुख उद्देश्य संस्था के विभिन्न विभागों द्वारा कियेजाने वाले पूंजी व्ययों को नियत्रिंत करना है। इसमें वास्तविक व्ययों की पूर्व–निर्धारित व्ययों से तुना करके इन पर प्रभावकारी नियंत्रण रखा जा सकता है।

(6) **पूंजी व्ययों के लिये वित्त की व्यवस्था** : पूंजी बजट बनाने से विभिन्न सम्पतियों पर भविष्य में किये जाने वाले व्ययों की पूर्व जानकारी मिल जाती है जिससे संस्था के प्रबन्धक समय पर उस राशि के लिए उचित व्यवस्था कर सकते है।

(7) भूतकालीन निर्णयों का विश्लेषण : पूंजी बजट की सहायता से गत अवधि में किये गये व्ययों का विश्लेषण किया जाता है जिससे यह जाना जा सकता है कि वे निर्णय किस सीमा तक सही थे।

(8) **स्थायी सम्पतियों का मूल्यांकन** : बजट अवधि के अंत में बनाये जाने वाले चिठ्ठे के लिए स्थायी सम्पतियों के मूल्यांकन समंक पूंजी बजट से उपलब्ध हो जाते है। इससे प्रक्षेपित चिठ्ठा आसानी से बनाया जा सकता है।

(9) **पूंजी संरचना नियोजन** : किसी परियोजना द्वारा अर्जित अधिकर पूंजी लागत पर निर्भर करता है जो कि पूंजी लागत संस्था की पूंजी संरचना पर निर्भर है। इस प्रकार पूंजी संरचना नियोजन भी स्वतः ही हो जाता है।

पूंजी व्यय निर्णयों को प्रभावित करने वाले तत्व

पूंजी विनियोजन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले प्रमुख घटक निम्नलिखित है –

(1) **तकनीकी परिवर्तन** – वर्तमान युग में प्रौद्योगिकी तीव्र गति से पुरानी होती जाती है और प्रौद्योगिकी जो कि पुरानी से अधिक कुशल है, पुरानी का स्थान ले लेती है। इसलिए इस प्रकार का निर्णय लेते रहले से प्रबन्ध नये उपकरण की लागत के साथ ही नये एवं पुरानपे उपकरणों की उत्पादक कुशलता पर भी विचार करता है। नये उपकरण की लागत का मूल्यांकन करते समय लेखांकन लागत के साथ ही संवर्द्धात्मक लागत को भी ध्यान में रखना चाहिए।

(2) **प्रतिस्पर्धी की व्यूहरचना** – अनेक बार विनियोग निर्णय प्रतिस्पर्धा की व्यूहरचना को देखकर लेना पड़ता है। यदि प्रतिस्पर्धी उत्पादक विस्तार हेतु नया उपकरण स्थापित करता है या अपने उत्पादों की गुणवता सुधारता है तो विचारधीन संस्था को भी ऐसा ही करना होगा अन्यथा उसका अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। इसलिए हर बार यह पाया जाता है कि प्रतिस्पर्धी की व्यूहरचना पूंजी व्यय निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

(3) **मांग पूर्वानुमान** – मांग के दीर्घकालीन पूर्वानुमान विनियोजन निर्णयों में महत्वपूर्ण है यह पता लगता है कि दीर्घकाल में उत्पादन का विस्तृत बाजार है तो प्रगतिशील संस्था पूंजी विस्तार का अवश्य लेगी।

(4) **प्रबन्ध का प्रकार** – पूंजी व्यय निर्णय प्रबन्ध के प्रकार पर भी निर्भर करते है यदि आधुनिक व प्रगतिशील विचारधारा का है तो नवीन शोध को प्रोत्साहन दिया जायेगा जबकि रूढ़िवादी प्रबन्ध व नवीन विनियोजन को हतोत्साहित करेगा। कुछ सीमा तक प्रबन्ध की विचारधारा भी उद्योग की प्रकृति से अलग होती है।

(5) **रोजकोषीय नीति** – सरकार की अनेक कर नीतियां जैसे–विनियोग आय पर कर छूट, नये वित पर छूट, हास स्वीकृत करने की विधि आदि का विनियोग निर्णयों पर अनुकी या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(6) **रोकड़ प्रवाह** – प्रत्येक संस्था रोकड़ प्रवाह बजट बनाती है। इसका विश्लेषण पूंजी विनियोग निर्णय प्रभावित करता है। इसकी सहायता से संस्था सम्पतिया प्राप्त करने के लिये कोषों की योजना बनाती

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है। जिससे वैकल्पिक विनियोग प्रस्तावों के लिए कोषों की उपलब्धता के बारे में जानकारी भी मिलती है। इससे प्रबन्ध को परियोजना का चयन करने में सुविधा होती है।

(7) **विनियोग में आशान्वित प्रत्याय** – अधिकांश मामलों में वित निर्णय भविष्य में बढ़ी हुई दर से प्रत्याय पाने की आशा में लिये जाते है। इसलिए विनियोग प्रस्तावों का मूल्यांकन करने के लिए विनियोग से भविष्य में प्राप्त होने वाले प्रत्याय या लाभों का अनुमान लगाना आवश्यक है।

(8) **गैर–आर्थिक घटक** – लाभ कारक जिनका मुद्रा में मूल्यांकन नहीं किया जा सकता आर्थिक कहलाते है। कभी–कभी गैर–आर्थिक कारक विनियोग निर्णयों को प्रभावित करते है। अधिक परिचालन करने वाली मशीन में विनियोग कर्मचारियों को चोटों से बचाकर उत्पादन में सुधार ला सकता है।

परियोजनाओं के प्रकार

अधिक भारतीय एवं राज्य वितीय संस्थान परियोजनाओं का वगीकरण उनकी आयु, अनुभव एवं उद्देश्य जिसके लिए परियोजना की गई है, के आधार पर करते है। ऐसी परियोजनाएं दो वर्गो – (1) लाभ–जनित, तथा (2) सेवा जनित में रखी जा सकती है जिनका विवेचन नीचे किया गया है –

लाभ–जनित परियोजनाएँ :–

लाभ–जनित परियोजनाएँ आवश्यकता आधारित परियोजनाएं होती है जिन्हें संस्था की लाभदायकता में सुधार करने के लिए प्रारम्भ किया जाता है। ऐसी परियोजनाएं निम्नलिखित है –

(1) **नवीन परियोजना** – एक नवीन परियोजना किसी नये उत्पाद जिसकी ग्राहकों की ओर से मांग है अथवा ऐसा बाजार से विद्यमान उत्पाद जिसकी मांग आपूर्ति से अधिक है, के लिए होती है। नयी परियोजना की पहचान तथा निर्माण के लिए विशेष ज्ञान एवं योग्यता की आवश्यकता होती है। ऐसी परियोजनाएं तब स्वीकार की जाती है जब विनियोग पर प्रत्यय दर तथा शुद्ध रोकड़ प्रवाह वांछित दर से अधिक हों।

(2) **विस्तार परियेाजना** – विस्तार परियोजना वह है जिसका उद्देश्य वर्तमान उत्पादों के लिए संस्थापित संयंत्र क्षमता को बढ़ाना है। संयंत्र क्षमता का विस्तार या तो अतिरिक्त संयंत्र क्षमता स्थापित करके या उसी उद्योग में किसी दूसरी संस्था का अधिग्रहण करके किया जा सकता है। ऐसी परियोजना को स्वीकार करने के लिए विद्यमान स्तर से नियेाजन स्तर तक विभेदक आगम एवं विभेदक लागत दोनों पर विचार किया जाता है। यदि विभेदक आगम विभेदक लागत से अधिक हो तो परियोजना स्वीकार की जाती है।

(3) **आधुनिक परियोजना** – प्रौद्योगिकी नवाचार निरन्तर प्रक्रिया है। जब नवीन प्रौद्योगिकी विकसित होती है और वाणिज्यिक रूप से लागू हो जाती है तब विद्यमान प्रौद्योगिकी पुरानी हो जाती है। अत जब कभी संयंत्र एवं मशीनरी की उत्पादन प्रक्रिया पुरानी हो जाती है तब आधुनिकीकरण की आवश्यकता होती है। आधुनिकीकरण की आवश्यकता की अनदेखी करने से लाभ की मात्रा में कमी हो जाती है जो अन्त में संस्था को बन्द करने की स्थिति तक ला सकती है। ऐसी परियोजना को स्वीकार करने के लिए आधुनिकीकरण संहिता तथा अधुनिकीकरण बिना प्रत्याय का निर्धारण करना पड़ता है। यदि विभेदात्मक प्रत्यय संतोषप्रद हो तो परियोजना स्वीकार कर ली जाती है।

(4) **प्रतिस्थापन परियोजना** – प्रतिस्थापन परियोजना में पुरानी मशीन की जगह उसी क्षमता की नयी मशीन स्थापित करना है। मशीन की उम्र तथा घिसावट के कारण असामान्य रख–रखाव लागतें, उत्पादन की घटिया किस्म तथा मात्रा, तोड़–फोड़ आदि के कारण पुरानी मशीन को उत्पादन में प्रयोग करना लाभप्रद नहीं होता। इसलिए पुरानी मशीन की रख–रखाव लागतों को कम करने तथा निर्बाध गति से उत्पादन जारी रखने के लिए प्रतिस्थापन परियाजना क्रियान्वित की जाती है। ऐसी परियोजना की स्वीकृति आधुनिकीकरण परियोजना की भांति होती है।

प्रतिस्थापन परियेजना तथा आधुनिकीकरण परियोजना में अन्तर यह है कि प्रतिस्थापन का उद्देश्य उसी या उच्च क्षमता की पुनः प्राप्ति है जबकि आधुनिकीकरण परियोजना का उद्देश्य कार्यकुशलता को बढ़ाना अथवा/और लागत को कम करना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(5) **विविधिकरण परियोजना** – जब एक निर्माता एक से अधिक उत्पादों को प्रस्तुत करता हैं तो इसे उत्पाद विविधिकरण कहते है और इस उद्देश्य के लिए क्रियान्वित परियोजना विविधिकरण परियेाजना कहलाती है। विविधिकरण परियोजनाओं की संस्था की लाभदायकता में सुधार करने की दृष्टि से नये क्षेत्रों में बाजार सम्भावनाओं का अन्वेषण करने के लिए आवश्यकता होती है। ऐसी परियोजनाएं विभेदक लागत से अधिक होने पर स्वीकार की जाती है।

सेवा–जनित परियोजनाएँ

सेवा–जनित परियोजनाएं संस्था के मूल उद्देश्य से प्रत्यक्षतः सम्बन्धित नहीं है, किन्तु इनकी क्रियान्वित दबाव में अथवा संवैधानित दायित्व पूरा करने के लिए की जाती है। ऐसी परियोजनाएँ निम्नलिखित हैं –

(1) **शोध एवं विकास परियोजनाएं** – संस्था के विभिन्न परिचालन विभागों में नये उत्पाद या प्रक्रिया में सुधार, बाजार शोध आदि पर किये जा रहे शोध एवं विकास कार्यो को शोध एवं विकास परियोजनाएं कहते है। ऐसी परियोजनाओं की स्वीकृति के लिए सम्भावित प्रत्याय कभी भी आवश्यक नहीं है क्योंकि इसका माप करना बड़ा ही कठिन है।

(2) **कल्याणकारी परियोजनाएं** – केन्टीन, आवास, चिकित्सालय आदि परियोजनाओं में विनियोजन कर्मचारियों तथा स्टाफ का मनोबल बढ़ाने के लिए किया जाता है। ऐसी परियोजनाओं का मूल्यांकन बहुत कठिन है।

(3) **शैक्षणिक परियोजनाएँ** – कर्मचारियों की कार्यकुशलता में सुधार के लिए शैक्षणिक एवं प्रशिक्षण परियोजनाओं में विनियोजन किया जाता है। ऐसी परियोजनाओं के परिणामों का मूल्यांकन भी बड़ा कठिन कार्य है।

(4) **प्रतिष्ठा परियोजनाएँ** – जनता में अनुकूल धारणा बनाने के लिए इस तरह की परियोजनाओं तथा अतिथिगृह का निर्माण, शानदार प्रशासकीय भवन आदि में विनियोग किया जाता है।

पूंजी बजटन प्रक्रिया

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है, पूंजी बजटन पूंजी व्यय विकल्पों के उद्भव, मूल्यांकन, चयन तथा अनुवर्तन की एक प्रक्रिया है। इनके पूंजी बजटन में निम्नलिखित कदम, जैसा कि नीचे दिये गये चित्र में दर्शाया गया है, उठाये जाते हैं

1. परियोजना उद्भव :–

पूंजी बजटन प्रक्रिया विनियोग प्रस्ताव के उद्भव अथवा अभिज्ञान से प्रारम्भ होती है। सम्भावित विनियोग सुअवसरों के बारे में प्रस्ताव या विचार संस्था के भीतर या बाहर उत्पन्न हो सकता है। संस्था के भीतर यह उच्च प्रबन्ध अथवा किसी विभाग के सामान्य कर्मचारी से आ सकता है। विक्रय अभियान, व्यापारिक मेले, उद्योग में लगे व्यक्ति, शोध एवं विकास संस्थाओं तथा सभा एवं संगोष्ठियों से भी विनियोजन के लिए पूंजी सम्पति पर विभिन्न प्रकार की परियेाजनाओं के बारे में जानकारीमिलती रहती है। ये परियोजनाएं 'आय वृद्धि करने वाली' अथवा 'लागत कम करने वाली' किसी भी प्रकार की हो सकती है। सामान्यतः इन परियोजनाओं को निम्न प्रकार श्रेणीबद्ध किया जा सकता हैं –

(अ) **आय वृद्धि करने वाली परियोजनाएँ** – जब एक व्यवसाय बाजार हिस्सा बढ़ाने के लिए विद्यमान संस्थापित उत्पाद क्षमता का विस्तार अथवा नये उत्पाद, नीवन बाजार, अतिरिक्त पुर्जो का निर्माण करता है, तब विस्तार या विविधिकरण सम्बन्धी निर्णय लिये जाते है। इन्हें आगम में वृद्धि करने वाले निर्णय कहते है। नवीन मशीन या भवन का क्र, वर्तमान भवन या मशीनों में विस्तार, किसी अन्य व्यवसाय का अधिग्रहण आदि विस्तार या विविधिकरण परियेाजना के उदाहरण है। ऐसी परियेाजनाओं के उपयुक्तता का निर्णय विनियोग की लागत और उससे उत्पादित होने वाली वस्तुओं से प्रत्याशित लाभ के आधार पर किया जाता है।

(ब) **लागत कम करने वाली परियोजनाएँ** – जब विद्यमान संयंत्र का आर्थिक जीवन काल समाप्त हो जाता है, तब इसे प्रतिस्थापित किया जाता है। किन्तु, यदि यह तकनीकी दृष्टि से पुराना हो गया है (यद्यपित आर्थिक जीवन समाप्त नहीं हुआ है), तब इसका आधुनिकरण किया जाता है। इस प्रकार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रतिस्थापन परियोजनाओं की दशा में संस्था का उद्देश्य वही अथवा उच्च क्षमता को बनाये रखना होता है, जबकि आधुनिकरण परियोजनाओं का उद्देश्य कार्यकुशलता में वृद्धि करना अथवा लागतों को कम करना होता है। इन्हें लागतों में कमी करने वाले निर्णय कहते है। इन परियोजनाओं में विनियोग निर्णय परियोजना की लागत और उससे मिलने वाले लाभ की तुलना विद्यमान मशीन के व्यय और उससे मिलने वाले लाभों से करके किया जाता है।

2. परियोजना मूल्यांकन :–

परियोजना मूल्यांकन प्रक्रिया में अगला कदम विभिन्न परियोजनाओं की लाभदायकता का मूल्यांकन करना है। इसके लिए (1) रोकड़ प्रवाहों में लाभों एवे लागतों का अनुमान लगाना, तथा (2) परियोजनाओं की वांछनीयता आंकने के लिए एक उपयुक्त मापदण्ड का चयन करना आवश्यक है। रोकड़ प्रवाहों का मूल्यांकन मुख्यतः भावी अनिश्चितताओं पर निर्भर करता है। प्रत्येक परियोजना से सम्बन्ध जोखिम का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करना चाहिए तथा विभिन्न प्रकार की जोखिमों के लिए पर्याप्त आयोजन करना चाहिए। इस सम्बन्ध में विशेषज्ञों की राय लेनी चाहिए। परियोजना की उपयुक्तता की जांच करने के लिए अनेक मादण्ड (इसी अध्याय में आगे विवेचित) उपलब्ध है। जहां तक सम्भव हो चयनित मापदण्ड बाजार मूल्य को अधिकतम करने के संस्था के उद्देश्य के अनुरूप होना चाहिए।

3. परियोजना जांच एवं चयन :–

यह कदम परियोजनाकी जांच तथा चयन से सम्बन्धित है। जांच एवं चयन प्रक्रिया एक संस्था से दूसरी संस्था में भिन्न होती है, क्योंकि इसके लिए कोई एक मानक प्रशासकीय प्रक्रिया निर्धारित करना कठिन है। व्यवहार में सभी पूंजीबजटन निर्णय उच्च प्रबन्ध द्वारा लियेजाते है। फिर भी, परियोजनाओं की वैज्ञानिक जांच एवं मूल्यांकन वित्त विभाग के अध्यक्ष की सलाह से मध्यम स्तरीय प्रबन्ध द्वारा किया जा सकता है।

4. पूंजीबजटन एवं परियोजना क्रियान्वयन :–

एक बार परियेाजना का अन्तिम रूप से अनुमोदन हो जाने अथवा चयन हो जाने के उपरान्त, इसके लिए कोषों का आबंटन करके पूंजी बजट तैयार किया जाता है। यह उच्च, प्रबन्ध अथवा क्रियान्वयन समिति का कर्तव्य है कि कोषों का उपयोग पूंजी बजट में किये गये आबंटन केअनुरूप है। ऐसे पूंजी व्ययों पर नियंत्रण अति आवश्यक है। इस उद्देश्य के लिए सामयिक प्रतिवेदन तैयार करके उच्च प्रबन्ध को प्रस्तुत किये जाने चाहिए। परियोजना के क्रियान्वयन में परियोजना को निर्धारित समय एवं लागत सीमा में पूरा करने के लिए उत्तरदायित्वों का निर्धारण कर देना अच्छा है।

5. निष्पति समीक्षा एवं अनुवर्तन :–

अन्त में, परियोजनाओं की निष्पति की, उनकी समाप्ति के पश्चात् तथा जीवनकाल में समीक्षा करने के लिए एक सुव्यवस्थित प्रक्रिया विकसित कर लेनी चाहिए। समीक्षा अथवा अनुवर्तन वास्तविक निष्पादन की बजट अनुमानों से तुलना करने के लिए की जाती है। इससे पूर्वानुमान शुद्ध होंगे तथा भावी पूर्वानुमान की तकनीक को सुधारने में सहायता मिलेगी।

पूंजी बजटन निर्णयों के प्रकार

पूंजी बजटन निर्णय अनेक हो सकते है, क्योंकि दी हुई परिस्थिति में, प्रत्येक पूंजी बजटन निर्णय एक विशिष्ट निर्णय है। यदि एक ही निर्णय को उसी फर्म द्वारा दो विभिन्न समयों में लिया जाता है तो किसी भी चर से से परिवर्तन के कारण वह निर्णय बदला जायेगा। इसलिए, सामान्यतः निर्णय परिस्थितियों की दृष्टि से पूंजी बजटन निर्णयों को निम्न प्रकार वगीकृत किया जा सकता हैं –

1. स्वीकृत–अस्वीकृत निर्णय :–

स्वीकृत–अस्वीकृत निर्णय स्वतन्त्र परियोजनाओं से सम्बन्धित होते है। स्वतन्त्र परियोजनाएं ये है जो एक दूसरे की प्रतिस्पर्धी नहीं है अर्थात् एक की स्वीकृति अन्य को स्वीकृत होने से नहीं रोकती है। ऐसे निर्णय प्रायः विनियोग की न्यूनतम प्रत्याय दर के आधार पर लिये जाते है। वे सभी प्रस्ताव जो वांछित न्यूनतम प्रत्याय दर अथवा पूंजी लागत से अधिक दर पर प्रत्याय देते है, स्वीकृत किये जाते है तथा अन्य अस्वीकृत। उदाहरणार्थ, यदि एक परियोजना के लिए न्यूनतम स्वीकार्य प्रत्याय कर पश्चात् 10 प्रतिशत हो तो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

एक विनियोग प्रस्ताव जिससे 12.5 प्रतिशत प्रत्याय प्राप्त होती है, स्वीकार किया जा सकता है और दूसरा प्रस्ताव जिससे केवल 8 प्रतिशत प्रत्यसाय की प्राप्त होता है, अस्वीकृत किया जा सकता है।

2. परस्पर अपवर्जी निर्णय :–

ऐसे निर्णय दो या अधिक वैकल्पिक प्रस्तावों से सम्बन्धित होते है जो परस्पर अपवर्जी हैं अर्थात् एक वैकल्पिक प्रस्ताव की स्वीकृति अन्य सभी प्रस्तावों की अस्वीकृति में परिणित होती है। इस एक प्रस्ताव को दूसरे की लागत पर स्वीकार किया जाता है। उदाहरण के लिए, एक संस्था के पास एक नयी मशीन अथवा पुरानी मशीन क्रय करने अथवा पुरानी मशीन किराये पर लेने का विकल्प है। ऐसी स्थिति में, संस्था तीनों विकल्पों में से पूंजी बजटन की किसी उपयुक्त विधि को अपनाते हुए एक सर्वोत्तम विकल्प का चयन कर सकती है। एक बार जब विकल्प का चयन कर लिया जाता है तब अन्य विकल्प स्वतः ही अस्वीकृत हो जाते है।

3. पूंजी समभाजन निर्णय :–

एक संस्था सभी लाभप्रद प्रस्तावों को स्वीकार करने में समर्थ नहीं होती, क्योंकि विनियोग के लिए उसके पास कोष सीमित है। ऐसी स्थिति में ये सभी विनियोग प्रस्ताव सीमित कोषों के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा करते है और संस्था को इनका समभाजन करना होता है। इस प्रकार, ऐसी स्थिति जहां संस्था सभी लाभप्रद लाभप्रद विनियोजन अवसरों का सीमित संसाधनों के कारण वित्त पोषण करने में समर्थ नहीं है, पूंजी समभाजन कहलाती है। इस बिन्दु पर, संस्था उच्च से निम्न प्राथमिकता के आधार पर सभी प्रस्तावों को क्रम प्रदान करती है तथा एक कट–ऑफ बिन्दु पर विचार किया जाता है। अब जो प्रस्ताव कट–ऑफ बिन्दु से उपर है, स्वीकार कर लिये जायेंगे तथा जो कट–ऑफ बिन्दु से नीचे है, अस्वीकृत कर दिये जाते है।

-----XXXX----

अदायगी अवधि विधि
(Pay-Back Period Method)

अदायगी अवधि विधि विनियोजन प्रस्तावों के मूल्यांकन की परम्परागत विधियों में सर्वाधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय विधि है । प्रत्येक संस्था का किसी परियोजना के चयन में अधिकतम लाभ प्राप्त करना जहां मुख्य उद्धेश्य है वही संस्था विनियोजन लागत को कम से कम अवधि में वसूल करना चाहती है । अतः वह अवधि जिसमें एक परियोजना की मूल लागत की वसूली होने की सम्भावना होती है, उसे अदायगी अवधि 'रोकड वसूली अवधि', 'वसूली अवधि' कहते है दूसरे शब्दों में, विनियोग की लागत उसे अर्जित की जाने वाली आय से कितने वर्षो में वापिस मिल जायेगी । इस अदायगी अवधि की गणना समान रोकड़ अन्तर्वाहों तथा असमान रोकड अन्तर्वाहो की दशा में नीचे समझाई गई है ।

1. समान रोकड़ अन्तर्वाहो की दशा में गणना :–

यदि परियोजना से प्रतिवर्ष समान रोकड अन्तर्वाह प्राप्त हो तो अदायगी अवधि की गणना परियोजना की मूल विनियोजन राशि में वार्षिक शुद्ध रोकड अंतर्वाहों का भाग देकर ज्ञात की जाती है । सूत्र रूप में –

$$\text{Pay-back Period} = \frac{\textit{Initial Investment}}{\textit{Net Annual Cash Inflows}} \text{ Or } \frac{1}{C}$$

जबकि ; 1 = प्रारम्भिक विनियोग (Initial Investments)

C = वार्षिक शुद्ध रोकड अन्तर्वाह (Net Annual Cash Inflows)

उदाहरण के लिए, यदि एक कम्पनी नई मशीन के लिए 15,000 रूपये विनियोजित करने का विचार कर रही है जिस पर उसे वार्षिक शुद्ध रोकड प्रवाह 6,000 रूपये 4 वर्षो तक प्राप्त होने की सम्भावना है। अतः इस मशीन की अदायगी अवधि निम्न होगी–

$$\text{Pay-back Period} = \frac{\textit{Initial Investment}}{\textit{Net Annual Cash Inflows}}$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$\frac{Rs.15000}{Rs.6000} = 2½ \text{ Years.}$$

उदाहरण : भाद्राजून लिमिटेड कुछ विशेष मशीनों के क्रय पर विचार कर रही है । प्रबन्ध तब तक मशीन क्रय नही करना चाहता जब तक कि उनकी लगात 3 वर्षो में वसूल न हो जाये। निम्न सूचनाएँ उपलब्ध है–

(1) मशीनों की लागत 3,00,000 रूपये

(2) नयी मशीनों से उत्पन्न विक्रय आगम 4,00,000 रूपये

(3) परिर्वतनशील लागतें बिक्री का 60 प्रतिशत है

(4) हास के अतिरिक्त स्थिर लागतें 15,000 रूपये है

(5) मशीन का जीवनकाल 8 वर्ष एवं कर की दर 50 प्रतिशत है ।

तीन वर्षो में वसूली अवधि की कसौटी पर क्या मशीनें क्रय की जाये? 3,00,000 रूपये के विनियोग की वसूली के लिए अदायगी अवधि से अपने उत्तर की पुष्टि कीजिये ।

हल

Profitability Statement

Sales Revenue		4,00,000
Less : Variable Cost (60% of sales)	2,40,000	
Fixed Costs	15,000	2,55,000
		1,45,000
Less : Depreciation (3,00,000 ÷ 8)		37,500
Profit before Tax		1,07,500
Less : Income Tax @ 50%		53,750
Profit after Tax		53,750
Add : Depreciation		37,500
Net cash Inflows		91,250

$$\text{Pay-back Period} = \frac{Initial\ Investment}{Net\ Annual\ Cash\ Inflows} \text{ Or } \frac{1}{C}$$

$$= \frac{Rs.\ 300000}{Rs.91250} = 3.3 \text{ Years}$$

निर्णय : अतः यह स्पष्ट है कि मशीन का क्रय नही किया जाना चाहिये क्योंकि लागत 3 वर्षो में वसूल नही हो सकती

उदाहरण : लाडनू लिमिटेड एक नयी मशीन क्रय करने पर विचार कर रही है । जो वर्तमान में श्रम द्वारा किये जा रही कुल प्रक्रियाओं को करेगी । इस उद्धेश्य के लिए दो वैकल्पिक मॉडल–ए तथा बी उपलब्ध है। निम्नलिखित सूचना से अदायगी अवधि दर्शाते हुए एक लाभदायकता विवरण तैयार कीजिये –

	Machine A	*Machine B*
Estimated Life (Years)	5	6
Cost of Machine (Rs.)	80,000	1,50,000
Estimated Additional Cost (Rs.) :		
Maintenance (p.m.)	500	750
Indirect Material (p.a.)	2,000	3,000
Supervision (Per Quarter)	3,000	4,500

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Estimated Savings in Scrap (p.a.) Rs.	8,000	12,000
Estimated Savings in direct wages (p.a.):		
Employees not required	10	15
Wages per employee (Rs.)	7,200	7,200

Depreciation is calculated using Straight Line Method. Taxation may be taken at 50% of profit (net sevings)

हल :

Profitability Statement

	Machine A		*Machine B*	
	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
Savings				
In Scrap		8,000		12,000
In Wages (7,200x10) & (7,200 x 15)		72,000		1,08,000
		80,000		1,20,000
Less : *Additional Costs :*				
Maintenance	6,000		9,000	
Indirect Material	2,000		3,000	
Supervision	12,000		18,000	
Depreciation (Cost □ Life)	16,000	36,000	25,000	55,000
Net Savings before Tax		44,000		65,000
Less : Tax @ 50%		22,000		32,500
Net Saving after tax and Depreciation		22,000		32,500
Add : Depreciation		16,000		25,000
Net Annual Cash Inflows		38,000		57,500
Initial Investments	Rs. 80,000		Rs. 1,50,000	
Pay-back Period= ----------	Rs. 38,000		Rs. 57,500	
Net Annual Cash Inflows	= 2,11 Years		= 2,61 Years	

2. असमान रोकड अंतर्वाहो की दशा में गणना :–

विनियोजन से प्राप्त होने वाले विभिन्न वर्षो में रोकड़ अन्तर्वाहो की राशि असमान होने की दशा में अदायगी अवधि की गणना इतनी आसान नही है जितनी समान रोकड़ अन्तर्वाहों की दशा में । ऐसी अवस्था में अदायगी अवधि की गणना रोकड प्रवाहों के उस समय तक संचयीकरण की प्रक्रिया द्वारा की जाती है जब तक की संचयी रोकड प्रवाह मूल विनियोग की लागत के बराबर न हो जावे । उदाहरण के लिए, एक परियोजना में 10,000 रूपये का विनियोग करने से पहले, दूसरे व तीसरे वर्ष क्रमशः 2,000 रू., 4,000 रू, तथा 12,000 रू का रोकड़ अन्तर्वाह होता है । इनका संचयीकरण करने पर संचयी रोकड अन्तर्वाह दूसरे व तीसरे वर्ष के अंत में क्रमशः 6,000 रू. व 18,000 रू. होते है । इसलिए अदायगी अवधि दूसरे व तीसरे वर्ष के बीच में होगी । यह मानते हुए कि एक वर्ष में रोकड, अन्तर्वाह समान रूप से वितरित है तो अतिरिक्त 4,000 (10,000–6,000) रू की वसूली दूसरे वर्ष तक 6,000 रू. वसूलने के बाद (4,000रू/12,000 रू ग 12) माह में पूरी होगी ।

उदाहरण : एक सीमित कम्पनी 1,00,000 रू. पूंजी वाली एक परियोजना में विनियोग करने पर विचार कर रही है । हास के पश्चात् किन्तु कर से पूर्व की वार्षिक आय के पूर्वानुमान इस प्रकार है –

Year	1	2	3	4	5
Amount (Rs.)	50,000	50,000	40,000	40,000	20,000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हास मूल लागत पर 20 प्रतिशत की दर से तथा आयकर शुद्ध आय 50 प्रतिशत की दर से लिया जा सकता है । अदायगी अवधि विधि का उपयोग करते हुये परियोजना का मूल्यांकन कीजिये ।

Profitability Statement

Year	Profit after Depreciation but before tax	Tax @ 50%	Depreciation Inflows	Net Cash	Cumulative Cash Inflows
	A Rs.	B Rs.	C Rs.	(A-B+C) Rs.	Rs.
1	50,000	25,000	20,000	45,000	45,000
2	50,000	25,000	20,000	45,000	90,000
3	40,000	20,000	20,000	40,000	1,30,000
4	40,000	20,000	20,000	40,000	1,70,000
5	20,000	10,000	20,000	30,000	2,00,000

Annual Depreciation = Rs. 1,00,000 x $\frac{20}{100}$ = Rs. 20,000

Pay-back Period $= 2 + \frac{Rs.10000 - Rs.90000}{Rs.40000}$

$= 2 + \frac{10000}{40000}$

= 2 ½ years i.e. 2 years 3 months

उदाहरण : ओबामा लि. एक मशीन क्रय करने पर विचार कर रही है । बाजार में दो मशीनें 'अ' तथा 'ब' प्रत्येक की लागत 1,00,000 रूपयें है । कर पश्चात् किन्तु हास पूर्व की अपेक्षित अर्जनें इस प्रकार है –

Year	1	2	3	4	5
Cash Inflows :	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
Machine A	25,000	37,500	50,000	25,000	12,500
Machine B	12,500	37,500	50,000	37,500	25,000

अदायगी अवधि विधि द्वारा दोनों विकल्पों का मूल्यांकन कीजिये ।

हल :

Calculation of Pay-back Period

Year	Machine A (Rs. 1,00,000)		Machine B (Rs. 1,00,000)	
	Net Cash Inflows	Cumulative Cash Inflows	Net Cash Inflows	Cumulative Cash Inflows
	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
1	25,000	25,000	12,500	12,500
2	37,500	62,500	37,500	50,000
3	50,000	1,12,500	50,000	1,00,000
4	25,000	1,37,500	37,500	1,37,500
5	12,500	1,50,000	25,000	1,62,500

Pay-back Period $= 2 + \frac{Rs.1000000 - Rs.62500}{Rs.50000}$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

$$= 2 + \frac{3}{4} = 2\ ¾ \text{ Years}$$

निर्णय : अतः अदायगी अवधि विधि के अनुसार मशीन । को चुना जायेगा ।

निर्णय मापदण्ड : (Decision Criterion) :-

किसी परियोजना की अदायगी अवधि जितनी कम होगी, वह परियोजना उतनी ही शीघ्र अपनी लागत की वापसी कर देगी । इसलिए जिस परियोजना की अदायगी अवधि उसके आर्थिक जीवनकाल अथवा प्रबन्ध द्वारा निर्धारित अधिकतम अवधि (जिसे कट–ऑफ–बिन्दु कहते है) से अधिक होती है, उसे अस्वीकृत कर दिया जाता है । शेष परियोजनाओं में जिसकी अदायगी अवधि सबसे कम होती है उसे चुन लिया जाता है । अनेक वैकल्पिक परियोजनाओं की दशा में सभी की अदायगी अवधि की गणना करके उन्हें क्रमबद्ध कर लिया जाता है । सबसे कम अदागी अवधि वाली परियोजना को प्रथम स्थान दिया जाता है और फिर उसी क्रम में अन्य परियेाजनाओं को क्रमबद्ध किया जाता है । अंत में प्रथम क्रम अवधि वाली परियोजना स्वीकृत कर ली जाती है ।

उदाहरण : (क्रम प्रदान करना) : पांच स्वतंत्र विनियोग प्रस्तावों से सम्बन्धित वितीय समंको का संक्षप्ति विवरण निम्नांकित है –

Proposal	*Initial Outlay*	*Annual Cash Flow*	*Life in Year*
	Rs.	Rs.	
A	60,000	18,000	15
B	88,000	15,000	22
C	2,150	1,000	3
D	20,000	3,000	10
E	4,25,000	1,50,000	20

अदायगी अवधि पद्धति से इन प्रस्तावों को क्रमबद्ध कीजिये ।

Ranking According to Pay-back Method

Proposal (1)	*Initial Outlay* (2)	*Annual Cash Flow* (3)	*Pay-back Period* (4) = [(2)+(3)]	*Rank* (5)
	Rs.	Rs.		
A	60,000	18,000	3.33 years	3
B	88,000	15,000	5.87 years	4
C	2,150	1,000	2.15 years	1
D	20,000	3,000	6.67 years	5
E	4,25,000	1,50,000	2.83 years	2

अदायगी अवधि के लाभ :–

(1) **सरल** :इसकी गणना करना तथा समझना बहुत ही सरल है। यह पद्धति छोटी संस्थाओं, जिनके पास सीमित श्रम शक्ति है और जो अन्य जटिल प्रविधियेां के उपयोग की योग्यता नही रखती, द्वारा अपनाई जा सकती है। इंग्लैण्ड एवं अमेरिका में विदेशी विनियोग की लाभदायकता के मूल्यांकन में इस विधि को बहुतायत से अपनाया जाता है।

(2) **कम लागत** : अन्य परिष्कृत विधियों, जिनमें विश्लेषक के समय एवं संगणकों के उपयोग में पर्याप्त लागत आती है, की तुलना में यह कम लागतशील विधि है ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(3) रोकड कमी वाली संस्थाओं के लिए महत्वपूर्ण : जब संस्था की रोकड स्थिति अत्यन्त शोचनीय होती है, उस समय अदायगी अवधि विधि अत्यन्त उपयोगी होती है । क्योंकि ऐसी परिस्थिति में उस विनियोग प्रस्ताव को जिसकी सहायता से विनियोजन लागत शीघ्रतम वसूल हो सके, प्राथमिकता दी जाती है । इस तरह यह विधि तरलता अवधारणा है, लाभदायकता अवधारणा नही ।

(4) अप्रचलन का भय : ऐसे उद्योग जिनमें तकनीकी प्रगति बडी तेजी से होती है, वहां मशीनों के अप्रचलन का भय अधिक रहता है । अतः वहां उन्हीं परियोजनाओं को चुना जाता है जिनकी अदायगी अवधि कम से कम हो ।

(5) जोखिम मे कमी : विस्तृत अर्थ में अदायगी अवधि विधि जोखिम में भी व्यवहार करती है । कम अदायगी अवधि वाली परियोजना अधिक अवधि वाली परियोजना की तुलना में कम जोखिमपूर्ण होती है । इस तरह कम अदायगी अवधि से परियेाजना की जोखिम कम की जा सकती है ।

अदायगी अवधि की सीमाएँ :–

(1) परियोजना की लाभदायकता की उपेक्षा : यह विधि परियोजना की लाभदायकता का मूल्यांकन नही करती। यह केवल परियोजना में लगी लागत की वसूली पर ही बल देती है । जबकि अंततोगत्वा लाभ लागत वसूली के बाद ही होते है। पहले नही । कोई भी विनियोक्ता केवल पूंजीगत व्यय को वसूल करने के लिए ही विनियोग नही करता। किसी भी विनियोजन के (अ) पूंजी की वापसी तथा (ब) लाभदायकता जिसे प्रत्याय दर के रूप में व्यक्त किया जाता है, दो मुख्य लक्ष्य है । इस विधि में प्रथम लक्ष्य को ही ध्यान में रखा जाता है। एवं द्वितीय लक्ष्य की अवहेलना की जाती है । इसलिए प्रायः इस विधि को 'मछलीचारा कसौटी' के रूप में सम्बोधित किया जाता है, क्योंकि इसमें मछली के आकार के बजाय चारे की वसूली पर ही बल दिया जाता है ।

(2) अदायगी अवधि के बाद वाले रोकड अंतर्वाहो की उपेक्षा : इस विधि के अंन्तर्गत परियोजना के सम्पूर्ण रोकड अंतर्वाहो पर विचार नही किया जाता अर्थात अदायगी अवधि के पश्चात् के रोकड़ अंतर्वाहो को छोड़ दिया जाता है। उदाहरण के लिए, एक संस्था के समक्ष 15,000 रू की लागत की दो मशीनों के क्रय का विकल्प है। प्रथम मशीन से 5,000 रूपये वार्षिक आय तीन वर्ष तक होगी जबकि दूसरी मशीन से 4,000 रूपये वार्षिक आय 5 वर्षो तक होगी । अदायगी अवधि विधि के अनुसार प्रथम मशीन को स्वीकृत मामना जाएगा क्योंकि इसकी अदायगी अवधि 3 वर्ष है जबकि दूसरी की 5 वर्ष । किन्तु दूसरी मशीन से कुल लाभ 20,000 रू (4,000 x 5) होगा ।

(3) रोकड अंतर्वाहों के आकार एवं समय की उपेक्षा : इस विधि में विभिन्न समयों एवं विभिन्न मात्राओं में प्राप्त रोकड अंतर्वाहो में कोई अन्तर नही किया जाता अर्थात यदि एक परियोजना प्रारम्भ के वर्षो में अधिक व अन्तिम वर्षो में कम तथा दूसरी परियोजना प्रारम्भ में कम तथा अंत में अधिक रोकड अर्जित करती है तो कम अदायगी अवधि के आधार पर निर्णय अलाभकारी हो सकता है। उदाहरण के लिए, दो परियोजनाएँ 'अ' तथा 'ब' जिनाक प्रारम्भिक विनियोग 15,000 रू है, के रोकड अंतर्वाह तथा अदायगी अवधि निम्न प्रकार है –

वर्ष	परियोजना 'अ'		परियोजना 'ब'	
	शुद्ध रोकड़ अंतर्वाह	संचयी रोकड़ अन्तर्वाह	शुद्ध रोकड़ अंतर्वाह	संचयी रोकड़ अन्तर्वाह
	रू.	रू.	रू.	रू.
1	4,000	4,000	11,000	11,000
2	5,000	9,000	2,000	13,000
3	6,000	15,000	1,000	14,000
4	2,000	17,000	3,000	17,000
	अदायगी अवधि = 3 वर्ष		**अदायगी अवधि = 3 वर्ष 4 माह**	

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपर्युक्त उदाहरण में कम अदायगी अवधि वाली परियोजना 'अ' अधिक लाभदायक नही होगी जबकि अधिक अदायगी वाली परियोजना 'ब' को स्वीकृत करना अधिक लाभप्रद होगा, क्योंकि परियोजना 'ब' में प्रथम वर्ष में ही लाभ लागत का 75 प्रतिशत वसूल हो जाता है जबकि परियोजना 'अ' में केवल 27 प्रतिशत ही वसूल होता है। अतः इस विधि में विषम दर से लाभार्जन पर ध्यान नही दिया जाता।

(4) रोकड़ अंतर्वाहो के वर्तमान मूल्य की उपेक्षा : अदायगी अवधि में यह माना जाता है कि विभिन्न वर्षो में प्राप्त होने वाली रोकड़ आय के वर्तमान मूल्य समान है। जबकि हम जानते है कि एक रूपये का जो वर्तमान मूल्य है, वह एक वर्ष अथवा दो वर्ष बाद मिलने वाले रूपये से अधिक होगा। इसलिए इस विधि के रोकड़मूल्य की अवहेलना की जाती है।

(5) पूंजी लागत की उपेक्षा : इस विधि मे परियोजना पर विनियोजित पूंजी की लागत की भी अवहेलना की जाती है। इसमे एक प्रकार से यह मान लिया जाता है कि 20,000 रू. की परियोजना द्वारा केवल 20,000 रू. की ही वापसी करनी है और पूंजी की कोई लागत नही होती है। किन्तु किसी व्यावसायिक संस्था को पूँजी मुफ्त में उपलब्ध नही होती। इसलिए 20,000 रू. की परियोजना पर संस्था को अदायगी अवधि विधि के अनुसार न केवल 20,000 रू. ही वसूल करना है, बल्कि इस पूंजी पर देय ब्याज (पूंजी लागत) भी वसूल करना है। यदि परियोजना से प्रथम वर्ष में 12,000 रू. तथा द्वितीय वर्ष मे 8,000 रू. रोकड आय हो तो इस विधि से लागत वसूली तो हो गई किन्तु यदि फर्म पूंजी पर 10 प्रतिशत वार्षिक ब्याज देती हो तो इसे दो वर्षो के अंत में 3,000 रूपये की आवश्यकता और होगी जिनकी गणना इस प्रकार की गई है –

वर्ष	मूलधन	ब्याज 10:	कुल देय राशि	रोकड अंतर्वाह	अदत शेष
	रू.	रू.	रू.	रू.	रू.
1	20,000	2,000	22,000	12,000	10,000
2	10,000	1,000	11,000	8,000	3,000

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वितीय वर्ष का रोकड़ अंतर्वाह 8,000 रू. के बजाय 11,000 रू. होने पर ही वास्तविक लागत वसूल हो सकती है । किन्तु अदायगी अवधि विधि से 3,000 रू. की यह राशि बिना वसूल की हुई रह जाती है ।

(6) अधिकतम स्वीकार्य अवधि की गणना कठिन : प्रबन्ध के लिए एक अधिकतम स्वीकार्य योग्य अदायगी अवधि जिसके आधार पर किसी परियोजना को स्वीकृत करने का निर्णय लिया जा सके, निर्धारण करना कठिन है । इसके लिए कोई विवेकीय आधार नही हो सकता ।

विधि की उपयुक्तता

उपर्युक्त सीमाओं के आधार पर अदायगी अवधि के अनुसार लिया गया निर्णय अनुचित होगा । किन्तु इसके बावजूद भी यह विधि निम्न परिस्थितियों में अधिक उपयुक्त होती है –

- परियोजना की लागत तुलनात्मक रूप से कम है तथा अल्पकाल में पूर्ण होने योग्य है ।
- संस्था के पास कोष सीमित है तथा अतिरिक्त कोष प्राप्त करने की योग्यता अथवा इच्छा नही है ।
- जहां संस्था की रोकड अर्जन क्षमता कम है तथा परियोजना के लिए पूंजी व्यवस्था ऋण से की गई है जिसका भुगतान अल्प अवधि में किया जाना है ।
- ऐसी परियोजनाएँ जिनके औद्योगिक एवं तकनीकी विकास के कारण प्रचलित हो जाने की सम्भवना अधिक हो यह विधि ही उपयुक्त रहती है; क्योंकि विनियेाजित राशि जितनी शीघ्र वसूल हो, अप्रचलन की जोखिम उतनी ही कम हो जाती है । यही कारण है कि अमेरिका में बहुसंख्यक कम्पनियाँ इस विधि के आधार पर विनियोग निर्णय लेती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अदायगी–अवधि में सुधार

अदायगी अवधि विधि के विस्तृत प्रयोग के कारण इसकी उपर्युक्त कमियों को दूर करने के लिए इस विधि में कुछ सुधार किये गये है जो इस प्रकार है –

1. अदायगी अवधि के पश्चात् लाभप्रदता की गणना :–

जैसा कि पीछे बतलाया गया है, अदायगी अवधि विधि में परियोजना की अदायगी अवधि के पश्चात् की रोकड़ आय की अवहेलना की जाती है । इससे यह विधि परियोजना की लाभदायकता की जॉच न होकर केवल तरलता की जॉच ही रह जाती है । अतः इस कमी को दूर करने के लिए विभिन्न परियोजनाओं की अदायगी अवधि के पश्चात् के शेष जीवन काल के अर्जनों की गणना की जाती है । इसमें सम्पति के अन्तिम वर्ष में रोकड निस्तारण मूल्य को भी सम्मिलित कर लिया जाता है । जिस परियोजना की 'अदायगी अवधि के पश्चात् की अर्जने' सर्वाधिक होगी उस परियोजना को सर्वोतम माना जाएगा । अदायगी अवधि के पश्चात् की लाभदायकता की गणना निम्न प्रकार की जा सकती है

Post Pay-back Profitability = Total Cash Inflows in Life – Initial Cost
Or = Annual Cash Inflows (Total Life-Pay-back Period)

In alternate formula, the amount of scrap value and working capital released will be added.

उदाहरण : नीचे दी गई प्रत्येक परियोजना के लिए (अ) अदायगी अवधि, तथा (ब) अदायगी अवधि के पश्चात् लाभदायकता की गणना कीजिये –

	Rs.
Initial Outlay	1,00,000
Annual Cash Inflows (after tax but before depreciation)	20,000
Estimated Life	8 Years

हल :

(i) Pay-back Period $= \frac{Initial\ Investment}{Net\ Annual\ Cash\ Inflows} = 2 + \frac{Rs.100000}{Rs.20000} = 5$ Years

(ii) Post Pay-back Profitability = Annual Cash Inflow x (Estimated Life – Pay-back Period)
= Rs. 20,000 x (8 – 5)
= Rs. 20,000 x 3 = Rs. 60,000
= Total Cash Inflows in Life – Initial Cost
= Rs. 1,60,000 (20,000 x 8) – Rs. 1,00,000 = Rs. 60,000

उदाहरण : विष्णु लिमिटेड एक नयी मशीन के क्रय पर विचार कर रही है जो कि श्रम द्वारा की जाने वाली क्रियाओं को करेगी । 'ए' तथा 'बी' वैकल्पिक प्रतिरूप है । नीचे दी गयी सूचना से लाभदायकता विवरण बनाइये और आप (अ) अदायगी अवधि विधि तथा (ब) अदायगी अवधि विधि के पश्चात् लाभप्रदता के आधार पर किस प्रतिरूप की अनुशंसा करेगें ।

	Machine A	*Machine B*
Estimated Life of Machine (Years)	5	6
	Rs.	Rs.
Cost of Machine	1,50,000	2,50,000
Cost of indirect materials	6,000	8,000
Estimated Savings in Scrap	10,000	15,000
Additional Cost of Maintenance	19,000	27,000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Estimated Savings in Direct Wages :		
Employees not required (no.)	150	200
Wages per employee	600	600

Taxation is to be regarded as 50% of profits. Ignore depreciation for calculation of tax.

हल :

Ranking According to Pay-back Method

Particulars	*Machine A*	*Machine B*
	Rs.	Rs.
Estimated Savings in scrap	10,000	15,000
Estimated Savings in Direct Wages	90,000	1,20,000
Total Savings (a)	1,00,000	1,35,000
Cost of indirect material	6,000	8,000
Additional Cost of Maintenance	19,000	27,000
Total Cost (b)	25,000	35,000
Net Saving before tax (a) – (b)	75,000	1,00,000
Less : Tax @ 50%	37,500	50,000
Net savings per year (after tax)	37,500	50,000

(i) Pay-back Period= $\frac{\textit{Inditial Investment}}{\textit{Savings per year}}$

Machine A = $\frac{Rs.150000}{Rs.37500}$ = 4 Years

Machine B = $\frac{Rs.250000}{Rs.50000}$ = 5 Years

Hence, machine A is recommended.

(ii) Post Pay-back Profitability = Total Savings in Life – Cost
Machine A = (Rs. 37,500x5) – Rs. 1,50,000 = Rs. 37,500
Machine B = (Rs. 50,000x6) – Rs. 2,50,000 = Rs. 50,000

Or Savings per year = (Total Life- Pay-back Period)

Machine A = 37,500 (5 - 4) = Rs. 37,500
Machine B = 50,000 (6 - 5) = Rs. 50,000

2. बेल –आउट अदायगी अवधि :–

अदायगी अवधि विधि में जिस मशीन की सबसे कम अदायगी अवधि होती है, उसका चयन किया जाता है । किन्तु बेल–आउट अदायगी अवधि में यह माना जाता है कि प्रत्येक वर्ष के अन्त में सम्पति का निस्तारण मूल्य होता है जिस पर, यदि आवश्यकता हो तो, सम्पति को बेचा जा सकता है। इसलिए बेल–आउट अदायगी अवधि की गणना के लिए हमें रोकड़ प्रवाह एवं अवशिष्ट मूल्य दोनों को एक साथ लेना होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Yar	Annula Cash inflow	Cum Cash inflow	Residual Value	Cumulative Total 3+4
	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
1	2	3	4	5
1	16,000	16,000	15,000	31,000
2	16,000	32,000	10,000	42,000
3	16,000	48,000	5,000	53,000

उपरोक्त सारण से स्पष्ट है कि बेल–आउट अदायगी अवधि 2 वर्ष है जो सामान्य रूप से आंकलित अदायगी अवधि 2.5 वर्ष से कम है । यह विधि वही सम्भव हो सकती है जहॉ पुरानी सम्पतियों का द्वितीयक बाजार हो।

3. अदायगी अवधि व्यत्क्रमो की गणना :–

अदायगी अवधि में विभिन्न वर्षो की अर्जनो के 'समय कारक' पर ध्यान नही दिया जाता । साथ ही परियोजना की लाभदायकता का माप करने के लिए प्रत्याय दर की गणना भी नही की जाती । इस कमी को पूरा करने के लिए अदायगी–अवधि व्यत्क्रमों की गणना की जाती है । अदायगी अवधि का व्युत्क्रम ही विनियोग पर समय समायोजित प्रत्याय दर होती है । एम.जे गॉर्डन के शब्दो में ''अदायगी अवधि का व्युत्क्रम वास्तव में प्रस्ताव की लाभप्रदता दर का अनुमान है ।'' इस व्युत्क्रम की गणना वार्षिक रोकड़ प्रवाह की राशि की कुल विनियोजित राशि का भाग देकर उसे 100 से गुणा करके की जाती है । सूत्र रूप में

$$\text{Pay-back Reciprocal} = \frac{\textit{Annual Cash Inflows}}{\textit{Investment}} \times 100$$

Or

$$\text{Pay-back Reciprocal} = \frac{.1}{\textit{Pay Back Period}} \times 100$$

उदाहरण : के लिए, 10,000 रू. लागत की परियोजना से 5 वर्षो तक 2,500 रू. रोकड़ अन्तर्वाह हो तो अदायगी अवधि व्युत्क्रम (2,500 / 10,000 ग 100) त्र 25ः होगा। इसी उदाहरण में अदायगी अवधि 4 वर्ष (10,000 2,500) होगी जिसक व्युत्क्रम 1 / 4 अर्थात 25 प्रतिशत होगा । यही परियोजना की 'लाभप्रदता दर' या 'समय–समायोजित प्रत्याय दर' होगी। इस विधि का प्रयोग केवल समान रोकड़ अंतर्वाहो तथा परियोजना का जीवन काल कम–से–कम अदायगी अवधि का दुगना होने पर ही किया जा सकता है।

लेखांकन प्रत्याय दर विधि
Accounting Rate of Return Method

यह विधि 'औसत प्रत्याय दर विधि' भी कहलाती है, क्योकि इसकी गण्ना केलिए आवश्यक आंकडे लेखांकन विवरणों से ही लिये जाते है । इसे 'समायोजित प्रत्याय दर विधि' भी कहते है; क्योंकि इसमें विभिन्न वर्षो से रोकड अंतर्वाहो के वर्तमान मूल्य के अंतरो का ध्यान में नही रखा जाता है।

औसत प्रत्याय दर विधि का प्रयोग विनियोग प्रस्तावों की लाभप्रदता का माप करने के लिए किया जाता है। इस विधि में औसत वार्षिक लाभो (कर पश्चात्) को विनियोग के प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है। जब इसकी गणना में मूल या प्रारम्भिक विनियोग को लिया जाता है। तब यह 'विनियोग पर प्रत्याय कहलाती है और जब इसकी गणना के लिए औसत विनियोग का उपयोग किया जाता है तब 'औसत प्रत्याय दर' कहलाती है । यद्यपि इसकी परिभाषा के सम्बन्ध में मतैक्य नही है, फिर भी इसकी गणना औसत वार्षिक लाभों (कर पश्चात्) में औसत विनियोग का भाग देकर की जाती है, जिसके लिए निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता है –

1. औसत विनियोग पर प्रत्याय दर :–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इसके अन्तर्गत औसत प्रत्याय दर की गणना परियोजना से उत्पन्न होने वाली 'औसत वार्षिक शुद्ध आय' में 'औसत विनियोग राशि' का भाग देकर उसे 100 से गुणा करके की जाती है । सूत्र रूप में –

- यदि कर व हास के पश्चात् के लाभ दिये हो –

$$\text{ARR} = \frac{\textit{Average Annual Income after tax and depreciation}}{\textit{Average Investment}} \times 100$$

यदि वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाह दिये हो –

$$\text{ARR} = \frac{\textit{Average Annual Cash Inflows} - \textit{Annual Depreciations}}{\textit{Average Investment}} \times 100$$

- यदि विनियोग की मूल लागत का उपयोग किया जाता है –

$$\text{ARR} = \frac{\textit{Average Annual Income after tax and depreciation}}{\textit{Original Investment}} \times 100$$

प्रतिस्थापन परियोजनाओ की दशा मे औसत प्रत्याय दर की गणना पुरानी मशीन के स्थान पर नयी मशीन लगाने के कारण भावी वार्षिक अर्जनों में होने वाली वृद्धि की राशि में संवर्द्धात्मक विनियोग की कुल या औसत राशि का भाग देकर की जाती है । सूत्र रूप में –

$$\text{ARR} = \frac{\textit{Increase in exp ected future annual net earnings}}{\textit{Increase in Average or Initial Investment}} \times 100$$

'औसत वार्षिक आय' राशि की गणना रोकड़ प्रवाह पर आधारित न होकर लेखांकन सिद्धान्त पर आधारित होती है । इसलिए शुद्ध आय निकालने के लिए उस वर्ष की समस्त आयें एवं व्ययों का सम्मिलित किया जाता है, चाहे उनसे रोकड़ प्रवाह होता हो अथवा नही । यह कर पश्चात् आय है जिसकी गणना निम्न में से किसी भी विधि से की जा सकती है –

- परियोजना के जीवन काल की ऐसी सभी आयों के योग में जीवन काल का भाग देकर औसत वार्षिक शुद्ध आय की गणना कर ली जाती है ।
- यदि किसी परियोजना से प्राप्त सम्भावित आये सभी वर्षो के लिए समान है, तब वार्षिक आय ही औसत आय है ।
- यदि वार्षिक रोकड़ प्रवाह दिये हो तो लेखांकन आय में परिवर्तित करने के लिए वार्षिक हास की राशि (सीधी रेखा पद्धति पर आधारित) को घटा देना चाहिये ।

'औसत विनियोग' प्रारम्भि क व अन्तिम अप्राप्य पूंजी का औसत होता है। इसके लिये प्रत्येक वर्ष के प्रारम्भ व अन्त मं अप्राप्य पूंजी निकालकर उसकी औसत ज्ञात कर ली जाती है । किन्तु, यदि हास स्थायी किस्त विधि से लगाया जाये तो औसत विनियोग की गणना निम्न में से किसी भी सूत्र से की जा सकती है –

Average Investment = ½ (Initial Investment – Salvage Value) + Salvage Value

Or

= ½ (Initial Investment + Salvage Value)

अतः औसत प्रत्याय दर का सूत्र इस प्रकार है –

$$\text{ARR} = \frac{\textit{Average Annual Income after tax and depreciation}}{\text{½ (Initial Investment + Salveage value)}} \times 100$$

कभी कभी परियोजना के प्रारम्भिक वर्ष में अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है जो केवल परियोजना के जीवनकाल के अन्त में ही मुक्त की जा सकती है। इसलिए अतिरिक्त पूँजी की यह राशि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

परियोजना के जीवनकाल में फंस जाती है। अतः इसे उपरोक्त तरीके से गणना की गई औसत राशि में जोड देनी चाहिए। नया सूत्र इस प्रकार होगा –

Average Investment = (Initial Investment – Salvage Value) + SV+NWC

Or

= ½ (Initial Investment + Salvage value) + NWC

दृष्टांतीय उदाहरण : हास की सीधी रेखा विधि मानते हुये नीचे दी गई सूचना से औसत अवनियोग की गणना कीजिये –

Fund average investment with the help of the following information assuming straight line method of depreciation :

Initial Investment	Rs. 30,000
Salvage Value	Rs. 3,000
Working	Rs. 6,000
Expected life of the project	4 Years

हल

Average Investment = ½ (Initial Investment – Salvage Value) + S.V.+NWC

= ½ (Rs. 30,000-Rs. 3,000) + Rs. 3,000 + Rs. 6,000

= Rs. 13,500 + 3,000 + 6,000 = Rs. 22,500

Or

= ½ (Initial Investment + Salvage Value) + NWC

= ½ (Rs. 30,000 + 3,000) + Rs. 6,000

= Rs. 16,500 + 6,000 = R.s 22,500

उदाहरण : एक परियोजना की लागत 15,000 रू. तथा अवशिष्ट मूल्य 3,000 रू. है। इससे हास एवं कर से पूर्व प्रथम पॉच वर्षो में आय का प्रवाह क्रमशः 3,000 रू.; 3,600 रू.; 4,200 रू.; 4,800 रू. तथा 6,000 रू. है। परियोजना के लिए औसत प्रत्याय दर की गणना यह मानते हुए कीजिये कि आयकर की दर 50 प्रतिशत है तथा हास सीधी रेखा पद्धति से अपलिखित किया जाता है ।

Calculation of Avrage Rate of Return

Year	**1**	**2**	**3**	**4**	**5**	**Total**	**Average**
	Rs.	**R.s**	**Rs.**	**Rs.**	**Rs.**	**Rs.**	**Rs.**
Income before Depreciation and Tax	3,000	3,600	4,200	4,800	6,000	21,600	4,320
Less : Depreciation	2,400	2,400	2,400	2,400	2,400	12,000	2,400
Net Income before tax	600	1,200	1,800	2,400	3,600	9,600	1,920
Less:Invome Tax@50%	300	600	900	1,200	1,800	4,800	960
Net Invome after taxes	300	600	900	1,200	1,800	4,800	960
Book value of Invest. :							
Beginning	15,000	12,600	10,200	7,800	5,400	51,000	10,200
Ending	12,600	10,200	7,800	5,400	3,000	39,000	7,800
Average	13,800	11,400	9,000	6,600	4,200	45,000	9,000

$$ARR = \frac{Average\ Annual\ Income\ after\ tax\ and\ depreciation}{Average\ Investment} \times 100$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$= \frac{Rs.960}{Rs.9000} \times 100$$

= 10.675

Or

$$ARR = \frac{Average\ Annual\ Income}{\text{½ (Initial Investment + Scrap Value)}} \times 100$$

$$= \frac{Rs.960}{\text{½ (Rs.15,000 + 3,000)}} \times 100$$

$$= \frac{Rs.960}{Rs.9000} \times 100$$

= 10.67%

उदाहरण : सुजानगढ़ लिमिटेड एक परियोजना जिसकी लागत 5,00,000 रू. है में विनियोजन करने पर विचार कर रही है । अनुमानित अवशिष्ट मूल्य शून्य है । कर की दर 35 प्रतिशत है । कम्पनी आयकर के लिए सीधी रेखा हास पद्धति अपनाती है और प्रस्तावित परियोजना से का पूर्व रोकड प्रवाह इस प्रकार है –

Year	1	2	3	4	5
CFBT (Rs.)	1,00,000	1,00,000	1,50,000	1,50,000	2,50,000

निर्धारण कीजिये – (अ) अदायगी अवधि विधि; तथा (ब) औसत प्रत्याय दर ।

Cash Inflows

Year	1	2	3	4	5
	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
Cash Flow before Tax *Less* : Depreciation	1,00,000 1,00,000	1,00,000 1,00,000	1,50,000 1,00,000	1,50,000 1,00,000	2,50,000 1,00,000
Profit before tax *Less* : Tax 2.35%	- -	- -	50,000 17,500	50,000 17,500	1,50,000 52,500
Profit after Tax *Add* : Depreciation	- 1,00,000	- 1,00,000	32,500 1,00,000	32,500 1,00,000	97,500 1,00,000
Cash Inflows	1,00,000	1,00,000	1,32,500	1,32,500	1,97,500
Comulative CF	1,00,000	2,00,000	3,32,500	4,65,000	6,62,500

(i) Pay-back Period $= 4 + \frac{\text{Rs. 5,00,000 - Rs. 4,65,000}}{\text{Rs.1,97,500}}$

= 4 + .18 = 4.18 Years

$$ARR = \frac{Average\ Annual\ Income\ after\ tax\ and\ depreciation}{Average\ Investment} \times 100$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$= \frac{Rs.162500/5}{Rs.500000/2} \text{ X } 100$$

$$= \frac{Rs.32500}{Rs.250000}$$

निर्णय मापदण्ड

सामान्यतः सभी संस्थाएँ प्रत्याय की एक न्यूनतम दर निश्चित कर लेती है । जो परियोजनाएँ इस न्यूनतम दर से कम प्रत्याय दर देती है, उन्हें पूर्णतः अस्वीकार कर दिया जाता है तथा अधिक प्रत्याय दर वाली परियोजना को स्वीकृत कर लिया जाता है। अनेक परियोजनाओं की दशा में सभी परियोजनओं को प्रत्याय दर से अनुसार आरोही या अवरोही क्रम में विन्यासित कर लिया जायेगा । तत्पश्चात् वांछित न्यूनतम प्रत्याय दर से कम औसत प्रत्याय वाली परियोजनाओं को अस्वीकृत किय जायेगा तथा अधिक दर वाली परियोजनाओं में प्राथमिकता के आधार पर चयन कर लिया जायेगा ।

औसत प्रत्याय दर विधि के लाभ

(1) **सरलता** : यह विधि समझने एवं प्रयोग करने की दृष्टि से बहुत सरल है। इसमें गणना प्रक्रिया भी आसान है। इसे लेखांकन समंकों से ही ज्ञात किया जा सकता है। परियोजना के रोकड़ प्रवाहों के लिए किसी प्रकार के समायोजन की आवश्यकता नही है।

(2) **विनियोग की लाभप्रदता** : इस विधि में विनियोग की लाभ प्रदता पर ध्यान दिया जाता है तथा विनियोग से प्राप्त सभी वर्षो के लाभों पर विचार किया जाता है; जबकि अदायगी अवधि के बाद की आय का ध्यान नही रखा जाता है।

(3) **उचित निर्णय** : इस विधि में औसत प्रत्याय दर से पूंजी लागत की तुलना करके विनियोग प्रस्तावों के सम्बन्ध में निर्णय आसानी से लिया जा सकता है ।

औसत प्रत्याय दर की सीमाएँ

(1) **समय कारक की उपेक्षा** : अदायगी अवधि विधि की तरह यह विधि भी विभिन्न वर्षो की प्रत्याय राशि के वर्तमान मूल्य पर विचार नही करती । वास्तव में विभिन्न परियोजनाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए इन पर भविष्य के विभिन्न वर्षो की आय का वर्तमान मूल्य ज्ञात करना चहिऐ ।

(2) **लेखांकन लाभो का उपयोग** : इस विधि में प्रत्याय दर की गणना के लिए लेखांकन विवरणों द्वारा प्रदर्शित लाभों का प्रयोग किया जाता है जो कि परियोजना से प्राप्त होने वाली सही रोकड़ अन्तर्वाहो का सही रूप नही होते ।

(3) **उचित प्रत्याय दर का निर्धारण कठिन** : प्रत्येक संस्था एक न्यूनतम प्रत्याय दर निश्चित कर लेती है । इस दर से कम प्रत्याय वाली परियोजनाओं को अस्वीकृत कर दिया जाता है । व्यवहार में इस प्रकार की न्यूनतम दर का निर्धारण कठिन है ।

(4) **परियोजना जीवनकाल की अवहेलना** : यदि विधि परियोजना के जीवनकाल की अवहेलना करती है । एक अधिक जीवन वाली परियोजना की औसत प्रत्याय दर कम जीवन वाली परियोजना के समान ही लगती है अतः औसत प्रत्याय दर के आधार पर दोनों परियोजनाएँ समान होगी जबकि कम जीवन वाली परियोजना की तुलना में अधिक जीवन वाली परियोजना स्वीकार की जायेगी ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपयुक्तता : उपर्युक्त कमियों के होने पर भी दीर्घजीवन वाली परियोजनओं के लिए विधि का प्रयोग सरलता से किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त जहॉ विनियोग से प्राप्त अर्जनों का पुर्नाविनियोजन नही किया जा सकता हो तब इस विधि से ज्ञात प्रत्याय दर के आधार पर भी सही निर्णय लिया जा सकता है

उदाहरण : जोधपुर कम्पनी निम्न मशीनों, जिनसे सम्बन्धित समंक नीचे दिये गये हैए में से एक मशीन क्रय करने पर विचार कर रही है –

		Machine X	*Machine Y*
Estimated Life		3 Years	3 Years
Capital Cost		Rs. 90,000	Rs. 90,000
Earnings (after tax)	Year 1	40,000	20,000
	Year 2	50,000	70,000
	Year 3	40,000	50,000

कम्पनी हास की सीधी रेखा पद्धति अपनाती है; दोनों प्रकार की मशीनों का अवशिष्ट मूल्य शून्य है । (अ) अदायगी अवधि विधि; तथा (ब) औसत प्रत्याय दर के आधार पर सर्वाधिक लाभप्रद विनियोग बताइये ।
हल :

Calculation of Pay-back Period

Year	*EAT*	*Depreciation*	*Cash Flow*	*Comulative Cash Flow*
1	2	3	4	5
Machine X	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
1	40,000	30,000	70,000	70,000
2	50,000	30,000	80,000	1,50,000
3	40,000	30,000	70,000	2,20,000
Machine Y	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
1	20,000	30,000	50,000	50,000
2	70,000	30,000	1,00,000	1,50,000
3	50,000	30,000	80,000	2,30,000

(i) Pay-back Period :

$$\text{Machine X} = 1 + \frac{Rs.90000 - 70000}{Rs.80000}$$

$$= 1 + .25 = 1.25 \text{ Years}$$

$$\text{Machine Y} = 1 + \frac{Rs.90000 - 50000}{Rs.100000}$$

$$= 1 + .4 = 1.4 \text{ Years}$$

$$\text{(ii) Average Rate of Return} = \frac{Average\ Annual\ Income\ after\ tax\ and\ depreciation}{Average\ Investment} \times 100$$

$$\text{Machine X} = \frac{Rs.40000 + 50000 + 40000/3}{Rs.90000/2} \times 100$$

$$= \frac{Rs.43333}{Rs.45000} \times 100 = 96.3\%$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$\text{Machine Y} = \frac{Rs.20000 + 70000 + 50000/3}{Rs.90000/2} \times 100$$

$$= \frac{Rs.46667}{Rs.45000} \times 100 = 103.7\%$$

उदाहरण : (प्रतिस्थापन परियोजना) : छः वर्ष पूर्व 1,50,000 रू. में खरीदी गई एक मशीन का हासित मूल्य 90,000 रू. है। प्रारम्भ में इसका प्रक्षेपित जीवन काल 15 वर्ष तथा निस्तारण मूल्य शून्य था। एक नई मशीन से जिसकी लागत 2,50,000 रू. होगी, अगले 9 वर्ष तक परिचालन लागतों में 30,000 रू. वार्षिक कमी होगी। पुरानी मशीन को 50,000 रू. में बेचा जा सकता है। नई मशीन का निस्तारण मूल्य 25,000 रू. मानते हुए 9 वर्ष के जीवन काल में सीधी रेखा पद्धति से हासित किया जायेगा। कम्पनी की कर की दर 55 प्रतिशत है।

यदि वांछित प्रत्याय दर 10 प्रतिशत हो तो क्या पुरानी मशीन को प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

हल :

(i)	*Cash outlay or Incremental Investment :* Cost of New Machine *Less* : Sale value of Machine		Rs. 2,50,000 50,000
	Net Cash Outlay		2,00,000
(ii)	*Net saving in annual income :* Cost Saving *Less* : Additional Depreciation : New Depreciation = (2,50,000-25,000)/9 Old Depreciation = (1,50,000/15)	 = 25,000 = 10,000	 30,000 15,000
	Saving before tax *Less* : Invome tax @ 55%		15,000 8,250
	Annual Net Seving after Tax		6,750

$$\text{ARR} = \frac{Average\ Net\ Savings}{Average\ Investment} \times 100$$

Or

$$\text{ARR} = \frac{Annual\ Net\ Savings}{½\ (\text{Initial Investment} + \text{Scrap Value})} \times 100$$

$$= \frac{Rs.6750}{½\ (\text{Rs. } 2,00,000 + 25,000)} \times 100$$

$$= \frac{Rs.6750}{Rs.112500} \times 100 = 6\%$$

निर्णय : चूंकि औसत प्रत्याय दर (6 प्रतिशत) वांछित प्रत्याय दर (10 प्रतिशत) से कम है, अतः मशीन को प्रतिस्थापित नही किया जाना चाहिये ।

उदाहरण : (क्रम प्रदान करना) : निम्नांकित विशेष प्रस्तावों को औसत प्रत्याय पर पद्धति से उनकी लाभदायकता के अनुसार क्रमबद्ध कीजिये ।

Projects	*A*	*B*	*C*	*D*	*E*
Initial Outlay (Rs.)	25,000	3,000	12,000	20,000	40,000
Annual Cash Flow (Rs.)	3,000	1,000	2,000	4,000	8,000
Life in Years	10	5	8	10	12

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हल

Ranking according to Average Rate of Return Method

Project (1)	Initial Outlay [(2)+2] (2)	Average Investment (3)	Life in Years (4)	Annual Cash Flow (5)	Annual Depreciation [(2)□(4)] (6)	Net Income [(5)-(6)] (7)	% Rate of Return [(7)+(3)]x100 (8)	Rank (9)
	Rs.	Rs.		Rs.	Rs.	Rs.		
A	25,000	12,500	10	3,000	2,500	500	4	5
B	3,000	1,500	5	1,000	600	400	27	1
C	12,000	6,000	8	2,000	1,500	500	8	4
D	20,000	10,000	10	4,000	2,000	2,000	20	3
E	40,000	20,000	12	8,000	3,333	4,667	23	2

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि
(Net Present Value Method)

विनियोजन प्रस्तावों के मूल्यांकन की यह सर्वोत्तम विधि है। किन्तु इस विधि का प्रयोग उसी समय किया जाता है जब प्रबन्ध द्वारा विनियोग पर प्रत्याय की दर पहले से ही निर्धारित कर दी जाती है। एक विनियोग प्रस्ताव के शुद्ध वर्तमान मूल्य (NPV) से आशय संस्था की पूँजी लागत पर अपहारित (discounted) भावी रोकड. अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य तथा रोकड. बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य से अन्तर से है। यदि रोकड. बहिर्वाह अर्थात् प्रस्तावित विनियोग प्रारम्भ (शून्य समय) में ही किया जाता है, तब शुद्ध वर्तमान मूल्य रोकड. अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य के योग एवं प्रारम्भिक विनियोग का अन्तर होगा। इस प्रकार, "शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना रोकड. अंतर्वाहों के वर्तमान मूल्य के योग में रोकड. बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य को घटाकर की जाती है, जबकि अन्तर्वाहों एवं बहिर्वाहों की संस्था की पूँजी लागत के तुल्य बट्टा दर से कटौती की जाती है।"

शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना विधि (Computation Procedure for NPV)

शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना के लिए निम्नलिखित कदम उठाये जाते हैं–

(1) न्यूनतम प्रत्याय दर का निर्धारण : रोकड. प्रवाहों को अपहारित करने के लिए ब्याज की न्यूनतम दर का चयन करना चाहिए। सामान्यतः यह संस्था की पूँजी लागत होती है जो कि वह न्यूनतम दर है जिसकी विनियोजक संस्था द्वारा प्रस्तावित विनियोग पर अर्जन की अपेक्षा करता है।

(2) रोकड. अन्तर्वाहों एवं बहिर्वाहों के वर्तमान मूल्य की गणना : न्यूनतम प्रत्याय दर अर्थात् पूँजी लागत की सहायता से रोकड. अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य तथा रोकड. बहिर्वाहों का वर्तमान मूल्य पूर्व विवेचित बट्टाकरण ;कपेबवनदजपदहद्ध प्रकिया से करना चाहिए। परियोजना में विनियोग क्योंकि वर्ष के प्रारम्भ में किया जाता है, इसलिए इसकी लागत ही वर्तमान मूल्य है। किन्तु गैर–परम्परागत रोकड. बहिर्वाहों में बाद के वर्षो के रोकड. बहिर्वाहों का वर्तमान मूल्य बट्टा दर का प्रयोग करते हुए किया जाता है।

(3) शुद्ध वर्तमान मूल्य (NPV) की गणना : रोकड. अन्तर्वाहों के कुल वर्तमान मूल्य तथा रोकड. बहिर्वाहों के कुल वर्तमान मूल्य का अन्तर ज्ञात करना चाहिए यह अन्तर ही शुद्ध वर्तमान मूल्य ;छच्टद्ध होता है। इसकी गणना निम्न सूत्र का प्रयोग करके भी किया जा सकता है –

$$NPV = \frac{C_1}{(1+r)} + \frac{C_2}{(1+r)^2} + \frac{C_3}{(1+r)^r} + \frac{C_4}{(1+r)^n} - - - - - - - - - - \frac{Cn}{(1+r)^n} - I$$

जबकि; NPV = शुद्ध वर्तमान मूल्य (Net Present Value);

C_1 C_2 C_n = n वर्षो के लिए रोकड. अन्तर्वाह (Cash inflows for n years);

I = Initial Investmet

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

r = प्रारम्भिक विनियोग (Discount factor or interest rate);

n = बट्टा दर या ब्याज दर (number of years)।

टिप्पणी : व्यवहार में वर्तमान मूल्य की गणना उपर्युक्त सूत्र की सहायता से नहीं की जाती, बल्कि इसके लिए तैयार की हुई च्तमेमदज टंसनम ज्ंइसमेश का उपयोग किया जाता है। ये सारणियाँ आगे समझाई जा रही है।

उदाहरण (Illustration) : एक परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य ज्ञात कीजिये जिसके लिए 25,000रू. प्रारम्भिक विनियोजन की आवश्यकता है तथा जिससे 3 वर्षो तक प्रति वर्ष 12,000 का शुद्ध रोकड. अन्तर्वाह होगा। कोषों की लागत 8 प्रतिशत है। कोई अवशिष्ट मूल्य नहीं है।

एक रूपये की वार्षिका का 3 वर्ष के लिए 8 प्रतिशत की दर पर वर्तमान मूल्य 2.577 है।

Find out the Net Present Value for which a project requires an initial investment of Rs.25,000 and involves a net cash inflow of Rs.12,000 each for 3 years. The cost of funds is 8%. There is no scrap value.

The present value of an annuity of Re 1 for 3 years at 8% per annum is Rs.2.577%.

gy (Solution)

Calculation of Net Present Value

(i) *With the help of formula:*

$$NPV = \left(\frac{C_1}{(1+r)} + \frac{C_2}{(1+r)^2} + \frac{C_3}{(1+r)^3}\right) - I$$

$$= \left(\frac{\text{Rs.}12{,}000}{(1+.08)} + \frac{\text{Rs.}12{,}000}{(1+.08)^2} + \frac{\text{Rs.}12{,}000}{(1+.08)^3}\right) - \text{Rs.}25{,}000$$

$$= Rs.11{,}112 + Rs.10{,}284 + Rs.9{,}528 - Rs.25{,}000$$

$$= Rs.30{,}920 - Rs.25{,}000 = Rs.5{,}920$$

(ii) *With the help of Present Value Tables*

Year	Cash Inflows Rs.	P.V. Factor at 8%	Present Value Rs.
1	12,000	0.926	11,112
2	12,000	0.857	10,284
3	12,000	0.794	9,528
	Total Present Value		30,924

Net Present Value = Total Present Value – Initial Outlay
= Rs. 30,924 – 25,000 = Rs. 5,924

With the help of Cumulative Present Value Table (Annuity of Re.1)

	Rs.
Present value of cash inflows (12,000 x 2.577)	30,924
Less: Initial Cash outlay	25,000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Net Present Value or NPV	5,924

The difference of Rs. 4 in both methods is due to approximation.

उदाहरण (Illustration) : (गैर–पारम्परिक रोकड. अन्तर्वाह) कोई भी परियोजना स्वीकार्य नहीं है, यदि आय 10 प्रतिशत न हो। एक परियोजना के रोकड. बहिर्वाहों के साथ रोकड. अन्तर्वाह नीचे दिये हुए हैं–

No project is acceptable unless the yield is 10%. Cash inflows of a certain project alongwith cash outflows are given below:

Year	0	1	2	3	4	5
Outflows (Rs.)	1,50,000	30,000	-	-	--	-
Inflows (Rs.)	-	20,000	30,000	60,000	80,000	30,000

पाँचवे वर्ष के अन्त में निस्तारण मूल्य 40,000 रू. है। शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना कीजिये। 5 वर्षो के लिए एक रूपये का 10 प्रतिशत बट्टा दर पर वर्तमान मूल्य क्रमशः .909, .826, .751, .683 तथा .621 है।

हल (Solution)

Calculation of Present Value of Cash Outflows

Year	Outflows	P.V. factor at 10%	Present Value
	Rs.		Rs.
0	1,50,000	1	1,50,000
1	30,000	.909	27,270
			1,77,270

Calculation of Present Value of Cash Inflows

Year	Cash Inflows	P.V. factor at 10%	Present Value
	Rs.		Rs.
1	20,000	.909	18,180
2	30,000	.826	24,780
3	60,000	.751	45,060
4	80,000	.683	54,640
5	30,000	.621	18,630
5 (Salvage)	40,000	.621	24,840
			1,86,130

Net Present Value = Total Present Value – Initial Investment
= Rs.1,86,130 – Rs. 1,77,270 = Rs. 8,860

निर्णय मापदण्ड : शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के अन्तर्गत यदि परियोजना की छच्ट धनात्मक हो तो उसे स्वीकार किया जाता है एवं ऋणात्मक हो तो अस्वीकार किया जाता है। परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं की दशा में क्रम प्रदान किये जाते हैं तथा जिस प्रस्ताव का शुद्ध वर्तमान मूल्य अधिकतम हो उसे प्राथमिकता दी जाती है। ऋणात्मक भाुद्ध वर्तमान मूल्य वाले प्रस्ताव को पूर्ण रूप से अस्वीकृत कर देना चाहिए।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के लाभ (Advantages of NPV)

(1) **सम्पूर्ण जीवन काल के लाभ** : इसमें आय प्राप्ति की दृष्टि से परियोजना के पूरे जीवन काल में प्राप्त लाभों पर विचार किया जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(2) **समय कारक को महत्व** : इसमें आय प्राप्ति के समय कारक को उचित महत्व दिया जाता है। यह विधि का प्रमुख लाभ है क्योंकि अदायगी अवधि एवं औसत प्रत्याय दर में इस कारक पर ध्यान नहीं दिया जाता हैं। इसलिए हार्नग्रेन ने इसे दीर्धकालीन निर्णयों के लिए सर्वोतम विधि बतलाया है।

(3) **अधिकतम कल्याण** : यह विधि व्यवसाय स्वामियों के अधिकतम कल्याण के उद्देश्य से मेल खाती है क्योंकि पहले लेखांकन लाभों के बजाय रोकड. प्रवाहों पर आधारित है।

(4) **असमान अर्जनों की दशा में उपयुक्त** : यह विधि परियोजना के जीवन काल में असमान अर्जनों की दशा में भी श्रेष्ठ है क्योंकि असमायोजित प्रत्याय विधि की तुलना में इसमें शुद्धता की मात्रा अधिक होती है।

(5) **सापेक्षिक लाभदायकता की तुलना** : इसमें भिन्न जीवनकालों तथा रोकड. अंतर्वाहों के भिन्न समयों वाली परियोजनाओं की सापेक्षिक लाभदायकता की तुलना की जा सकती है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के दोष (Disadvantages of NPV)

(1) **समझाने में कठिनाई** : इस विधि को समझने एवं प्रयोग करने में परपंरागत विधियों की तुलना में थोड़ी कठिनाई होती है।

(2) **पूँजी लागत निर्धारण में कठिनाई** : इसमें रोकड़ अन्तर्वाहों की एक पुर्वनिर्धारित दर, जो कि सामान्यताः पूँजी की लागत होती है, पर कटौती की जाती है; किन्तु पूँजी लागत का सही निर्धारण भी अपने–आप में एक समस्या है।

(3) **विभिन्न लागत वाली परियोजनाओं में अनुपयुक्त** : विभिन्न विनियोग राशियों वाली परियोजनाओं की तुलना करने पर संतोषप्रद हल नहीं निकल सकता। यदि किसी परियोजना में अधिक विनियोग की आव यकता होती है तो उससे अधिक शुद्ध वर्तमान मूल्य होने पर भी उचित नहीं माना जाएगा।

(4) **जीवनकाल की गणना कठिन** : परियोजना के जीवन काल का पूर्ण शुद्धता से अनुमान लगाना कठिन है। साथ ही भिन्न – भिन्न जीवनकाल वाली परियोजना की दशा में इस विधि से निर्णय नहीं लिया जा सकता।

उदाहरण (Illustration) : निम्नलिखित सूचनाओं से दो परियोजनाओं के वर्तमान मूल्य की गणना कीजिये तथा 10 प्रतिशत बट्टा दर मानते हुए सुझाव दीजिए कि इन दो परियोजनाओं में से कौनसी स्वीकृत की जाये–

From the following information, calculate the net present value of the two projects and suggest which of the projects should be accepted assuming a discount rate of 10%.

	Project X	Project Y
	Rs.	Rs.
Initial Investment	20,000	30,000
Estimated Life	5 years	5 years
Scrap Value	1,000	2,000

ह्रास से पूर्व तथा पश्चात् लाभ (रोकड़ प्रवाह) इस प्रकार है–

The profits before depreciation and after taxes (cash-flows) are as follows:

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Year		1	2	3	4	5
Project X	Rs.	5,000	10,000	10,000	3,000	2,000
Project Y	Rs.	20,000	10,000	5,000	3,000	2,000

(Solution)

Calculation of Net Present Value

Year Outlay	Cash Inflows		P.V. Factor at 10%	Present Value	
	Project X Rs.20,000	Project Y Rs.30,000		Project X Rs.20,000	Project Y Rs.30,000
	Rs.	Rs.		Rs.	Rs.
1	5,000	20,000	.909	4,545	18,180
2	10,000	10,000	.826	8,260	8,260
3	10,000	5,000	.751	7,510	3,755
4	3,000	3,000	.683	2,049	2,049
5	2,000	2,000	.621	1,242	1,242
5 (Scrap)	1,000	2,000	.621	621	1,242
	Total Present Value			24,227	34,728

Net Present Value = Present Value – Cost of Investment
Project X = Rs. 24,227 – Rs. 20,000 = Rs. 4,227
Project Y = Rs. 34,728 – Rs. 30,000 = Rs. 4,728

निर्णय : इस विधि के अनुसार परियोजना ल को प्राथमिकता दी जायेगी क्योंकि परियोजना ल का शुद्ध वर्तमान मूल्य परियोजना ग से अधिक हैं।

टिप्पणी : वर्तमान मूल्य कारक का मान वर्तमान मूल्य सारणी से देखा जा सकता है अथवा शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना निम्न सूत्र से की जा सकती हैं।

$$NPV = \frac{C_1}{(1+r)} + \frac{C_2}{(1+r)^2} + \frac{C_3}{(1+r)^3} + \frac{C_4}{(1+r)^4} + \frac{C_5}{(1+r)^5} - I$$

उदाहरण (Illustration) : मशीन । की लागत 1,00,000 रू. है जिसका भुगतान तुरन्त किया जाता हैं। मशीन ठ की लागत 1,20,000 रू. हैं जिसका आधा तुरन्त तथा आधा एक वर्ष की समयावधि में देय हैं। सम्भावित रोकड़ प्राप्तियाँ इस प्रकार हैं–

Machine A costs Rs. 1,00,000 payable immediately. Machine B costs Rs.1,20,000 half payable immediately and half payable in one year's time. The cash receipts expected are as follows:

Year (at end)	Machine A Rs.	Machine B Rs.	Discount Factor at 7%
1	20,000	-	.935
2	60,000	60,000	.873
3	40,000	60,000	.816
4	30,000	80,000	.763
5	20,000	-	.713

7 प्रतिशत अवसर लागत शुद्ध वर्तमान मूल्य के आधार पर किस मशीन का चयन किया जाये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

At 7% opportunity cost, which machine should be selected on the basis of NPV?

Calculation of Present Value of Cash Outflows

Year	Investment		P.V. Factor at 7%	Present Value	
	Machine A	Machine B		Machine A	Machine B
	Rs.	Rs.		Rs.	Rs.
1	1,00,000	60,000	1.000	1,00,000	60,000
2	-	60,000	0.935	-	56,000
				1,00,000	1,16,100

Net Present Value = P.V. of Cash Inflows – P.V. of Cash Outflows
Machine A = Rs. 1,40,870 – Rs. 1,00,000 = Rs. 40,870
Machine B = Rs. 1,62,380 – Rs. 1,16,100 = Rs. 46,280

Calculation of Net Present Value

Year	Cash Inflows		P.V. Factor at 7%	Present Value	
	Machine A	Machine B		Machine A	Machine B
	Rs.	Rs.		Rs.	Rs.
1	20,000	-	.935	18,700	-
2	60,000	60,000	.873	52,380	52,380
3	40,000	60,000	.816	32,640	48,960
4	30,000	80,000	.763	22,890	61,040
5	20,000	-	.713	14,260	-
	Total Present Value			1,40,870	1,62,380

निर्णय : मशीन 'ब' का शुद्ध वर्तमान मूल्य अधिक है, अतः इसका चयन किया जा सकता हैं।

उदाहरण (Illustration) : एक परियोजना जिसकी लागत 100 लाख रूपया हैं, के 10 वर्ष के जीवनकाल के अंत में सम्भावित अवशिष्ट मूल्य 10 लाख रूपया हैं। फर्म की कट–ऑफ दर 12 प्रतिशत हैं। परियोजना से कर व ह्रास के पश्चात् सम्भावित वार्षिक लाभ 10 लाख रू. हैं, ह्रास सीधी रेखा पद्धति पर चार्ज किया जाता हैं। 12 प्रतिशत वार्षिक दर पर, 10 वर्ष तक प्रतिवर्ष प्राप्त होने वाले एक रूपये का वर्तमान मूल्य 5. 650 रू. तथा 10 वें वर्ष के अन्त में प्राप्त एक रूपये का वर्तमान मूल्य 0.322 रू. हैं।

परियोजना के शुद्ध वर्तमान मूल्य की गणना कीजिये तथा बतलाइये कि क्या परियोजना को स्वीकार किया जाना चाहिये।

A project costing Rs. 100 Lakhs has a life of 10 years at the end of which its scrap value is likely to be Rs. 10 lakhs. The firm's cut-off rate is 12%. The project is expected to yield an annual profit after tax and depreciation of Rs.10 Lakhs, depreciation being charged on straight line basis. At 12% p.a., the present value of one rupee received annually for 10 years is Rs. 5.650 and the value of one rupee received at the end of 10^{th} year is Rs. 0.322.

Ascertain the net present value of the project and state whether we should go in for the project.

Calculation of Annual Cash Inflows *i.e. Profit-after tax but before depreciation*

	Rs.
Profit after tax given in the problem is	10,00,000
Add: Depreciation (Rs. 100 Lakhs – Rs. 10 Lakhs / 10 years)	9,00,000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Annual Cash Inflows	19,00,000
Present value of annual cash inflows of Rs.19,00,000 for 10 years at the present value factor 5.650 = 19,00,000 x 5.650	1,07,35,000
Present value of the scrap value of Rs. 10 lakhs at the end of the 10th year at the present value factor of 0.322 = 10,00,000 x 0.322	3,22,000
Total Present Value of Cash Inflows	1,10,57,000
Less: Total Cash Outflows or Initial Investment	1,00,00,000
Total net present value of the future cash inflows	10,57,000

मूल्यांकन : परियोजना के रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य इसकी लागत से 10,57,000 रू. अधिक हैं। अतः परियोजना लाभदायक हैं, जिसे स्वीकृत कर लेना चाहिए।

उदाहरण (Illustration) : एक सर्वेक्षण जिसकी लागत 2,00,000 रू. थी, करने के बाद एक्स लिमिटेड ने बाजार में एक नया उत्पाद उतारने के लिए एक परियोजना को लेने का निश्चय किया। कम्पनी की कट–ऑफ दर 12 प्रतिशत हैं। यह अनुमान किया गया हैं कि 10,00,000 रू. की कार्यशील पूँजी के अतिरिक्त परियोजना की लागत 4,00,000 रू. संयत्र एवं मशीनरी में होगी। संयत्र एवं मशीनरी का 5 वर्श के अन्त में अवशिष्ट मूल्य 5,00,000 रू. अनुमानित किया गया है। सीधी पद्धति पर ह्रास अपलिखित करने के पश्चात् लाभ इस प्रकार अनुमानित किये गये हैं–

After conducting a survey that cost Rs. 2,00,000 X Ltd., decided to undertake a project for placing a new product on the market. The company's cut-off rate is 12%. It was estimated that the project would cost Rs. 40,00,000 in plant and machinery in addition to working capital of Rs.10,00,000. The scrap value of plant and machinery at the end of 5 years was estimated at Rs. 5,00,000. After providing for depreciation on straight line basis, profits after tax were estimated as follows:-

Year	1	2	3	4	5
Rs.	3,00,000	8,00,000	13,00,000	5,00,000	4,00,000

12 प्रतिशत वार्षिक पर वर्तमान मूल्य कारक इस प्रकार हैं–

The present value factors at 12% per annum are given below:

Year	1	2	3	4	5
PV Factor	.8929	0.7972	0.7118	0.6355	0.5674

परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य ज्ञात कीजिये।
Ascertain the Net Present Value of the project

हल (Solution)

Statement of Net Present Value

Year	Profit after tax (A)	Depreciation (B)	Cash Inflows (A+B)	P.V. Factor at 12%	Present Value of Cash Inflows
	Rs.	Rs.	Rs.		Rs.
1	3,00,000	7,40,000	10,40,000	0.8929	9,28,616
2	8,00,000	7,40,000	15,40,000	0.7972	12,27,688
3	13,00,000	7,40,000	20,40,000	0.7118	14,52,072

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4	5,00,000	7,40,000	12,40,000	0.6355	7,88,020
5	4,00,000	7,40,000	11,40,000	0.5674	6,46,836
					50,43,232
Scrap Value at the end of 5 years			5,00,000	0.5674	2,83,700
Wo rking Capital at the end of 5 years			10,00,000	0.5674	5,67,400
Total Present Value of Cash Inflows					58,94,332
Less: Initial Outlay 2 + 40 + 10 (in lakhs)					52,00,000
NPV					6,94,332

Working Note:

Calculation of Depreciation Scrap Value	Rs.
Cost of Survey	2,00,000
Plant & Machinery	40,00,000
	42,00,000
Less: Scrap	5,00,000
Total Depreciation for 5 years	37,00,000

$$Annual Depreciation = \frac{37,00,000}{5} = Rs.7,40,000$$

उदाहरण (Illustration) : एक कम्पनी को परस्पर अपवर्जी विनियोग प्रस्तावों की जाँच कर रही हैं। प्रबन्ध नये विनियोग प्रस्तावों का मूल्याकंन करने के लिए शुद्ध वर्तमान मूल्य ;छच्टद्ध विधि का प्रयोग करता हैं। कम्पनी को सलाह दीजिये कि उसे कौनसा प्रस्ताव लेना चाहिये। ह्रास सीधी रेखा पद्धति पर लगाया जाता हैं।

A company is examining two mutually exclusive investment proposals: The management uses net present value (NPV) method to evaluate new investment proposals. Advise the company which proposal should be taken up by it. Depreciation is charged at straight line method.

Year	Proposal A (CFBT) Rs.	Proposal B (CFBT) Rs.
1	19,000	19,000
2	19,000	23,000
3	19,000	25,000
4	19,000	19,000
Cost of Capital	10%	10%
Cost of the Project	Rs. 23,000	Rs. 25,000
Life	4 years	4 years
Salvage value	Rs. 3,000	Rs. 5,000

(Solution)

Calculation of Cash Inflows

Particulars	Proposal A Equal for the each year	Proposal B			
		I Yr.	*II Yr.*	*III Yr.*	*IV Yr.*
	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
CFBT	19,000	19,000	23,000	25,000	19,000
Less: Depreciation *	5,000	5,000	5,000	5,000	5,000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Income Before Tax	14,000	14,000	18,000	20,000	14,000
Less: Tax @ 50%	7,000	7,000	9,000	10,000	7,000
Net Income	7,000	7,000	9,000	10,000	7,000
Add: Depreciation	5,000	5,000	5,000	5,000	5,000
Net Cash Inflows	12,000	12,000	14,000	15,000	12,000

$$Depreciation = \frac{Cost - Scrap}{Life \quad in \quad Years}$$

$$\text{Proposal A} = \frac{Rs.23{,}000 - 3{,}000}{4} = Rs.5{,}000$$

$$\text{Proposal B} = \frac{Rs.25{,}000 - 5{,}000}{4} = Rs.5{,}000$$

Calculation of Net Present Value

Year	Cash Inflows		P.V. Factor at 10%	Present Value	
	Proposal A	Proposal B		Proposal A	Proposal B
	Rs.	Rs.		Rs.	Rs.
1	12,000	12,000	0.909	10,908	10,908
2	12,000	14,000	0.826	9,912	11,564
3	12,000	15,000	0.751	9,012	11,265
4	15,000*	17,000*	0.621	9,315	10,557
	Total Present Value			39,147	44,294

* Present value of last year includes scrap value

Net Present Value = Total P.V. – Initial Investment

Proposal A = Rs. 39,147 – Rs. 23,000 = Rs. 16,147

Proposal B = Rs. 44,294 – Rs. 25,000 = Rs. 19,294

Decision: Proposal B should be accepted as it gives higher net present value.

वर्तमान मूल्य सूचकांक या लाभदायकता सूचकांक
(Present Value Index or Profitability Index)

शुद्ध वर्तमान मूल्य पद्धति से जैसा कि पहले बताया गया हैं, उन परियोजनाओं की लाभदायकता का सही मूल्याकंन नहीं किया जाता जिनकी विनियोजन लागत भिन्न हैं। दूसरे शब्दों में, यह विधि परियोजनाओं की उपयोगिता की जांच उनके निरपेक्ष मूल्यों के आधार पर करती है, जो उचित नहीं हैं। इस कमी को पूरा करने के लिए लाभदायकता सूचकांक अथवा वर्तमान मूल्य सूचकांक की गणना की जाती हैं। यह अपेक्षित प्रत्याय दर पर भावी रोकड़ अंतर्वाहों के वर्तमान मूल्य का प्रारम्भिक विनियोग लागत से अनुपात हैं। इसे लाभ–लागत अनुपात ;ठमदमपिज.ब्वेज त्ंजपवद्ध भी कहते हैं। सूत्र रूप में–

$$\text{PI or PVI} = \frac{\text{Total Preset Value of Cash Inflows}}{\text{Total Present Value of Cash Outflows}}$$

Or

$$\text{Net Profitability or NPVI} = \frac{\text{Net Present Value}}{\text{Initial Cash Outflows}}$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

निर्णय मापदण्ड : लाभदायकता सूचकांक एक से कम होने पर विनियोग प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया जाता हैं तथा एक से अधिक होने की दशा में स्वीकार कर लिया जाता हैं। विभिन्न परियोजनाओं के चुनाव में इन्हें लाभदायकता सूचकांक के आधार पर अनुविन्यासित कर लिया जाता हैं एवं जिस परियोजना का लाभदायकता सूचकांक सर्वाधिक हो उसे चुन लिया जाता हैं।

उदाहरण (Illustration) : एक परियोजना पर प्रारम्भिक विनियाजन 50,000 रू. है तथा इससे चार वर्षो में क्रमशः 20,000 रू.; 15,000 रू.; 25,000 रू. तथा 10,000 रू. रोकड़ अंतर्वाह प्राप्त होते हैं। वर्तमान मूल्य सूचकांक विधि का प्रयोग करते हुए प्रस्तावित विनियोग की लाभप्रदता का मूल्याकंन बट्टा दर 10 प्रतिशत मानते हुये कीजिये।

एक रूपये का वार्षिक मूल्य 10 प्रतिशत बट्टा दर प्रथम चार वर्षो के लिए क्रमशः .909, .826, .751 तथा .683 हैं।

The initial cash outlay of a project is Rs.50,000 and it generates cash inflows of Rs.20,000, 15,000, 25,000 & 10,000 in first year. Using presentat value index method, appraise profitability of proposed investment assuming 10% rate of discount.

The present value of Re. 1 at 10% discount factor for four years is .909, .826, .751 and .683.

हल (Solution)

Calculation of Present Value and Profitability Index

Year	Cash Inflows	P.V. factor at 10%	Present Value
	Rs.		Rs.
1	20,000	.909	18,180
2	15,000	.826	12,390
3	25,000	.751	18,775
4	10,000	.683	6,830
		Total	56,175

Net Present Value = Total Present Value – Initial Outlay
= Rs. 56,175 – Rs. 50,000 = Rs. 6,175

$$\text{Profitability Index or PVI} = \frac{\text{Present Value of Cash Inflows}}{\text{Initial Cash Outflows}}$$

$$= \frac{\text{Rs.56,175}}{\text{Rs.50,000}} = 1.1235$$

चूँकि लाभदायकता सूचकांक 1 से अधिक हैं, अतः प्रस्ताव स्वीकार किया जा सकता हैं।

As profitability index is more than 1, the proposal can be accepted.

$$\text{Net Profitability Or NPVI} = \frac{\text{Net Present Value}}{\text{Initial Cash Outflows}}$$

$$= \frac{\text{Rs.6,175}}{\text{Rs.50,000}} = .1235$$

Or $\text{NPI} = 1.1235 - 1 = 0.1235$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चूँकि शुद्ध लाभदायकता सूचकांक धनात्मक हैं, अतः परियोजना स्वीकृत की जा सकती है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि एवं लाभदायकता सूचकांक की तुलना

परियोजना चयन के सम्बन्ध में दोनों ही विधियों में समान नियम लागू होते हैं। लाभदायकता सूचकांक भी एक से अधिक तभी होगा जबकि शुद्ध वर्तमान मूल्य धनात्मक हैं। यदि शुद्ध वर्तमान मूल्य भून्य हैं तब लाभदायकता सूचकांक एक होगा। किन्तु परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं के चुनाव में दोनों विधियों में भिन्न निर्णय हो सकता है जैसा कि निम्न उदाहरण से स्पस्ट हैं–

	परियोजना ''	परियोजना ''
	रू.	रू.
रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य	20,000	10,000
प्रारम्भिक विनियोग	10,000	4,000
भुद्ध वर्तमान मूल्य	10,000	6,000
लाभदायकता सूचकांक	$\frac{20,000}{10,000} = 2.0$	$\frac{10,000}{4,000} = 2.5$

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के अनुसार परियोजना 'एक्स' स्वीकृत की जायेगी क्योंकि इसका शुद्ध वर्तमान मूल्य 10,000 रू. अधिक हैं। किन्तु लाभदायकता सूचकांक विधि के अनुसार परियोजना 'वाई' स्वीकृत की जायेगी क्योंकि इसका सूचकांक (2.5) ऊँचा हैं। अब प्रश्न यह है कि किस परियोजना को स्वीकृत किया जाये? ऐसी स्थिति में शुद्ध वर्तमान मूल्य निर्णय को स्वीकार करना चाहिये जब तक कि पूँजी समभाजन ;ब्ंचपजंस त्ंजपवदपदहद्ध नहीं हो। यदि संस्था के पास विनियोग हेतु 20,000 रू. हो तो परियोजना श्ग्श (छच्ट विधिनुसार) को स्वीकार करना चाहिये। इससे अं धारियों की सम्पदा 10,000 से बढ़ेगी जबकि परियोजना श्ल्श को स्वीकार करने में सम्पदा 6,000 रू. से ही बढ़ेगी। इसलिए एक अच्छी परियोजना वही है जो अंशधारियों की सम्पदा में वृद्धि करे।

उदाहरण (Illustration) : निम्नलिखित परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं पर विचार किया गया हैं–
The following (financially) mutually exclusive projects are considered:

	Project A	Project B
PV of Cash Inflows	Rs.20,000	Rs.8,000
Initial Cash Outlay	15,000	5,000
Net Present Value	5,000	3,000
Profitability Index	1.33	1.6

कौनसी परियोजना का चयन किया जाये और क्यों?
Which project should be preferred and why?

हल (Solution)

परियोजना । का शुद्ध वर्तमान मूल्य 5,000 रू. अधिक होने से भुद्ध वर्तमान मूल्य विधिनुसार इसका चयन किया जाना चाहिये लेकिन लाभदायकता सूचकांक विधिनुसार परियोजना ठ का चयन किया जाना चाहिये क्योंकि इसका लाभदायकता सूचकांक 1.6 परियोजना । के 1.33 से अधिक हैं।

उदाहरण (Illustration) : संयत्र तथा सम्बन्धी नीचे दिये गये समंकों से लाभदायकता सूचकांक ज्ञात कीजिये। लाभदायकता सूचकांक के आधार पर परियोजनाओं को क्रम प्रदान कीजिये। (बट्टा दर 15 प्रतिशत हैं।)

Find out the profitability index, given the following data, regarding plants A and B. Rank the projects on the basis of profitability index (discount ratio 15%).

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Year	Cash flows (Rs.) Plant A	Plant B
0	- 20,000	- 12,000
1	9,500	6,000
2	11,000	7,400
3	10,000	5,600

टिप्पणी : 15 प्रतिशत बट्टा दर पर एक रूपये का वर्तमान मूल्य प्रथम, द्वितीय और तृतीय वर्ष के लिये क्रमशः .870; .756 तथा .658 हैं।

Note : The present value of Re. 1 at 15% discount rate for first, second and third year is .870; .756; .658 respectively.

हल (Solution)

Calculation of Present Value

Year	*Plant A*		*P.V. Factor at 15%*	*Plant B*	
	Cashflows	*Present Value*		*Cashflows*	*Present Value*
	Rs.	Rs.	Rate	Rs.	Rs.
1	9,500	8,265	.870	6,000	5,220.0
2	11,000	8,316	.756	7,400	5,594.4
3	10,000	6,580	.658	5,600	3,684.8
		23,161			14,499.2

$$\text{(ii) Present Value Index} = \frac{\text{P.V. of Cash Inflows}}{\text{Initial Investment}}$$

$$\text{Plant A} = \frac{\text{Rs. } 23{,}161}{\text{Rs. } 20{,}000} = 1.158$$

$$\text{Plant B} = \frac{\text{Rs.} 14{,}499.2}{\text{Rs.} 12{,}000} = 1.2083$$

आंतरिक प्रत्याय दर विधि
(Internal Rate of Return Method)

परियोजना मूल्यांकन की इस विधि को **'समय–समायोजित प्रत्याय दर विधि'** *;ज्पउम ।करनेजमक तंजम वf त्मिजनतद ङमजीवकद्ध* या **'सीमान्त प्रत्याय दर'** *;डंतहपदंस तंजम वf त्मिजनतदद्ध* आदि नामों से भी जाना जाता हैं। समय – समायोजित प्रत्याय दर ब्याज की वह अधिकतम दर है जो परियोजना पर बिना किसी हानि के विनियोजन के जीवन काल में लगी पूँजी पर चुकाई जा सकती है। इसी प्रकार डॉ. एस. पी. सिंह के शब्दो में, *"आंतरिक प्रत्याय दर प्रत्याय की एक ऐसी दर है जो विनियोजन से प्राप्त होने वाले प्रत्याशित कुल रोकड़ अंतर्वाहों के वर्तमान मूल्य को विनियोजन क लागत के लुल्य कर देती हैं।"* दूसरे शब्दों में, यह वह दर है जिस पर विनियोजन का वर्तमान मूल्य शून्य के बराबर होता है। इसे आन्तरिक दर इसलिये कहते हैं कि यह पूर्ण रूप से परियोजजना के प्रारम्भिक विनियोग तथा उससे सम्बन्धित रोकड़ अन्तर्वाहों पर निर्भर करते हैं और इसके अतिरिक्त विनियोग के बाहर किसी अन्य दर पर नहीं। सूत्र रूप में इसे निम्न समीकरण में व्यक्त किया जा सकता हैं–

$$\left(\frac{C_1}{(1+r)} + \frac{C_2}{(1+r)^2} + \ldots\ldots\ldots + \frac{C_n}{(1+r)^n}\right) - 1 = 0$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जबकि; $I = \text{Initial Investment}$;

$C_1\ C_2\ C_n$ = Net Cash inflows in 1,2,3.....n years;

$r = \text{Internal rate of return or discount rate}$

उदाहरण के लिए, यदि 1,000 रू. के विनियोग से प्रथम वर्ष के अंत में 1,080 रू. का रोकड़ अंतर्वाह होता हो तो रोकड़ अंतर्वाहों के वर्तमान मूल्य को विनियोग की लागत के बराबर करने के लिए प्रत्याय दर

$$\frac{C_I}{(1+r)} - 1 = 0$$

होगी – $\text{Or}\ \frac{1,080}{(1+r)} - 1,000 = 0$

$$\text{Or}\ 1,000\, r = 80$$

$$\therefore \quad r = 8\%$$

उपर्युक्त उदाहरण बहुत सरल हैं। व्यवहार में एक परियोजना का जीवनकाल एक वर्ष से अधिक लम्बा होता हैं। ऐसी स्थिति में इस सूत्र से आन्तरिक प्रत्याय दर की गणना में अत्याधिक गणनाएँ करनी पड़ती हैं। इसलिए वर्तमान मूल्य सारणियों की सहायता से इस दर की गणना की जाती हैं। इसके लिए रोकड़ अन्तर्वाहों की दो स्थितियाँ– (प) समान रोकड़ अन्तर्वाह; तथा (पप) असमान रोकड़ अन्तर्वाह हो सकती हैं–

समान रोकड़ अन्तर्वाह (Even Cash Inflows)

यदि परियोजना के प्रारम्भ में केवल एक ही रोकड़ बर्हिवाह हैं तथा समान अन्तर्वाहों की एक श्रृंखला है तो आन्तरिक प्रत्याय दर की गणना आसान हैं। इसे नीचे दिये गये उदाहरण की सहायता से स्पष्ट किया गया हैं।

उदाहरणार्थ, यदि एक परियोजना की प्रारम्भिक लागत 10,000 रू. हो तथा इससे परियोजना के जीवनकाल के 5 वर्षो में प्रतिवर्श 3,000 रू. रोकड़ प्राप्त होने का अनुमान हो तो आंतरिक प्रत्याय दर की गणना निम्नलिखित चरणों में की जायेगी –

प्रथम चरण : सर्वप्रथम वर्तमान मूल्य कारक (P.V. Factor) या अदायगी अवधि की सहायता से अनुमान (rough approximation) लगाया जाता है। ऐसा विनियोग की लागत में वार्षिक रोकड़ अन्तर्वाहों की राशि का भाग देकर किया जाता हैं। सूत्र रूप में–

$$\text{P.V. Factor} = \frac{\text{Initial Investment}}{\text{Annual Cash Inflows}} \quad \text{Or} \quad \frac{1}{C}$$

उपरोक्त उदाहरण में यह वर्तमान मूल्य कारक 3.33 (10,000 / 3,000) हैं। वर्तमान मूल्य कारक की गणना के पश्चात संचयी वर्तमान मूल्य सारणी में परियोजना के आर्थिक जीवन के वर्ष की पंक्ति में दिये गये कारकों में उपर्युक्त सूत्र से ज्ञात किये गये कारक के निकटतम कारक को मालूम किया जाता है। इस कारक की पंक्ति में खड़ी ओर दी गई दर विनियोग की प्रत्याय दर कहलाऐगी। सामान्यतः उपर्युक्त सूत्र से गणना किया गया वही वर्तमान मूल्य कारक सारणी में नहीं मिलता हैं। वह सारणी के किन्हीं दो कारकों के बीच में स्थित हो सकता हैं। दिये गये उदाहरण में, निकटतम अंक 15 प्रतिशत (3.352) की दर तथा 16 प्रति ात (3.274) की दर हैं। इसका आशय यह हैं कि परियोजना की आन्तरिक प्रत्याय दर 15 प्रतिशत एवं 16 प्रतिशत के मध्य अपेक्षित हैं।

द्वितिय चरण : आन्तरिक प्रत्याय दर के परिशुद्ध अनुमान लगाने के लिए परियोजना की इन दोनों दरों के लिए वर्तमान मूल्य कारकों की गणना निम्न प्रकार करेंगें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Present Value = Annual Cash Inflows x P.V. Factor for an Annuity

P.V. at 15% = Rs.3,000 x 3.352 = Rs.10,056

P.V. at 16% = Rs.3,000 x 3.274 = Rs. 9.822

तृतीय चरण : दोनों दरों (15 प्रतिशत एवं 16 प्रतिशत) के बीच अन्तरगणन विधि से वास्तविक आन्तरिक प्रत्याय दर की गणना कीजिये। अन्तरगणन के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जा सकता हैं–

$$IRR = LDR + \frac{P_1 - Q}{P_1 - P_2} \text{ x (HDR - LDR)}$$

LDR = Lower Discount Rate

P1 = Present values at lower rate of interest

जबकि; P2 = Present values at higher rate of interest

Q = Net Cash outlay

HDR = Higher Discount Rate

दिये गये उदाहरण में वास्तविक IRR निम्न होगीं–

$$IRR = 15 + \frac{Rs.10,056 - 10,000}{Rs.10,056 - 9,822} \text{ x } (16-15)$$

$$= 15 + \frac{56}{234} \text{ x } 1$$

$$= 15 + 0.24 = 15.24\%$$

उदाहरण (Illustration) : एक परियोजना में प्रारम्भिक विनियोग 40,000 रू. हैं तथा 4 वर्षो के लिए वार्शिक रोकड़ अन्तर्वाह 16,000 रू. होने का अनुमान हैं। आन्तरिक प्रत्याय दर की गणना कीजिये।

A project costs an intial investment of Rs. 40,000 and is expected to generate annual cash inflows of Rs.16,000 for 4 years. Calculate interal rate of return (IRR).

4 o"kksZ dh vof/k ds fy, fofHkUu cêk njksa ij ,d :i;s dk orZeku ewY;&

Present Value of Re. 1 at varying discount rates for a period of 4 years.

Years	19%	20%	22%
1	0.8403	0.8333	0.8196
2	0.7062	0.6944	0.6719
3	0.5934	0.5787	0.5507
4	0.4987	0.4823	0.4514
Total	2.6386	2.5887	2.4936

(Solution)

$$\text{P.V. Factor} = \frac{1}{C} = \frac{40,000}{16,000} = 2.5$$

विभिन्न बट्टा दरों पर 4 वर्ष के लिए एक रूपये के वर्तमान मूल्य के योग वाली पंक्ति में 2.5 कारक 2.4936 एवं 2.5887 के बीच पड़ता हैं। अतः आन्तरिक प्रत्याय दर 20: एवं 22: के मध्य पड़ती हैं।

The P.V. Factor of 2.5 at different interest rates lies between 2.4936 and 2.5887, the cumulative present value of Re. 1 for 4 years. Hence, the IRR of the project is expected to lie between 20% and 22%.

P.V. of Cash Inflows at 20% = 16,000 x 2.5887 = Rs. 41,419

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

P.V. of Cash Inflows at 22% = 16,000 x 2.4936 = Rs. 39,898
By Interpolation:

$$IRR = LDR + \frac{P_1 - O}{P_1 - P_2} X (HDR - LDR)$$

Where; LDR = Lower Discount Rate

P1 = Present values at lower rate of interest

P2 = Present values at higher rate of interest

O = Initial Investment

HDR = Higher Discount Rate

Substituting the values,

$$IRR = 20 + \frac{Rs.41,419 - 40,000}{Rs.41,419 - 39,898} X (22 - 20)$$

$$= 20 + \frac{1,419}{1,521} x\ 2$$

$$= 20 + \frac{2,838}{1,521}$$

$$= 20 + 1.866 = 21.866\%$$

असमान रोकड़ अन्तर्वाह (Uneven Cash Inflows)

यदि परियोजना से प्राप्त रोकड़ अन्तर्वाहो की राशियाँ विभिन्न वर्षो में असमान प्रत्याय दर की गणना 'भूल एवं सुधार' विधि द्वारा ज्ञात की जाती हैं। इसके अन्तर्गत कई दरों पर रोकड़ अन्तर्वाहों के वर्तमान मूल्य की गणना की जाती हैं एवं अन्त में जिस दर पर रोकड़ अन्तर्वाहों का योग विनियोग लागत के तुल्य हो जाता हैं, वहीं प्रत्याय दर मानी जाती हैं। इसके लिए निम्न कदम उठाने पड़ते हैं।

1. **प्रथम जाँच दर का निर्धारण (Establishing the First Trial Rate)** : किस दर पर जाँच कार्य प्रारम्भ किया जाये इसके लिए वार्षिक रोकड़ अंतर्वाहों के औसत आधार पर वर्तमान मूल्य कारक ;च्ण्ट्ण् थ्ंबजवतद्ध की गणना निम्न सूत्र से की जायेगी–

$$P.V.\ Factor = \frac{Initial\ Investment}{Average\ Annual\ Cash\ Inflows}$$

इसके पश्चात् संचयी वर्तमान मूल्य सारणी में परियोजना के आर्थिक जीवन के वर्ष की पंक्ति में दिये गये कारकों में उपर्युक्त सूत्र से ज्ञात किये गये कारक के निकटतम कारक को मालूम किया जाता है। इस कारक की पंक्ति में खड़ी ओर दी गई दर प्रथम जाँच दर होगी। इस दर से सभी वर्षो के रोकड़ अंतर्वाहों का वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जायेगा।

2. **द्वितीय जाँच दर (The Second Trial Rate)** : प्रथम जाँच दर से निकाले गये परियोजना के जीवनकाल के रोकड़ अंतर्वाहों के कुल वर्तमान मूल्य के योग की तुलना विनियोग की लागत से की जायेगी। यदि यह वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत से अधिक आता है तो अगली जाँच के लिए पहले से ऊँची दर का प्रयोग करके रोकड़ अंतर्वाहों का वर्तमान मूल्य निकाला जाएगा। इसके विपरित, यदि वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत से कम आये तो अगली जाँच के लिए पहले से नीची दर का प्रयोग करके रोकड़ अंतर्वाहों का वर्तमान मूल्य निकाला जाएगा। जिस दर पर वर्तमान मूल्य विनियोग की लागत के बराबर हो जाये, वही सही प्रत्याय दर होगी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. वास्तविक प्रत्याय दर की गणना (Actual IRR) : वास्तविक प्रत्याय दर प्रथम जाँच दर व द्वितीय जाँच दर के मध्य होती है, जिसकी गणना पूर्व में वर्णित अंतरगणन के सूत्र से की जा सकती हैं। निम्न उदाहरण से इस प्रकिया को स्पष्ट किया गया हैं–

उदाहरण (Illustration) : 10,000 रू. के प्रारम्भिक विनियोग से एक परियोजना से उसके 3 वर्ष के जीवनकाल में क्रमशः 5,000 रू.; 4,000 रू. तथा 3,000 रू. रोकड. अंतर्वाह प्राप्त होने का अनुमान हो तो आन्तरिक प्रत्याय दर क्या होगी?

A project with an initial investment of Rs. 10,000 generates cash inflows of Rs. 5,000; Rs. 4,000 and Rs. 3,000 with life of 3 years. What will be the internal rate of return?

(Solution)

प्रथम चरण : इसके लिए प्रथम जाँच दर की गणना इस प्रकार की जायेगी–

$$\text{P.V. Factor} = \frac{\text{Initial Investment}}{\text{Average Annual Cash Inflows}}$$

$$= \frac{\text{Rs.10,000}}{\frac{\text{Rs.5,000} + \text{Rs.4,000} + \text{Rs.3,000}}{3}}$$

$$= \frac{\text{Rs.10,000}}{\text{Rs.4,000}} = 2.5$$

संचयी वर्तमान मूल्य सारणी में 3 वर्ष की पंक्ति में इस वर्तमान मूल्य कारक पर प्रत्याय दर लगभग 10 प्रतिशत हैं। अतः 10 प्रतिशत प्रत्याय दर पर विभिन्न वर्षो के रोकड़ अंतर्वाहों के वर्तमान मूल्य की गणना करके विनियोग लागत से तुलना की जाएगी।

Verification of First Trial Rate of Return

Year	*Cash Inflows*	*P.V. Factor at 10%*	*Present Value*
	Rs.		Rs.
1	5,000	0.909	4,545
2	4,000	0.826	3,304
3	3,000	0.751	2,253
			10,102

द्वितीय चरण : चूँकि रोकड़ अन्तर्वाहों का वर्तमान मूल्य (10,102 रू.) विनियोग की लागत (10,000 रू.) से अधिक है, अतः अगली जाँच इससे ऊँची अर्थात् 12 प्रतिशत पर की जाएगी जो इस प्रकार होगी–

Verification of Second Trial Rate of Return

Year	*Cash Inflows*	*P.V. Factor at 12%*	*Present Value*
	Rs.		Rs.
1	5,000	0.893	4,465
2	4,000	0.797	3,188
3	3,000	0.712	2,136
			9,789

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तृतीय चरण : प्रत्याय की इस दर (12 प्रतिशत) पर रोकड़ अंतर्वाहों का वर्तमान मूल्य (9,789 रू.) विनियोग की लागत (10,000 रू.) से कम हैं; अतः प्रत्याय दर 12 प्रतिशत से नीचे होगी । वास्तविक प्रत्याय दर निम्न सूत्र से ज्ञात की जा सकती है–

$$IRR = LDR + \frac{P_1 - Q}{P_1 - P_2} X (HDR - LDR)$$

$$IRR = 10 + \frac{Rs.10,102 - 10,000}{Rs.10,102 - 9,789} X (12-10)$$

$$= 10 + \frac{102}{313} x 2$$

$$= 10 + \frac{204}{313}$$

$$= 10 + 0.65 = 10.65\%$$

उदाहरण (Illustration) : पिक अप लिमिटेड अपने वर्तमान उत्पादन स्तर को बढ़ाने के लिए एक नयी मशीन क्रय करना चाहती है। मशीन की लागत 70,000 रू. होगी तथा मशीन के जीवन काल में शुद्ध रोकड़ प्रवाह इस प्रकार होंगें–

Pick up Limited desires to purchase a new machine in order to increase its present level of production. The cost of machine will be Rs.70,000 and the net cash inflows during its life will be as follows:

Year	1	2	3	4	5
Net Cashflows (Rs.)	50,000	40,000	20,000	10,000	10,000

प्रबन्ध द्वारा निर्धारित न्यूनतम प्रत्याय दर 25 प्रतिशत वार्षिक हैं। क्या विनियोग वांछनीय है? आन्तरिक प्रत्याय दर विधि के अनुसार विवेचना कीजियें।

Minimum rate of return laid down by the management is 25% p.a. Is the investment desirable? Discuss it according to Internal Rate of Return.

Year	1	2	3	4	5
35%	.741	.549	.406	.301	.223
40%	.714	.510	.364	.260	.186

gy (Solution)

Verification of First Trial of Return

Year	*Cash Inflows*	*P.V. Factor at 35%*	*Present Value*
	Rs.		Rs.
1	50,000	.741	37,050
2	40,000	.549	21,960
3	20,000	.406	8,120
4	10,000	.301	3,010
5	10,000	.223	2,230
			72,370

35 प्रतिशत दर पर रोकड़ अन्तर्वाहों का कुल वर्तमान मूल्य (72,370 रू.) विनियोग की लागत (70,000 रू.) से अधिक आता है, अतः जाँच इससे ऊँची अर्थात् 40 प्रतिशत पर की जाएगी जो इस प्रकार होगी–

Verification of Second Trial of Return

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Year	*Cash Inflows*	*P.V. Factor at 40%*	*Present Value*
	Rs.		Rs.
1	50,000	.714	35,700
2	40,000	.510	20,400
3	20,000	.364	7,280
4	10,000	.260	2,600
5	10,000	.186	1,860
			67,840

प्रत्याय की इस दर (40 प्रतिशत) पर रोकड़ अंतर्वाहों का कुल वर्तमान मूल्य (67,840 रू.) विनियोग की लागत (70,000 रू.) से कम है; अतः प्रत्याय दर 40 प्रतिशत से कम होगी। अतः आन्तरिक प्रत्याय दर ;प्त्द्ध 35 प्रतिशत व 40 प्रतिशत के मध्य है जिसकी गणना अन्तरगणन विधि से इस प्रकार की गई है–

$$IRR = LDR + \frac{P_1 - Q}{P_1 - P_2} X (HDR - LDR)$$

Where; LDR = Lower Discount Rate

P1 = Present values at lower rate of interest

P2 = Present values at higher rate of interest

Q = Net Cash Outlay

HDR = Higher Discount Rate

Substituting the values,

$$IRR = 35 + \frac{Rs.72,370 - 70,000}{Rs.72,370 - 67,840} X (40 - 35)$$

$$= 35 + \frac{2,370}{4,530} x 5$$

$$= 35 + \frac{11,850}{4,530}$$

$$= 35 + 2.62 = 37.62\%$$

निर्णय : अतः 37.62 प्रतिशत प्रत्याय दर पर पांच वर्षो के रोकड़ अंतर्वाहों का योग विनियोग लागत के बाबर होगा। उपर्युक्त उदाहरण में यह प्रत्याय दर प्रबन्ध द्वारा वांछित प्रत्याय दर (25 प्रतिशत) से अधिक हैं। अतः परियोजना को स्वीकृत कर लिया जायेगा।

निर्णय मापदण्ड : आन्तरिक प्रत्याय दर के आधार पर निर्णय लेने से पूर्व संस्था को अपनी वांछित प्रत्याय दर निर्धारित करनी पड़ती है। यह कट–ऑफ दर (cut-off rate) या 'बाधा दर' (Hurdle rate) कहलाती है। एक परियोजना स्वीकृत कर ली जाती है यदि प्त्त इसकी न्यूनतम वांछित प्रत्याय दर या कट–ऑफ दर से अधिक हैं, अन्यथा अस्वीकृत कर दी जाती है। परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं की दशा में उच्चतम प्त्त वाली परियोजना को उच्च प्राथमिकता दी जाती है। परियोजना जिसकी प्त्त न्यूनतम वांछित दर से कम होती हैं, उसे पूर्णतः अस्वीकृत कर दिया जाता है।

आन्तरिक प्रत्याय दर विधि के लाभ (Advantages of IRR)

परियोजना मूल्याकंन की आन्तरिक प्रत्याय दर विधि के निम्नलिखित लाभ हैं जिनकी वजह से विनियोजन सम्बन्धी निर्णयों में इस विधि का बहुत अधिक प्रयोग किया जाता हैं–

(1) **अंशधारियों की सम्पदा का अधिकीकरण** : यह लाभजनित विधि है जो न्यूनतम वांछित प्रत्याय दर से अधिक लाभार्जन वाली परियोजना के चयन में सहायक होती है। इसलिए यह अंशधारियों की सम्पदा अधिकतम करने के उद्धश्य से सहायता करती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(2) **जोखिम तथा अनिश्चितता** : इसमें परियोजना पर जोखिम तथा अनिश्चितता का पूरा ध्यान रखा जाता है तथा इन्हीं के अनुसार अपेक्षित प्रत्याय दर निर्धारित की जाती हैं।

(3) **तुलनात्मक लाभदायकता** : प्रबन्धक विभिन्न विनियोजन प्रस्तावों की प्रत्याय की दरों की संस्था की पूँजी की लागत से तुलना करके आसानी से निर्णय ले सकता है कि किस प्रस्ताव का चुनाव किया जाय। इनमें जिस प्रस्ताव की प्रत्याय दर पूँजी की लागत से अधिक होगी, उसे स्वीकृत किया जायेगा।

(4) **समय कारक** : शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि की तरह समय कारक पर विचार किया जाता है अर्थात् भविष्य में प्राप्त होने वाली आय को उपयुक्त दर से अपहारित करके वर्तमान मूल्य ज्ञात किया जाता है।

(5) **सम्पूर्ण जीवनकाल पर विचार** : इसमें विनियोग पर आय प्राप्ति की दृष्टि से परियोजना के पूरे जीवन पर विचार किया जाता है।

(6) **पूँजी लागत आवश्यक नहीं** : इस विधि में परियोंजना के मूल्यांकन से पहले ही न्यूनतम वांछित प्रत्याय दर के ज्ञात करके की आवश्यकता नहीं होती।

आन्तरिक प्रत्याय दर विधि के लाभ (Disadvantages of IRR)

(1) **समझने में कठिन** : असमान रोकड़ अंतर्वाहों की दशा में भूल एवं सुधार विधि द्वारा प्रत्याय दर की गणना में बड़ी कठिनाई आती हैं।

(2) **निर्णय में कठिनाई** : कभी कभी इस विधि की सहायता से सही निर्णय लेना कठिन हो जाता है क्योंकि असमान रोकड़ अंतर्वाहों की दशा में दो या उससे अधिक उत्तर प्राप्त होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में यह समस्या उत्पन्न होती हैं कि कौन सा उत्तर उचित होगा।

(3) **अतुलनीयता** : आन्तरिक प्रत्याय दर से प्राप्त परिणाम शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के परिणामों से मेल नहीं खाते, यदि परियोजनाएँ सम्भावित जीवनकाल रोकड़ अन्तर्वाहों अथवा उनके समय की दृष्टि से भिन्न हो।

(4) **अनिश्चितता** : यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि संस्था को वार्षिक रोकड़ अंतर्वाहों का पुनर्विनियोजन करने से प्रत्याय की दर के बराबर आय प्राप्त होती हैं। किन्तु रोकड़ अंतर्वाहों का अनुमान विक्रय एवं लागत के अनुमानों पर आधारित होता है जो कि स्वंय अनिश्चित होते हैं।

शुद्ध वर्तमान मूल्य एवं आंतरिक प्रत्याय दर की तुलना (Comparison between NPV and IRR)

शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि एवं आंतरिक प्रत्याय दर विधि दोनों ही पूँजीगत विनियोगों के मूल्यांकन की रोकड़ प्रवाहों की कटौती तकनीक के दो स्वरूप हैं। इन दोनों विधियों में, जहाँ तक समानता का प्रश्न हैं, समय कारक को ध्यान में रखा जाता हैं। साथ ही विनियोग प्रस्ताव के स्वीकृत अथवा अस्वीकृत होने के संबंध में दोनों विधियों से ही परिणाम निकलते हैं। किन्तु इन समानताओं के बावजूद भी इन दोनों विधियों में कुछ अन्तर हैं जो इस प्रकार हैं–

(1) **वांछित प्रत्याय दर** : आंतरिक प्रत्याय दर विधि में न्यूनतम वांछित प्रत्याय दर अज्ञात चर **;न्दादवूद अंतपंइसमद्ध** 22 होता है जिसे भूल एवं सुधार विधि द्वारा ज्ञात किया जाता हैं; जबकि शुद्ध वर्तमान मूल्य पद्धति में यह पहले से ही ज्ञात होता हैं।

(2) **निष्कर्यो में भिन्नता** : दो परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं की दशा में दोनो विधियों में समान निष्कर्श प्राप्त होना सम्भव नहीं हैं। परस्पर अपवर्जी परियोजनाओं से आशय ऐसी परियोजनाओं से हैं जिनमें यदि एक को स्वीकृत कर लिया जाता हैं तो दूसरी परियोजना से सम्भावित प्राप्तियाँ समाप्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हो जाती है। ऐसी परियोजनाओ के जीवनकाल में भिन्नता अथवा रोकड़ लागत में भिन्नता अथवा अंतर्वाहों के स्वरूप में भिन्नता के कारण होता हैं।

(3) **पुनर्विनियोजन मान्यता** : दोनों विधियों में रोकड़ अंतर्वाहों के वार्शिक पुनर्विनियोजन सम्बन्धी विनियोजन में भी भिन्नता हैं। आंतरिक प्रत्याय दर विधि इस मान्यता पर आधारित है कि रोकड़ अंतर्वाहों का पुनर्विनियोजन परियोजना के पूरे जीवनकाल में आंतरिक प्रत्याय दर से होता रहेगा। इसके विपरीत, शुद्ध वर्तमान मूल्य पद्धति इस मान्यता पर आधारित है कि रोकड़ अंतर्वाहों के पुनर्विनियोजन से अपेक्षित प्रत्याय दर प्राप्त होती रहेगी जोकि सामान्यताः पूँजी लागत की दर होती हैं।

(4) **प्रत्याय दर का उद्धेश्य** : आंतरिक प्रत्याय दर विधि से ज्ञात की गई प्रत्याय दर परियोजना के लिए कोषों की प्राप्ति पर देय ब्याज की अधिकतम दर निर्धारित करती हैं। दूसरे शब्दों में, परियोजना में विनियोजित पूँजी की लागत इस प्रत्याय दर से अधिक नहीं होनी चाहिए। दूसरी ओर, शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि यह बतलाती है कि किसी परियोजना में अधिकतम कितनी राशि विनियोजित की जाये जिससे इस परियोजना से प्राप्त अर्जनें परियोजना में लगी पूँजी के बाजार दर पर ब्याज – सहित राशि के बराबर हो जाये।

(5) **दर की गणना का आधार** : आंतरिक प्रत्याय दर विधि में पुनर्विनियोजन दर की गणना विनियोग प्रस्तावों के रोकड़ प्रवाहों के अनुरूप की जाती है जो कि कभी भी पूँजी की लागत पर आधारित नहीं होती। इसके विपरीत, वर्तमान मूल्य विधि के अंतगर्त पुनर्विनियोजन दर पूँजी की लागत के आधार पर निर्धारित की जाती है। अतः इसके लिए पूँजी लागत की पहले गणना करना आवश्यक हैं।

विनियोग प्रस्तावों के मूल्यांकन की दोनों विधियों की तुलना करने के उपरान्त प्रश्न यह उठता है कि इसमें कौन सी विधि उत्तम हैं। इनमें शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि अपेक्षाकृत उत्तम हैं; क्योंकि आन्तरिक प्रत्याय दर विधि के अर्न्तगत विभिन्न प्रस्तावों की दर भिन्न होती है, जबकि शुद्ध वर्तमान मूल्य विधि के अन्तर्गत प्रत्येक प्रस्ताव की पुनर्विनियोग दर एक समान होती हैं।

उदाहरण (Illustration) : एल्कोबेक्स मेटल्स लि. दो विभिन्न विनियोग प्रस्तावों पर विचार कर रही है। इस सम्बन्ध में निम्न सूचनाएँ हैं–

Alcobex Metals Ltd. are considering two different investment proposals. The details are as under:

	Proposal – A	Proposal – B
	Rs.	Rs.
Investment Cost	9,500	20,000
Estimated Cash inflows at the end of		
Year I	4,000	8,000
Year II	4,000	8,000
Year III	4,500	12,000

(अ) अतिरिक्त वर्तमान मूल्य विधि के आधार पर यह मानते हुए कि भावी रोकड़ अन्तर्वाहों को 12 प्रतिशत पर अपलिखित किया जाता है, सर्वाधिक आकर्षक प्रस्ताव का सुझाव दीजियें।

(ब) दोनों प्रस्तावों की आन्तरिक प्रत्याय दर भी ज्ञात कीजिये।

(a) Suggest the most attractive proposal on the basis of Excess Present Value Method considering future cash inflows are discounted at 12%

(b) Also find out the Internal Rate of Return of the two proposals.

The present value of Re.1 receivable at the end of each period on various rates of discount are:

Year	10%	12%	14%	15%	16%	17%	18%
1	.9091	.8929	.8772	.8696	.8621	.8547	.8475
2	.8265	.7972	.7695	.7561	.7432	.7305	.7182
3	.7513	.7118	.6750	.6575	.6407	.6244	.6086

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(Solution)

(a) Net Present Value Method

Year	*Discount Factor at 12%*	*Proposal – A*		*Proposal - B*	
		Cash Inflows	*P.V.of Cash Inflows*	*Cash Inflows*	*P.V. of Cash Inflows*
	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
1	0.8929	4,000	3,572	8,000	7,143
2	0.7972	4,000	3,189	8,000	6,378
3	0.7118	4,500	3,203	12,000	8,542
Total Present Value			9,964		22,063
Less: Initial Investment			9,500		20,000
Net Present Value			464		2,063

Most attractive proposal B, because N.P.V. is higher in case of B.

(b) Internal Rate of Return Method

Proposal – A

Year	*Cash Inflows*	*Discounting factor at 14%*	*Present Value*	*Discounting Factor at 15%*	*Present Value*
	Rs.		Rs.		Rs.
I	4,000	.8772	3,509	.8696	3,478
II	4,000	.7695	3,078	.7561	3,024
III	4,500	.6750	3,038	.6575	2,959
Total	12,500		9,625		9,461
Less: Investment			9,500		9,500
N.P.V.			125		(-) 39

IRR must be between 14% and 15%. We can find out actual I.R.R. by way of interpolation as follows:

$$\text{IRR} = \text{LDR} + \frac{P_1 - O}{P_1 - P_2} \text{X (HDR - LDR)}$$

$$\text{IRR} = 14 + \frac{\text{Rs.}9{,}625 - 9{,}500}{\text{Rs.}9{,}625 - 9{,}461} \text{X (15-14)}$$

$$= 14 + \frac{125}{164} \text{x} 1$$

$$= 14 + .76 = 14.76\% \text{ IRR of Proposal - A}$$

Proposal – B

Year	*Cash Inflows Rs.*	*Discounting factor at 17%*	*Present Value Rs.*	*Discounting Factor at 18%*	*Present Value Rs.*
I	8,000	.8547	6,838	.8475	6,780
II	8,000	.7305	5,844	.7182	5,746
III	12,000	.6244	7,493	.6086	7,303
Total	28,000		20,175		19,829
Less: Investment			20,000		20,000
N.P.V.			175		(-) 171

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

IRR must be between 17% and 18%.

$$\text{IRR} = \text{LDR} + \frac{P_1 - O}{P_1 - P_2} \text{X (HDR - LDR)}$$

$$\text{IRR} = 17 + \frac{\text{Rs.}20{,}175 - 20{,}000}{\text{Rs.}20{,}175 - 19{,}829} \text{X } (18-17)$$

$$= 17 + \frac{175}{346} \text{x } 1$$

$$= 17 + .5$$

$$= 17.5\% \text{ IRR of Proposal - B}$$

Decision: Most attractive proposal is B.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

खण्ड–ब

पूँजी की लागत
(Cost of Capital)

विभिन्न परियोजनाओं के विनियोग प्रस्तावों पर निर्णयन करते समय एवं विद्यमान व्यवसाय में अतिरिक्त कोषों की व्यवस्था करते समय पूंजी के विभिन्न स्त्रोतों की लागत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। विनियोग प्रस्ताव स्वीकार करते समय हम यह देखेंगे कि परियोजना, से होने वाली सम्भावित आय या प्रत्याय की दर पूंजी की लागत के बराबर या अधिक हो इसी प्रकार अतिरिक्त कोषों की व्यवस्था करते समय हम यह सुनिश्चित करेंगे की पूंजी के किस स्त्रोत की लागत सबसे कम आयेगी । अतः पूंजी की जागत का निर्णयन में महत्वपूर्ण स्थान है। किसी व्यावसायिक संस्था के लिये पूंजी के विभिन्न स्त्रोंतों, यथा–समता या अधिमान पूंजी, ऋण पूंजी, प्रतिधारित अर्जने इत्यादि की लागत की गणना को समझने से पूर्व पूंजी की लागत का अर्थ समझना आवश्यक है।

पूँजी की लागत का अर्थ एवं परिभाषाएँ
(Meaning and Definitrions of Cost of Capital)

पूंजी की लागत एक महत्वपूर्ण अवधारणा है जिसे अनेक अर्थो में प्रयुक्त किया जाता है। पूंजी प्रदाता या विनियोक्ता के दृष्टिकोण से यह उस त्याग का पुरस्कार है जिसको वह वर्तमान उपभोग को स्थगित करके भविष्य में विनियोग के बदले प्राप्त करने की इच्छा रखता है। उपयोगकर्ता के दृष्टिकोण से पूंजी की लागत पूंजी का उपभोग करने के बदले दिया गया मूल्य है। तकनीकी दृष्टिकोण से पूजीं की लागत वह न्यनतम प्रत्याय दर है जो विनियोक्ताओं को सन्तुष्ट करने एवं उपयोगकर्ता को अपने व्यवसाय को बनाये रखने के लिये विनियोगों पर अर्जित करनी चाहिये।

पूंजी की लागत की अवधारणा को स्पष्ट रूप से मझने के लिये यह आवश्यक है कि हम कुछ प्रमुख परिभाषाओं का अध्ययन करें। कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नानुसार है :

पूंजी की लागत अपेक्षित अर्जनों की न्यूनतम दर या पूंजी व्ययों की विच्छेद पर है।

–सोलोमन इजरा

पूंजी की लागत वह न्यूनतम प्रत्याय दर होती है, जिसे एक फर्म किसी विनियोग को करते मय एक शर्त के रूप में आवश्यक मानती है।

–मिल्टन एच. स्पेन्सर

इसे (पूंजी की लागत) उस दर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो प्राप्त शुद्ध राशि ;छमज च्तवबममकेद्ध पर अवश्य ही अर्जित की जानी चाहिये ताकि देय होने पर लागत व्यायों की पूर्ति की जा सके।

–हन्ट, विवलियम तथा डोनाल्डसन

पूंजी की लागत वह प्रत्याय दर है जो कि एक कम्पनी को अपना मूल्य बनाये रखने के लिये विनियोग पर अर्जित करनी चाहिये।

–एम.जे.गार्डन

एक फर्म की तथाकथित पूंजी की लागत जिसे सामान्यतया वार्षिक प्रतिशत के रूप में व्यक्त किया जाता है–सरल रूप वें वह प्रत्याय दर है जो उस फर्म की सम्पतियों को अपना विनियोग औचित्य प्रदर्शित करने के लिये अर्जित करना चाहिये।

–डब्ल्यू जी. लवेलियन

पूंजी की लागत एक ऐसी प्रत्याय दर है जो एक संस्था अपने मूल्य में वृद्धि करने के लिये विनियोग पर चाहती है।

–हम्पटन जॉन जे.

निष्कर्ष के रूप में पूंजी की लागत वह न्यूनतम प्रत्याय दर है जो किसी संस्था को ऋणप्रदाताओं को उनके त्याग की लागत का भुगतान करने व अपने समता अंशों के बाजार मूल्य में वृद्धि करने अथवा बनाये रखने के लिये अपने विनियोगों पर अवश्य प्राप्त करनी चाहिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पूँजी की लागत की विशेषताएँ
(Characteristics of Cost of Capital)

पूंजी की लागत अवधारण की आधारभूत विशेषताएं निम्नलिखित है :–

1. पूंजी की न्यूनतम प्रत्याय दर (Mnimum Rate of Return of Capital)– पूंजी की एक ऐी न्यूनतम प्रत्याय दर है जो किसी संस्था को अपने विनियोग पर प्राप्त करनी चाहिये, जिससे प्राप्त कोषों की लागतों का भुगतान किया जा सके।

2. लागत नहीं होना (Not a Cost) – पूंजी की लागत वास्तव में कोई लागत नहीं है, वरन एक प्रत्याय दर है जो किसी संस्था को विनियोग पर प्राप्त करनी चाहिये।

3. व्यावसायिक एवं वित्तीय जोखिम का पुरस्कार (Reward of Business and Financial Risk)– पूंजी की लागत मुख्यतः व्यावसायिक एवं वित्तीय जोखिम के बदले मिलने वाला पुरस्कार है व्यावायिक जोखिम बिक्री की मात्रा व वित्तीय जोखिम पूंजी संरचना पर निर्भर करती है।

पूँजी की लागत की अवधारणा का महत्व
(Significance of Concept of Cost of Capital)

'पूंजी की लागत' की अवधारणा का महत्व निम्नानुसार है –

1. अनुकूलतम पूंजी संरचना का निर्धारण ;क्मजमतउपदंजपवद वि व्चजपउनउ ब्वपजंस ैजतनबजनतमद्ध– पूंजी की अवधारणा किसी संस्था के अनुकूलतम पूंजी संरचना निर्धारण में अत्यन्त सहायक होती है। किसी संस्था की अनुकूलतम पूंजी संरचना वह होती है जिसमें पूंजी की औसत लागत न्यनतम तथा समता अंशधारियों को अधिकतम आय प्राप्त हो जाय।

2. वित्तीय स्त्रोंतो का तुलनात्मक मूल्यांकन ;ब्वउचंतंजपअम म्अंसनंजवद वि थ्पदंदबपंस त्मेवनतबमेद्ध– वित्त प्राप्ति के विभिन्न स्त्रोतों, यथा–ऋण, अधिमान या समता अंश में किसी समय विशेष पर किसी एक या अधिक स्त्रोतों का चुनाव उनकी लागत का तुलनात्मक अध्ययन करके किया जा सकता है।

3. पूंजी विनियोग सम्बन्धी निर्णयों की आधारशिला ;ठेंम वित ब्वपजंस प्दअमेजउमदज क्मबपेपवदेद्ध– पूंजी की लागत पूंजी विनियोग सम्बन्धी निर्णयों की आधारशिला है। पूंजी विनियोग सम्बन्धी निर्णय करते समय हम उसी प्रस्ताव या परियोजना को स्वीकृत करते है, जिससे होने वाली सम्भावित प्रत्याय की दर पूंजी की लागत से अधिक या बराबर हो, अन्यथा हम उस प्रस्ताव को अस्वीकृत करते हैं।

4. कार्यशील पूंजी की मात्रा तथा स्त्रोत का चुनाव ;मसमबजपवद वि टवसनउम दक वनतबम वि वतापदह ब्वपजंसद्ध– पूंजी की लागत के आधार पर कार्यशील पूंजी की मात्रा तथा न्यूनतम लागत हेतु उपयुक्त स्त्रोतों का चुनाव किया जा सकता है।

5. सम्भावित आय एवं जोखिम की जानकारी ;ज्ञदवूसमकहम वि च्वेपइसम प्दबवउम दक त्पोद्ध– पूंजी की लागत की अवधारणा से किसी व्यवसाय की सम्भावित आय का पता लगने के साथ साथ उसमें अन्तर्निहित जोखिम के बारे में भी जानकारी मिलती है। यदि पूंजी की भारित औसत लागत अधिक है तो संभावित आय कम जोखिम की मात्रा अधिक एवं पूंजी संरचना असंतुलित होगी। इसके विपरीत औसत लागत कम होने पर समता अंशों पर आय अधिक, जोखिम की मात्रा कम एवं पूंजी संरचना संतुलित होगी।

6. वित्तीय कुशलता का मूल्यांकन ;म्अंसनंजपवद वि थ्पदंदबपंस र्मपिबपमदबमलद्ध– पूंजी की लागत के आधार पर उच्च प्रबन्ध की वित्तीय कुशलता का मूल्यांकन करना सम्भव होता है। यदि पूंजी की भारित औसत लागत को न्यूनतम स्तर तक लाने में प्रबन्ध सफल रहता है तो यह उनकी अच्छी कार्यकुशलता का परिचायक होगा।

पूंजी की लागत की गणना
(Clculation of Cost of Capital)

किसी संस्था की पूंजी की लागत की गणना में उसकी पूंजी के विभिन्न स्त्रोतों की विशिष्ट लागत की गणना एवं तत्पश्चात् औसत पूंजी लागत की गण्ना करना शामिल है। विभिन्न वित्त स्त्रोतां की पूंजी की लागत भिन्न भिन्न होती हैं, जिसकी गणना विधि निम्नानुसार है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ऋण–पूँजी की लागत
(Cost of Debt Capital)

ऋण पूंजी के अन्तर्गत सामान्यतया ऋण–पत्रों, बाण्डों तथा दीर्घकालीन ऋणों को सम्मिलित किया जाता है। ऋण–पूंजी की लागत की गण्ना ऋण–पूंजी के निर्गमन से प्राप्त शुद्ध राशि ;छमज च्तवबममकेद्ध पर की जाती है। शुद्ध राशि से तात्पर्य ऋण–पत्रों या बॉण्डों या दीर्घकालीन ऋणों के निर्गमन मूल्य में से निर्गमन लागतें, यथा–अभिगोपन, कमीशन, दलाली, प्रविवरण की छपाई, विज्ञापन, डाकव्यय, मुद्रांक शुल्क इत्यादि घटाने के बाद प्राप्त शेष राशि है। प्राप्त शुद्ध राशि ऋण–पत्रों के प्रीमियम अथा बट्टे पर निर्गमन किये जाने से भी प्रभावित होगी। प्राप्त शुद्ध राशि की गणना निम्न प्रकार की जायेगी–

(1) प्रीमियम पर निर्गमन

शुद्ध राशि = सममूल्य + प्रीमियम – निर्गमन लागत

(2) बट्टे पर निर्गमन

शुद्ध राशि = सममूल्य – बट्टा – निर्गमन लागत

(3) सममूल्य पर निर्गमन

शुद्ध राशि = सममूल्य – निर्गमन लागत

सामान्यतया ऋण–पत्रों के निर्ममन पर प्राप्त शुद्ध राशि एवं उनकी परिपक्वता पर चुकाई जाने वाली राशि में अन्तर पाया जाता है। अन्तर की इस राशि में ऋण–पत्रों की अवधि का भाग देकर ऋण–पत्रों पर प्रतिवर्ष देय ब्याज की राशि में जोड़ा जाता है ताकि औसत पूंजी पर ऋण–पूंजी की लागत ज्ञात की जा सके। औसत पूँजी की गणना शुद्ध राशि व परिपक्वता पर देय राशि में दो का भाग देकर की जाती है। ऋण–पत्रों के अशोधनीय होने या उनकी परिपक्वता की अवधि न दिये जाने की स्थिति में न तो प्राप्त शुद्ध राशि व परिपक्वता पर देय राशि के अन्तर का समायोजन किया जाता है तथा न ही औसत पूंजी की गण्ना की जाती है।

ऋण–पूंजी की लागत की गण्ना निम्न सूत्रों की सहायता से की जा सकती है–

(1) जब ऋण–पूंजी शोधनीय हो –

$$Cost\ of\ Debt\ Capital\ or\ K_d = \frac{Annual Interest + \left(\frac{MV - NP}{n}\right)}{\frac{MV + NP}{2}} X 100$$

यहां MV = परिपक्वता पर देय राशि (Maturity Value)

NP = प्राप्त शुद्ध राशि (Net Proceeds)

n = परिपक्वता की अवधि (Number of years of maturity)

Kd = ऋण पूंजी की लागत

(2) जब ऋण–पूंजी अशोधनीय हो अर्थात् उनकी परिपक्वता अवधि या परिपक्वता पर देय राशि की सूचना हो –

$$\underset{(Before Tax)}{Cost\ of\ Debt\ Capital} = \frac{Annual\ Interest}{Net\ Proceeds} X\ 100$$

ऋण पूंजी पर देय ब्याज आयकर अधिनियम के अनुसार स्वीकार्य व्यय होता है जो कर की दर के अनुरूप बचत प्रदान करता है, अतः ऋण पूँजी की प्रभावी लागत ज्ञात करने के लिये कर–पूर्व लागत को कर पश्चात् लागत में निम्न सूत्र की सहायता से परिवर्तित करेंगे –

$$\underset{(After Tax)}{Cost\ of\ Debt\ Capital} = \underset{(Before Tax)}{Cost\ of\ Debt\ Capital} (1 - Tax\ Rate)$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शोधनीय ऋण पूँजी की लागत की गणना

illustration :

एच लिमिटेड को अतिरिक्त वित्त की आवश्यकता है। वह इसके लिये 9 प्रतिशत ब्याज दर वाले 1,000 ऋण–पत्र ;500 रू. सममूल्य पर निर्गमित करने का निर्णय लेती है। इनका शोधन 8 वर्ष के बाद किया जायेगा। निर्गमन की लागत निम्न प्रकार होने की आशा है–

(1) अभिगोपन कमीशन 1.5 प्रतिशत, (2) दलाली 0.5 प्रतिशत (3) छपाई आदि व्यय 10,000 रू. कम्पनी के ऋण–पत्रों की कर के पश्चात् लागत ज्ञात कीजिये, यदि आयकर की दर 35 प्रतिशत हो।

H. Ltd. requred additional finance. For this it has been decided to issue 1,000 9% debentures of Rs. 500 at par redemable after 8 years. The cost of issue is estimated to be as follows :

(i) Underwriting Commission 1.5%: (ii) Brokerage 0.5%: (iii) Printing and other expenses Rs. 10,000.

Caculate the after tax cost of debentures assuming that the corporate tax rate s 35%.

Claculation of Net Proceeds

Particulars	Rs.	Rs.
Face Value of Debenture		500
Less: Issue xpnses per Debenture	7.50	
(i) Underwriting Commission	2.50	
(ii) Brokerage	10.00	20
(III)Printig and other expenses (10,000/1,000)	-	480
Net Proceeds		

$$K_d(beforetax) = \frac{1+\left\{\frac{MV \updownarrow NP}{n}\right)}{\left\{\frac{MV+NP}{2}\right)} X100$$

Where : I = Annual Interet Payment; PV = Par Value of Debentures;
NP = Net Proceeds; n = Number of years to maturity.

Substituting the value,

$$K_d(beforetax) = \frac{Rs.45 + \left(\frac{Rs.500 - Rs.480}{8}\right)}{\left(\frac{Rs.500+Rs.480}{2}\right)} X100$$

$$= \frac{Rs.45 + Rs.2.50}{Rs.490} X100$$

$$= \frac{Rs.47.50}{Rs.490} X100 = 9.7\%$$

$$K_c(beforetax) = C(d)(beforetax)\ X\ (1-T)$$

$$= 9.7\ X\ (1-.35) = 6.305\%$$

illustration :

एम लिमिटेड 10 लाख रूपये के 500 रूपये मूल्य के 9 प्रतिशत ऋण–पत्र निर्गमित करना चाहती है। ऋण पत्रों का शोधन 10 वर्ष बाद सममूल्य पर होगा। कम्पनी द्वारा निर्गमन पर निम्न व्यय चुकाये जायेंगे– (1) अभिगोपन कमीशन 1 प्रतिशत (2) दलाली 0.5 प्रतिशत तथा (3) छपाई एवं अन्य व्यय 5,000 रूपये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ऋण पूंजी की लागत (कर–पूर्व तथा कर पश्चात्) ज्ञात किजिये। यदि ऋण–पत्रों का निर्गमन– (1) सम मूल्य, (2) 10 प्रतिशत बट्टे तथा (3) 10 प्रतिशत प्रब्याजि पर किया जाये। निगम कर की दर 35 प्रतिशत मानिए।

M Ltd. watnts to issue Rs. 10 lakhs of 9% debentures of Rs. 500 each. The debentures are to be redeemed after 10 years. The company wil pay the foowing issue expenses- (i) Underwriting commission 1%, (ii) Brokerage 0.5%, and (iii) Printing and Other Expenses Rs. 5,000.

Calculate the cost of debt capital (before tax as well as after tax) if the debentures are issued at (i) par, (ii) 10% discount, and (iii) 10% premium. Assume corprate tax rate at 35%

(i) Debentures issued at par

Calculation of Net Proceeds

Particulars	Rs.	Rs.
Face Value per debenture		500
Less: Issue expnses per Debenture	5.00	
Underwriting Commission	2.50	
Brokerage	2.50	10
Printig and wother expenses (10,000/1,000)	-	490
Net Proceeds		

$$K_d\,(before\,tax) = \frac{1+\left\{\frac{MV \updownarrow NP}{n}\right\}}{\left\{\frac{MV+NP}{2}\right\}} X100$$

$$= \frac{45+\left(\frac{500-490}{10}\right)}{\left(\frac{500+490}{2}\right)} X100$$

$$= \frac{45+1}{495} X100 = 9.293\%$$

$$K_c\,(after\,tax) = Cd\,(before\,tax)\;X\;(1-T)$$

$$= 9.293\%\,9(1-.35) = 6.04\%$$

(II) Denenturs issued at 10% discount

Calculation on Net Proceeds

Particulars	Rs.	Rs.
Face Value per debenture		500
Less : Discount @ 10@	50	
Issue Expenses (as above)	10	60
Net Proceeds per debenture		440

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$K_c\,(before\,tax) = \frac{45 + \left(\frac{500 - 440}{10}\right)}{\left(\frac{500+440}{2}\right)} X100$$

$$= \frac{45+6}{470} X100 = = \frac{51}{470} X100 = 10.851\%$$

$$K_c\,(after\,tax) = Cd\,(before\,tax)\;X\;(1-T)$$

$$= 10.851\%\,9(1-.35) = 7.05\%$$

II) Denenturs issued at 10% Premium

Calculation on Net Proceeds

Particulars	Rs.
Face Value per debenture	500
Add : Premium @ 10%	50
	550
Less : Issue expenses (as above)	10
Net Proceeds per debenture	540

$$K_c\,(before\,tax) = \frac{45 + \left\{\frac{500 \updownarrow 540}{10}\right)}{\left\{\frac{500+540}{2}\right)} X100$$

$$= \frac{45 \updownarrow 4}{520} X100 = = \frac{41}{520} X100 = 7.885\%$$

$$K_c\,(after\,tax) = Cd\,(before\,tax)\;X\;(1 \updownarrow T)$$

$$= 7.885\%\,(1 \updownarrow .35) = 5.125\%$$

illustration :

निम्न समंको से 14 प्रतिशत ऋण पत्रों की कर पश्चात् लागत ज्ञात किजिए जिनका शोधन 10 वर्ष बाद होगा :

Compute the after tax cost of 14 % dbentures from the following data; which are redeemable after 10 years :

निर्गमित ऋण पत्रों की संख्या (No. of debentures issued) 1,000

	Rs.
अंकित मूल्य (Face Value)	100
निर्गमन मूल्य (Issue Price)	90
शोधनीय मूल्य (Redeemable price)	105
निर्गमन खर्चे (Floatation cost)	2,000
कर दर (Taxe Rate)	35%

Calculation of Net Proceeds	Rs.
Issue Pric per debenturwee	90
Less: Floatation cost (per debenture)	2
Net Proceeds per debenture	88

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$K_d\,(before\,tax) = \frac{1+\left(\frac{MV-NP}{n}\right)}{\left(\frac{MV+NP}{2}\right)} X 100\ X\ (1-T)$$

$$= \frac{14+\left(\frac{105-88}{10}\right)}{\left(\frac{105+88}{2}\right)} X 100 X (1-0.35)$$

$$= \frac{14+1.7}{96.5} X 100\ X\ .65$$

$$= \frac{15.37 X 65}{96.5} = 10.575\%$$

अशोधनीय अथवा चिरस्थायी ऋण की लागत की गणना –

चिरस्थायी ऋण की लागत सरलतापूर्वक ज्ञात की जा सकती है। प्रायः इस पर देय ब्याज दर ही इसकी कर पूर्व की लागत होती है, परन्तु इस ब्याज दर का सम्बन्ध ऋण से प्राप्त शुद्ध राशि से स्थापित किया जाना चाहिये। ऋण की प्रभावी लागत ज्ञात करने के लिये कर पूर्व लागत को कर बाद लागत अथवा कर रहित लागत से परिवर्तित करना चाहिये। चिरस्थायी ऋण की कर पूर्व लागत निम्न सूत्र से ज्ञात की जा सकती हैं–

$$K_d = \frac{1}{NP} X 100$$

$$where\ K_d = Cost\ of\ debt$$

$$I = AnnualInterestCh\,arg\,es$$

$$NP = Net\ roceeds$$

चिरस्थायी ऋण को कर रहित लागत ;।जिमत ज्ंग ब्वेजद्ध ज्ञात करने के लिये उपर्युक्त सूत्र में कर दर का समायेाजन करके पूंजी की लागत निम्न प्रकार ज्ञात की जाती है :

$$K_d = \frac{1}{NP} X 100(1-t)$$

$$t = Rate\ of\ tax$$

illustration :

एम लिमिटेड 10प्रतिशत वाले 10,000 ऋणपत्र 100 रूपये प्रति ऋणत्र 5प्रतिशत बट्टा पर निर्गमित करती है। निर्गमन लागत 2प्रतिशत है। कम्पनी पर लागू कर की दर 35प्रतिशत है। ऋण पूंजी की कर पूर्व तथा कर बाद लागत ज्ञात किजिये।

M. Ltd. iissuess 10,000, 10% debentures of Rs. 100 esach at a discount of 5%. The costs of floation are 2%. The rate of tax applicable to the company is 35%. Compute the cost of debt capital before tax and after tax.

ऋण पूंजी की लागत (कर पूर्व) :

$$K_d = \frac{1}{NP} X 100$$

$$= \frac{1,00,000}{9,30,000} X 100 = 10.75\%$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

ऋण पूंजी की लागत (कर बाद) :

$$K_d = \frac{1}{NP} X 100 (1-t)$$

$$= \frac{1{,}00{,}000}{9{,}30{,}000} X 100(1-0.35) = 10.75(0.65) = 6.9875\%$$

Working Notes :

(1) Total Value of Debentures = Rs. 100 X 10,000 = Rs. 10,00,000
10% Interest Charges = Rs. 10,00,000 X 10/100 = Rs. 1,00, 000

(2) Computation of Net Proceeds) :

Particuars	Rs.	Rs.
Total Value of Debentures		10,00,000
Less : 5% Discount	50,000	
Less : 2% Floating Charges	20,000	70,000
Net Proceeds		9,30,000

illustrations :

कल्पतरु लि. 10 प्रतिशत वाले 1,0000 ऋणपत्रों का निर्गमन 100 रूपये प्रति ऋण पत्र निर्गमन करना चाहती है, जिन पर निम्न व्यय करने होगे :

(अ) अभिगोपन कमीशन 2 प्रतिशत

(ब) दलाली 0.5 प्रतिशत तथा

(स) छपाई तथा अन्य व्यय 15,000 रूपये।

Kalpataru Ltd. wishes to issue 1,000 (10%) debentures of Rs. 100 each for whixh the company will be required to incure following expenses :

(a) Underwriting Commission 2%

(b) Brokerage 0.5%

(c) Pringing and other expenses Rs. 15,000

ऋण पूंजी की लागत की गणना (कर पूर्व व कर पश्चात् कीजिए, यह मानते हुए कि ऋणपत्र का निर्गमन (i) सम मूल्य, (ii) 10प्रतिशत बट्टा तथा (iii) 10% प्रिमियम पर किया गया। कर दर 30 प्रतिशत है।

Calculate cost of debt capital (before tax as well as after tax) assuming th debt is issued : (i) at par, (ii) at 10% discount, and (iii) at 10% premium. The tax rate is 35%.

(1) ऋण पत्र निर्गमन सम मूल्य पर

(अ) कर पूर्व ऋण पूँजी की लागत

$$K_d = \frac{1}{NP} X 100 = \frac{Rs.10{,}000}{Rs.82{,}500} X 100 = 12.12\%$$

(ब) कर बाद ऋण पूंजी की लागत

$$K_d = \frac{1}{NP} X 100(1-t) = \frac{Rs.10{,}000}{Rs.82{,}500} X 100 (1-0.35) = 12.12(0.65) = 7.878\%$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Working Notes :

Particuars	Rs.	Rs.
Computation of Net Proceeds :		
Face Vaue of Debenturs		1,00,000
Less : Issue Expenses :		
(a) Underwritng Commission	2,000	
(b) Brokaage	5,00	
(c) Prtning & Other Charges	15,000	17,500
Net Proceeds		82,500

(2) ऋणपत्र निर्गमन 10 प्रतिशत बट्टे पर

(अ) कर पूर्व ऋण पूंजी की लागत

$$K_d = \frac{1}{NP} X 100 = \frac{10,000}{72,500} X 100 = 13.79\%$$

(ब) कर बाद ऋण पूंजी की लागत

$$K_d = \frac{1}{NP} X 100(1-t) = \frac{Rs.10,000}{Rs.72,500} X 100(1-0.35) = 8.9635\%$$

Working Noes :

Calculation of Net Proceeds

Particuars	Rs.	Rs.
Face Vaue of Debenturs		1,00,000
Less : 10% Discount		10,000
		90,000
Less : Issue Expenses :		
(a) Underwritg Commission	2,000	
(b) Brokerage	5,00	
(c) Prnting & Other Charges	15,000	17,500
Net Proceeds		72,500

(2) ऋण पत्र निर्गमन 10 प्रतिशत प्रब्याजि पर

(अ) कर पूर्व ऋण पूंजी की लागत

$$K_d = \frac{1}{NP} x 100 = \frac{10,000}{92,500} x 100 = 10.81\%$$

(ब) कर बाद ऋण पूंजी की लागत

$$K_d = \frac{1}{NP} x 100(1-t) = \frac{10,000}{92,500} x 100(1-0.35) = 10.81(0.65) = 7.0265\%$$

Working Notes :

Particuars	Rs.	Rs.
Face Vaue of Debenturs		1,00,000
Add : 10% Premium		10,000
		1,10,000
Less : Issue Expenses :		
(a) Underwritg Commission	2,000	
(b) Brokerage	5,00	
(c) Prnting & Other Charges	15,000	17,500
Net Proceeds		92,500

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अधिमान अंश पूँजी की लागत
(Cost of Prefernce Share Capital)

अधिमान अंश पूंजी एक ऐसी अंश पूंजी है जिस पर एक पूर्व निश्चित दर से लाभांश चुकाया जाता है। अधिमान अंशों पर लाभांश को भुगतान उसी दशा में किया जाता है अतः कम्पनी से लाभ हुए हो। अपर्याप्त लाभ अथवा घाटे के वर्षों में केवल असंचयी (Non-cumulative) पूर्वाधिकार अंशों की दशा में कम्पनी लाभांश चुकाने के दायित्व से मुक्त हो जाती है। कम्पनी संशोधन अधिनियम, 1988 के लागू होने के पश्चात् कोई भी कम्पनी अशोधनीय अधिमान अंशों का निर्गमन नहीं कर सकती, अतः वर्तमान में केवल शोध्य अधिमान अंशों का निर्गमन ही किया जा सकता है। अधिमान अंशों पर दिया जाने वाला लाभांश आयकर की दृष्टि से स्वीकार्य व्यय नहीं है, अतः इनकी लागत कर पश्चात् ज्ञात की अन्तर केवल ब्याज की जगह लाभांश शब्द का प्रयोग तथा ऋण–पूंजी की लागत की गणना के समान ही है, अन्तर केवल ब्याज की जगह लाभांश शब्द का प्रयोग तथा ऋण–पूंजी की कर पूर्व लागत की गणना के स्थान अधिमान अंशों की कर पश्चात् लागत की गण्ना की जाती है। अधिमान अंश पूंजी की लागत की गणना में निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जाता है–

(1) जब अधिमान अंश पूंजी शोधनीय हो एवं शोधन की अवधि व शोधन पर देय राशि की सूचना हो–

$$K_p = \frac{Cost of\ Preference Share Capital}{(After Tax)} = \frac{Dividend + \left(\frac{MV - NP}{n}\right)}{\frac{MV + NP}{2}} X 100$$

यहां

KP = अधिमान अंश पूंजी की लागत (Maturity Value)

MV = परिपक्वता पर देय राशि (Maturity Value)

n = परिपक्वता की अवधि (Number of years of maturity)

NP = प्राप्त शुद्ध राशि त (Net Proceeds)

(2) जब अधिमान अंशों के शोधन की अवधि अथवा शोधन पर देय राशि की सूचना न हो–

$$K_p = \frac{Cost of\ Preference Share Capital}{(After Tax)} = \frac{Dividend}{Net\ Proceeds} X 100$$

अधिमान अंश पूंजी की कर पश्चात लागत को निम्न सूत्र की सहायता से कर पूर्व लागत में परिवर्तित किया जाएगा –

$$\frac{Cost of\ Preference Share Capital}{(before Tax)} = Cost\ After Tax\ X\ \frac{1}{1 - Tax\ Rate}$$

illustraton :

ओलम्पिक लिमिटेड 100 रू. वाले 10 प्रतिशत 1,000 पूर्वाधिकार अंश निर्गमित करना चाहती है, जिनका शोधन 10 वर्ष श्चात् सममूल्य पर किया जाना है। पूंजी निर्गमन व्यय इस प्रकार है– अभिगोपन कमीशन 2 प्रतिशत, दलाली 1 प्रतिशत तथा छपाई इत्यादि 1,000 रू.।

पूंजी की लागत ज्ञात किजिए यदि अंशों का निर्गमन (i) सम मूल्य, (ii) 5 प्रतिशत बट्टे तथा (iii) 10 प्रतिशत प्रब्याजि पर किया जाये। यदि लाभों पर निगम कर की दर 35 प्रतिशत हो तो पूंजी की लागत पर क्या प्रभाव पड़ेगा ध

Olympic Lmited wants to issue 1,000 10 % Preference shares of Rs. 100 each, redeemable after 10 years at par. The expenses of capital issue are : Underwiting Commisson 2%, Brokerage 1% and Printing etc. Rs. 1,000.

Calcuate cost of capita if the shares are issued at (i) par, (ii) 5% discount, and (iii) 10% premium. What will be the effect on cost of capital if corporate tax rate is 35% ?

solution :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(i) Shares issued at par

Net Proceeds = Face Vaue - Issue Expenses

= 100 - 4 = 96

$$K_p\ After\ Tax = = \frac{D + \left(\frac{MV - NP}{n}\right)}{\frac{MV + NP}{2}} X100$$

$$= \frac{10 + 0.40}{98} X100 = 10.612\%$$

$$K_p(before\ Tax) = \frac{CP(after tax)}{(1 - TaxRate)} = \frac{10.612\%}{1 - 0.35} = 16.327\% +$$

(ii) Shares issued at 5% discount

Net Proceeds = Face Value - Discount - Issue Expenses

= 100-5-4 = Rs. 91

$$K_p\ After\ Tax = = \frac{10 + \left(\frac{100 - 91}{10}\right)}{\frac{100 + 91}{2}} X100$$

$$= \frac{10 + 0.90}{95.5} X100 = 11.414\%$$

$$K_p(before\ Tax) = \frac{11.414}{(1 - 0.35)} = 17.56\%$$

(iii) Shares issued at 10% Premium

Net Proceeds = Face Value + Premium - Issue Expenses

= 100 + 10 - 4 = 106

$$K_p\ After\ Tax = \frac{10 + \left(\frac{100 - 106}{10}\right)}{\frac{100 + 106}{2}} X100$$

$$= \frac{10 - 0.60}{103} X100 = 9.126\%$$

$$K_p(before\ Tax) = \frac{9.126\%}{1 - 0.35} = 14.04\% +$$

Working Note :

Issue expenses per share:	Rs.	
Underwriting Commission 2% on 100		2.00
Brokerage 1% on Rs. 100	1.00	
Printing etc. Rs. 1,000 on 1,000 shares	1.00	
Total		4.00

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

समता अंश पूंजी की लागत
(Cost of Equty Share Capital)

समता अंश पूंजी पर लाभांश की दर पूर्व निर्धारित नहीं होती तथा कम्पनी के लिए इस पूंजी पर लाभांश चुकाना अनिवार्य भी नहीं है, फिर भी समता अंश पूंजी को लागत रहित नहीं माना जाता। वास्तव में समता अंश पूंजी का धारक कम्पनी से कुछ न कुछ प्रत्याय की आशा रखता है। यही आशान्वित प्रत्याय ही समता अंश पूंजी की लागत कहलाती है। इसकी गणना हेतु निम्न विधियों का प्रयोग किया जाता है–

1. लाभांश प्राप्ति विधि (Dividend Yield Method) – इस विधि को लाभांश मूल्य अनुपात विधि (Dividednd Price Ratio Method) के नाम से भी जाना जाता है। इस विधि की मान्यता है कि कोई भी विनियोक्ता जो अपनी बचत को कम्पनी के समता अंशों में विनियोग करता है तो वह कम से कम बाजार में प्रचलित प्रत्याय दर से लाभांश प्राप्ति की आशा करता है। अतः समता अंश पूंजी की लागत ज्ञात करने के लिये प्राप्त लाभांश को अंश के बाजार मूल्य से पूंजीकृत किया जाता है। प्रति अंश प्राप्त लाभांश की गणना विद्यमान कम्पनी की दशा में गत वर्षों में चुकाये गये औसत लाभांश में भावी परिवर्तनों का समायोजन करके की जाती है, जबकि नई कम्पनी की दशा में समान व्यापारिक गतिविधियों में संलग्न कम्पनियों के औसत लाभांश के आधार पर की जाती है। प्रति अंश बाजार मूल्य की गण्ना स्कन्ध बाजार में सूचीबद्ध कम्पनी की दशा में गणना की तिथि को मूल्य या औसत बाजार मूल्य लिया जा सकता है, जबकि असूचिबद्ध कम्पनी की दशा में अंशों का शुद्ध सम्पत्ति विधि अथवा अर्जित आय के आधार पर मूल्य या वसूली मूल्य लिया जा सकता है।

इस विधि के अनुसार समता पूंजी की लागत ज्ञात करने का सूत्र निम्नानुसार है :

$$\text{समता अंश पूंजी की लागत (कर पश्चात्) वत ज्ञम त्र} \quad \frac{\text{प्रति अंश लाभांश}}{\text{प्रति अंश बाजार मूल्य}} \times 100$$

उदाहरणार्थ, यदि अंश का सम मूल्य 10 रू. प्रति अंश तथा बाजार मूल्य 18 रू. प्रति अंश है एवं कम्पनी ने 45 प्रतिशत लाभांश चुकाया हो, तो समता अंश पूंजी की लागत निम्न प्रकार निकाली जायेगी–

$$\frac{Dividend\ Per\ Share}{Market\,\text{Pr}\,icePerShare} X100$$

$$\text{Cost of Equity Capital (After tax)} = Divdend\ per\ share = \frac{45}{100} X10 = Rs.4.50$$

$$Cost\ of\ Equty\,Capital = \frac{4.50}{18} X100 = 2.5\%$$

सीमाएँ– इस विधि की कुछ सीमाएँ निम्न प्रकार है –

(i) इसमें प्रतिधारित अर्जनों के कारण लाभांश में हुई वृद्धि की उपेक्षा की जाती है।
(ii) प्रतिधारित अर्जनों के कारण अंशों के बाजार मूल्य में वृद्धि होती है, जिससे अंशों के विक्रय पर पूंजीगत लाभ उत्पन्न होता है, जि इस विधि में लाभांश का परिणाम माना जाता है जो कि उचित नहीं हैं।
(iii) यह विधि स्थिर आय वाली कम्पनी के लिये ही उपयुक्त है, क्योंकि इसमें लाभांश में भविष्य में होने वाली वृद्धि का ध्यान नहीं रखा जाता हैं।
(iv) असूचीबद्ध अंशों के बाजार मूल्य का निर्धारण एक कठिन कार्य हैं।

(2) अर्जन प्राप्ति विधि (Earning Yield Method) – इस विधि को आय–मूल्य अनुपात विधि (Earning Price Ratio Method) भी कहते हैं। यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि अर्जित आय में से समस्त व्ययों एवं अधिमान अंश लाभांश घटाने के पश्चात् शेष आय पर समता अंशधारियों का अधिकार होता है चाहे उसे लाभांश के रूप में पूर्णतया बांटा जाय अथवा नहीं। इस विधि में प्रति अंश अर्जन एवं अंश के बाजार मूल्य का अनुपात निकाला जाता है। यही अनुपात पूंजी की लागत होता है। प्रति अंश अर्जन की गणना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विद्यमान कम्पनी की दशा में कुछ वर्षों के औसत के आधार पर की जा सकती है जबकि नई कम्पनी की स्थिति में समान व्यशपारिक गतिविधियों में संलग्न कम्पनियों के अर्जनों के आधार पर की जा सकती है। इस विधि के अनुसार समता पूंजी की लागत ज्ञात करने का सूत्र निम्नानुसार है :

Cost of Equity Capital (After Tax) or $K_e \frac{Earings\ Per\ Share}{Market\ Price Per Share} = 100$

उदाहरणार्थ, एक कम्पनी ने एक रू. वाले 10 लाख पूर्ण प्रदत्त समता अंश जारी रखे है। इन अंशों का वर्तमान बाजार मूल्य 2.50 रू. प्रति अंश है। यदि कम्पनी ने कर एवं पूर्वाधिकार लाभांश के पश्चात् 2 लाख रू. का लाभ कमाया हो तो समता अंश पूंजी की लागत निम्न प्रकार निकाली जायेगी–

$$\text{Cost of Equity Capita (After Tax)} = \frac{.20}{2.50} X 100 = 8\%$$

$$\text{Earning Per Share} = \frac{2,00,000}{10,00,000} = 0.20$$

सीमाएं – इस विधि की सीमाएं निम्नानुसार है –

(1) अंशों पर अर्जन की राशि ज्ञात करना कठिन है, क्योंकि अर्जन की समस्त राशि अंशधारियों को वितरित नहीं की जाती है।

(2) प्रति अंश अर्जन एवं बाजार मूल्य सदैव एक समान नहीं रहते हैं।

(3) अंशों के बाजार मूल्य में परिवर्तित केवल संस्था की अर्जन शक्ति के कारण नहीं होता बल्कि उसके अन्य कारण भी होते है, अतः सिद्धान्त का आधार ही गलत हो जाता हैं।

3. लाभांश प्राप्ति तथा लाभांश में वृद्धि विधि (Dividend Yield Plus Growth in Divdend Method) –लाभांश प्राप्ति विधि में समता अंश पूंजी की लागत ज्ञात करते समय लाभांश की दर को स्थिर मान लिया जाता है जबकि यह वास्तव में स्थिर नहीं रहती। जब कम्पनी यह अनुमान लगाती है कि वर्तमान लाभांश दर में अगले कई वर्षों तक निरन्तर वृद्धि होती रहेगी तो लागत की गणना करते समय लाभांश में इस वृद्धि का समायोजन किया जाता है। लाभांश में वृद्धि की दर प्रति अंश अर्जनों में वृद्धि की दर के बराबर मानी जाती है। अतः लाभांश प्राप्ति तथा लाभांश में वृद्धि विधि में वर्तमान लाभांश दर में कम्पनी की अर्जनों या लाभांश की सम्भावित भावी वृद्धि के आधार पर उचित समायोजन करके समता अंश पूंजी की लागत ज्ञात की जाती हैं सूत्र रूप में–

Cost of Equity Capital (After Tax) = Cost of Equity Capital (After Tax) =

$$\frac{Dividend\ Per\ Share}{Market\ Price Per Share} X 100 + Growth\ Rate\ in\ Dividend$$

उदाहरण के लिये यदि किसी कम्पनी के अंश का सम मूल्य 10 रू. प्रति अंश तथाा बाजार मूल्य 18 रू. प्रति अंश है एवं कम्पनी ने 3.60 रू. प्रति अंश लाभांश चुकाया है। यदि लाभांश में 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि की सम्भावना हो तो पूंजी की लागत होगी –

$$\text{Cost of Equity Capital} = \frac{3.60}{18} X\ 100 + 5$$

$$K_e = 20 + 5 = 25\%$$

4. प्राप्त आय विधि (Realised Yield Method) – इस विधि के अनुसार समता पूंजी की लागत पिछले वर्षो में वास्तव में प्राप्त आय या लाभांश के आधार पर ज्ञात की जाती है। यह विधि इस मान्यता पर आधारित है कि कम्पनी में लाभांश एवं वृद्धि दर स्थिर है तथा अंशधारी उसी प्रत्याय दर की निरन्तर अपेक्षा करता है। यह विधि सरल है, किन्तु व्यवहार में नहीं ली जाती।

नये निर्गमित समता अंशों की लागत
(Cost of Newly Issued Equity Shares)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जब कोई कम्पनी नये समता अंश जारी करती है तो उसे नये निर्गमन पर अंश निर्गमन संबंधी व्यय वहन करने पड़ते है, परिणामस्वरूप वह अपने अंश का सम्पूर्ण बाजार मूल्य वसूल नहीं कर पाती है। प्रति अंश प्राप्त शुद्ध राशि की गणना करने के लिये सम्भावित बाजार मूल्य में से निर्गमन व्ययों (अभिगोपन कमीशन, दलाली, छपाई इत्यादि) को घटाया जाता है। समता अंश पूंजी की लागत ज्ञात करते समय प्राप्त शुद्ध राशि को ही काम लिया जाता है। नये निर्गमित समता अशों की लागत निम्न सूत्रों की सहायता से ज्ञात की जाती है :–

1. लाभांश प्राप्ति विधि

$$\text{Cost of Equity Capital (After tax)} = \frac{Dividend\ per\ Share}{Net\ \text{Pr}oceeds} X\,100$$

2. अर्जन प्राप्ति विधि

$$\text{Cost of Equity Capital (After tax)} = \frac{Earning\ per\ Share}{Net\ \text{Pr}oceeds} X\,100$$

3. लाभांश प्राप्ति तथा लाभांश में वृद्धि विधि

$$\text{Cost of equity Capital (After Tax)} = \frac{DividendperShare}{Net\ \text{Pr}oceeds} X\,100$$

उदाहरण के लिए, एक कम्पनी 10 रू. मूल्य के एक लाख समता अंश 16 रू. प्रति अंश की दर पर निर्गमित करती है। निर्गमन व्यय प्रति अंश एक रू. है। कम्पनी द्वारा इस वर्ष 3 रू. प्रति अंश लाभांश दिये जाने की सम्भावना होने पर समता अंश पूंजी की लागत होगी–

$$\text{Cost of Equity Capital} = \frac{3}{16-1} X100$$

$$K_e = \frac{3}{15} X\,100 = 20\%$$

illustration :

जग्रवाल लिमिटेड ने 10 रू. वाले 1,00,000 पूर्ण प्रदाता समता अंश निर्गमित किये है। कम्पनी ने 3,00,000 रू. का कर पश्चात! लाभ कमाया है। इन अंशों पर 2 रू. प्रति अंश लाभांश का भुगतान किया गया है। अंशों का बाजार मूल्य 25 रू. प्रति अंश है। लाभांश प्राप्ति विधि तथा अर्जन प्राप्ति विधि का प्रयोग करते हुए समता अंश पूंजी की लागत की गणना कीजिये।

Jagrawal Ltd. was issued 1,00,000 equity shares of Rs. 10 each as fully paid. The company has earned a profit of Rs. 3,00,000 after tax. On these shares dividend has been paid at the rate of Rs. 2 per share. Find out the cost of equity capita using Dividend Yield Method and Earning Yield Method. The market value of more is Rs. 25/- per share.

Solution :

(i) Dividend Yield Method

$$\text{Cost of Equity Capital or } K_e = \frac{DividendperShare}{Market\ \text{Pr}icePerShare} X\,100$$

$$= \frac{2}{25} X\,100 = 8\%$$

(ii) Earning Yield Method

$$\text{Cost of Equity Capita or } K_e = \frac{EarningperShare}{Market\ \text{Pr}ice\ perShare} X\,100$$

$$= \frac{3}{25} X\,100 = 12\%$$

$$\text{where Earning per share} = \frac{3,00,00}{1,00,000} = 3$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

illustration :

रुबीना लिमिटेड नयी समता पूंजी के निर्गमन द्वारा वित्त प्राप्ति पर विचार कर रही है। कम्पनी ने गत वर्षों में निम्न दर से लाभांश भुगतान किया है–

वर्ष	2006	2007	2008	2009
प्रति अंश लाभांश रू.	1.00	1.10	1.21	1.33

कम्पनी के अंश का वर्तमान बाजार मूल्य 19 रू. हैं कम्पनी द्वारा अगले वर्ष 1.50 रू. प्रति अंश लाभांश दिये जाने की ससम्भावना है। निर्गमन व्यय प्रति अंश एक रू. है। नये निर्गमन की लागत ज्ञात किजिये

Rubeena Limited is thinking of rasing funds by the issuance of equity capitaall. The company has pad dividend is past years as follows :

Year	2006	2007	2008	2009
Dividend per Share Rs.	1.00	1.10	1.21	1.33

The curent market price of the company's share is Rs. 19. The company is expected to pay a dvidend of Rs. 1.50 per share next year. The floatation cost per share is Rs. 1. Calculate the cost of new issue.

Solution :

वर्ष 2006 से 2009 तक रुबीना लिमिटेड द्वारा चुकाये गये लाभांश दर का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इसमें प्रतिवर्ष 10 प्रतिशत की वृद्धि होती जा रही है। अतः भविष्य में भी लाभांश वृद्धि की दर 10 प्रतिशत मानते हुए पूंजी की लागत की गणना लाभांश प्राप्ति तथा लाभांश में वृद्धि दर विधि से की जायेगी–

Cost of Equity Capital

$$K_e = \frac{Dividendpershar}{Net\ \text{Pr}oceeds} X 100 + GrowthinDividend$$

$$where,\ \ Net\ \text{Pr}oceeds = Market\ \text{Pr}ice\ PerShare - Issue\ Expenses$$

$$= Rs.19 - Rs.1 = Rs.18$$

$$K_e = \frac{1.50}{18} X 100 + 10\% = 8.33 + 10 = 18.33\%$$

illustraton :

चोयल लिमिटेड का अंश वर्तमान में 25 रू. पर उद्धत किया गया है। कम्पनी दो रूपया प्रति अंश लाभांश चुकाती है तथा विनियोजक 6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि की अपेक्षा करते है। गणना कीजिये –

(अ) कम्पनी की समता पूंजी की लागत,

(ब) यदि प्रत्याशित वृद्धि दर 5 प्रतिशत वार्षिक हो तो निर्देशित प्रति अंश बाजार मूल्य की गणना कीजिये।

(स) यदि कम्पनी की पूंजी लागत 10 प्रतिशत हो तथा प्रत्याशित वृद्धि दर 4 प्रतिशत वार्षिक हो तो निर्देशित बाजार मूल्य की गणना कीजिये, यदि लाभांश दो रूपया प्रति अंश कायम रखा जाये।

The share of Choyal Limited is quoted in the market at Rs. 25 currently. The company pays a dividend of Rs. 2 per share and the investor expects a growth rate fo 6% per year. Compute

(a) the company's cost of capital.

(b) if the anticpated growth rate is 5% p.a., calcullate the indicaed market price per share.

(c) if the company's cost of capital s 10% and the antcipated growth rate is 4% calculate the indicated market price if the dividend of Rs. 2 per share is to be maintained.

Solution :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$(a)\quad K_c = \frac{DPS}{MP} X\,100 + G = \frac{2}{25} X 100 + 6 = 14\%$$

$$(b)\ Given = G = 5\%; DPS = \text{Re}.2' Ce = 14\%$$

$$K_c = \frac{DPS}{MP} + G$$

$$14\% = \frac{\text{Re}.2}{MP} + 5\%$$

$$\frac{2}{MP} = 14\% - 5\% = 9\%$$

$$\therefore\ MP = \frac{2}{9\%} or\ Rs.22.22$$

$$(c)\quad K_c = \frac{DPS}{MP} + G$$

$$10\% = \frac{2}{MP} + 4\%$$

$$\frac{2}{MP} = 10\% - 4\% = 6\%$$

$$MP = \frac{2}{6\%} or\ Rs.33.33$$

प्रतिधारित अर्जनों की लागत
(Cost of Retainned Earnings)

व्यवहार में प्रत्येक कम्पनी अपने समस्त कर पश्चात् लाभों का विवरण लाभांश के रूप में न करके, उनका कुछ भाग भविष्य हेतु व्यवसाय में रोक लेती है। वर्ष प्रतिवर्ष इस प्रकार रोकी गई राशि से कम्पनी में पर्याप्त आन्तरकि कोषों का निर्माण हो जाता है, जिनकी कोई प्रत्यक्ष लागत नहीं चुकानी पड़ती, बल्कि अवसर लागत होती है। वेस्स्टन एवं ब्रिघम के शब्दों में,"प्रतिधारित अर्जनों की लागत या प्रत्याय जिसे कि प्रतिधारित आय पर आधारित विनियोगों पर उपार्जित किया जाना आवश्यक है, प्रत्याय की उस दर के बराबर होती है जो कि विनियोजक अपनी अंश पूंजी पर प्राप्त करने की आशा रखता है।" अतः अंशधारी प्रतिधारित अर्जनों पर उतनी आय की आशा रखता है जितनी उसे इसके प्राप्त होने पर वैकल्पिक विनियोजन से प्राप्त होने वाली आय से वंचित रहना पड़ता है। यह वंचित या त्यागी गई आय ही प्रतिधारित अर्जनों की लागत है। किन्तु इसमें निम्नलिखित समायोजन करने होंगे –

1. आयकर हेतु समायोजन – प्रत्येक अंशधारी को लाभांश के रूप में प्राप्त आय पर आयकर देना होता है, जिससे उसके द्वारा विनियोजित की जाने वाली राशि आयकर की राशि से कम हो जाएकी, अतः शेष राशि के वैकल्पिक विनियोजन से होने वाली आय ही प्रतिधारित अर्जनों की लागत होगी। कम्पनी के विभिन्न अंशधारियों की आय की सीमा भिन्न–भिन्न होने के कारण सभी के लिये अनुमानित औसत व्यक्तिगत आयकर दायित्व मानकर ही लागत का अनुमान लगाया जाता हैं।

2. पूंजी लाभ पर कर हेतु समायोजन– लाभांश वितरण के परिणामस्वरूप अंशधारी द्वारा पूर्वाधारित अंशों के बाजार मूल्य में वृद्धि हेा जाती है, जिससे अंशधारी को पूंजी लाभ होगा और उसे पूंजी लाभ कर देना होगा। अतः इसे अंश के बाजार मूल्य में से घटाकर ही पूंजी की लागत ज्ञात की जाएगी।

3. कमीशन, दलाली आदि हेतु समायोजन – लाभांश के विनियोजन पर अंशधारी को कमीशन, दलाली आदि के रूप में व्यय करना पड़ता है, अतः इस हेतु भी समायोजन किया जाता है।

प्रतिधारित अर्जनों की लागत की गणना हेतु निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता हैं –

Cost of Retained Earnings or

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$K_r = \frac{D(1-T_p)(1-B)}{MP(1-T_c)} x100$$

$$= \frac{E(1-T_p)(1-B)}{MP(1-T_c)} x100$$

$$= \left[\frac{D}{MP} x100 + G\right] x(1-T_p)(1-B)$$

$$= CostofEquityCapital(1-T_p)(1-B)$$

जबकि $k_r = \text{cost of retative of earnings}$

D or E = अंशधारियों की प्रति अंश अपेक्षित लाभांश या अर्जन दर (Sharehoder's expected rate of dividend or earning per share)

Tp = अंशधारियों की व्यक्तिगत आय पर आयकर दर (Income-tax rate on personal income of shareholders)

Tc = पूंजी लाभ पर आय की दर (Income tax Rate on Capital Gain) B= विनियोजन पर देय कमीशन, दलाल (Commission & Brokerage Cost on Investment)

MP = प्रति अंश बाजार मूल्य (Market Price per Share)

G = लाभांश वृद्धि दर (Growth rate in dividend)

illustration :

निम्न सूचना से प्रतिधारित अर्जनों की लागत ज्ञात किजिए :

Find out the cost of retained earnings from the following information :

Dividend per share	Rs. 9.00
Personal income-tax rate	30%
Personal capital gan tax rate	20%
Market Price per share	Rs. 100

Soluton :

$$K_r = \frac{D(1-T_{i)}}{MP(1-T_c)} x100$$

$$= \frac{Rs.9(1-0.30)}{Rs.100(1-0.2)} x100 = \frac{6.30x100}{80} = 7.875\%$$

illustation :

निम्न समंकों से प्रतिधारित अर्जनों की लागत ज्ञात किजिये :

Find out cost of retained earnings from the following data :

Dividend per share Rs.	Rs. 15
Personal income tax raste	30%
Market price per share Rs.	Rs. 110
Brokerage on investment of divided	1%

Solution :

$$K_r = \frac{D(1-T_i)(1-B)}{MP} X100$$

$$= \frac{Rs.15x(1-0.30)(1-0.01)}{Rs.110} X100 = \frac{15X0.70X0.99X100}{Rs.110} = 9.45\%$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पूँजी की भारित औसत लागत
(Weighted Average Cost of Capital)

वित्त के विभिन्न स्त्रोतों की विशिष्ट पूँजी लागत ज्ञात करने के पश्चात् उनकी सम्पूर्ण पूँजी लागत की गणना की जाती है, क्योंकि किसी परियोजना की लाभदायकता की जांच में विनियोजन की प्रत्याशित प्रत्याय दर की तुलना किसी विशेष साधन की पूंजी लागत से न करके संस्था की सम्पूर्ण पूंजी लागत से की जाती है। सम्पूर्ण पूंजी लागत वित्त के विभिन्न स्त्रोतों की भारांकित औसत पूंजी लागत है। संस्था की पूंजी संरचना में सभी स्त्रोतों का हिस्सा एक समान नहीं होता है, अतः साधारण औसत के स्थान पर भारित औसत का उपयोग किया जाता है। पूंजी की भारित औसत लागत की गणना के लिए निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाई जाती है –

1. सर्वप्रथम सम्पूर्ण पूंजी की राशि के योग को एक मानते हुए उसके अनुपात में विभिन्न स्त्रोतों को भार (weight) दिया जाता है। भार देने हेतु पूंजी के पुस्तक मूल्य (Book Value) अथवा बाजार मूल्य (Market value) में से किसी एक का प्रयोग किया जा सकता है। किसी संस्था की कुल पूंजी संरचना में पूंजी के विभिन्न स्त्रोतों का सापेक्षिक अनुपात यदि पुस्तक मूल्य के आधार पर देखा जाए तो वह पुस्तक मूल्य भार तथा यदि प्रत्येक स्त्रोत के बाजार मूल्य के आधार पर देखा जाए तो वह बाजार मूल्य भार कहलाता है। व्यवहार में पुस्तक मूल्य भारों का प्रयोग अधिक किया जाता है क्योंकि (i) पुस्तक मूल्य प्रकाशित लेखों से आसानी से उपलब्ध हो जाता है, (ii) पूंजी संरचना के लक्ष्य सामान्यतया पुस्तक मूल्य के आधार पर ही तय किये जाते है, (iii) बाजार मूल्य के आधार पर भार देना विशेषकर प्रतिधारित अर्जनों की स्थिति में असुविधाजनक है, (iv) बाजार मूल्य में निरन्तर उच्चावचन होते रहते है] (v) सामान्यतया पुस्तक मूल्य के आधार पर ऋण समता अनुमान से ही जोखिम का मूल्यांकन किया जाता है।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से बाजार मूल्य के आधार पर दिये गये भार अधिक उपयुक्त माने जाते है क्योंकि (i) पूंजी के प्रत्येक घटक की लागत बाजार मूल्य के अनुसार ज्ञात की जाती है, (ii) प्रतिभूतियों से प्राप्त होने वाली वास्तविक राशि एवं बाजार मल्य में निकटता होती है, (iii) बाजार मूल्य से विनियोजकों की आकांक्षाएं स्पष्ट रूप से झलकती हैं। प्रतिधारित अर्जनों का बाजार मूल्य ज्ञात करते समय उनको समता पूंजी ही माना जाता है तथा समता अंशों का कुल बाजार मूल्य, समता अंश पूंजी एवं प्रतिधारित अर्जनों में उनके कुल मूल्य के अनुपात में बांट दिया जाता है। उदाहरण के लिये यदि किसी कम्पनी की पूंजी संरचना में 10 रू. के एक लाख समता अंश तथा 6,00,000 रू. प्रतिधारित अर्जनें हैं। कम्पनी के समता अंश का बाजार मूल्य 20 रू. प्रति अंश हो तो समता अंशों का कुल बाजार मूल्य 20 लाख रू. (1 लाख ग 20 रू.) होगा, जिसे समता अंश पूंजी एवं प्रतिधारित अर्जनों में निम्न प्रकार बांटा जायेगा –

समता अंश पूंजी का बाजार मूल्य त्र $\frac{10,00,000}{16,00,000} X\ 20,00,000 = 12,50,000$ रू.

प्रतिधारित अर्जनों का बाजार मूल्य त्र $\frac{6,00,000}{16,00,000}\ X\ 20,00,000 = 7,50,000$ रू.

2. पूंजी के विभिन्न स्त्रोतों को भार प्रदान करने के पश्चात् प्रत्येक साधन की विशिष्ट कर पश्चात् पूंजी लागत ज्ञात करनी होगी। विशिष्ट पूंजी लागत की गणना विधि पहले समझाई जा चुकी है।

3. प्रत्येक साधन की विशिष्ट कर पश्चात् लागत को उसके भार से गुणा करके उसकी भारित लागत ज्ञात की जाती है। सभी साधनोंकी भारित लागतों का योग उस संस्था की पूंजी की भारित औसत लागत कहलाती है। पूंजी की भारित औसत लागत ज्ञात करने के लिये निम्न सूत्र प्रयोग किया जाता हैं –

Weighted Average Cost of Capital or $K_w = \frac{\sum WX}{\sum W}$

यहां KW = Weighted Average Cost of Capital

X = पूंजी के विभिन्न स्त्रोतों की लागता।

W = पूंजी के विशिष्ट स्त्रोत को दिया गया भार।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Illustraton :

एक कम्पनी की पूंजी संरचना तथा विशिष्ट साधनों से प्राप्त पूंजी की कर–पश्चात् लागत अग्र प्रकार है :

The capital structure and after-tax cost of capital of the specific source of a company is as follows :

Source	Amount (Rs.)	Cost of Capital
Debt	3,00,000	4.77%
Preference Capital	2,00,000	10.53%
Equity Capital	4,00,000	14.59%
Retained Earnings	1,00,000	14.00%
	10,00,000	

पूंजी की भारित औसत लागत की गणना कीजिए।
Calculate the Weighted Average Cost of Capital.

Solution :

Source (1)	Amount Rs. (2)	Weight (3)	After Tax Cost (4)	Weighted Cost (5)=(3)X(4)
Debt	3,00,000	.3	4.77%	1.431
Preference Capital	2,00,000	.2	10.53%	2.106
Equity Capital	4,00,000	.4	14.59%	5.836
Retained Earnings	1,00,000	.1	14.00%	1.400
Weighted Average Cost of Capital				10.773%

वैकल्पिक हल

Computation of Weighted Average Cost of Capital

Source (1)	Amount Rs. (W) (2)	After Tax Cost (Rate) (X) (3)	After Tax Cost (Amount) (WX) (4) = (2) X (3)
Debt	3,00,000	.0477	14,310
Preference Captal	2,00,000	.1503	21,060
Equity Capital	4,00,000	.1459	58,360
Retained Earnings	1,00,000	.1400	14,000
Total	10,00,000		1,07,730

Weighted Average Cost of Capital or $K_w = \frac{\sum WX}{\sum W} x100$

$$= \frac{1,07,730}{10,00,000} x100 = 10.773\%$$

illustration :

रंजना लिमिटेड की पूंजी संरचना निम्न प्रकार है –

The capital structure of Ranjana Limited is as follows :	Rs.
Equty Shares (Rs. 10 each)	20,00,000
	10,00,000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Retaned Earnings 9% Preference Shares (Rs. 100 each) 12% Debenture (Rs. 100 each)	5,00,000 15,00,000 50,00,00

कम्पनी का समता अंश बाजार में 30 रू. पर बिकता है। कम्पनी द्वारा इस वर्ष 3 रू. प्रति अंश लाभांश दिये जाने की आशा है। निगम कर की दर 35 प्रतिशत है। अंशधारियों की व्यक्तिगत आयकर दर 30 प्रतिशत मानिये। कम्पनी की विद्यमान पूंजी संरचना की भारयुक्त औसत लागत ज्ञात कीजिये।

The equity shares of the Company sales for Rs. 30. It is expected that company will pay dividend of Rs. 3 per share this year. Corporate tax rate s 35% Assume 30% as ncome tax rate of individual shareholder. Compute a weighted average cost of capital of existing capital structure.

solution :

(i) Cost of Equity Capital :

$$K_e(aftertax) = \frac{DPS}{MP} x100 = \frac{3}{30} x100 = 10\%$$

(ii) Cost of Retained Earnngs :

$$K_r(aftertax) = \frac{D(1-Tp)}{MP} x100 = \frac{3(1-30)}{30} x100 = 0.07x100 = 7\%$$

(iii) Cost of Pref. Share Capital :

$$K_p(aftertax) = \frac{DPS}{MP} x100 = \frac{9}{100} x100 = 9\%$$

(iv) Cost of Debentures Capital :

$$K_e(aftertax) = \frac{1}{NP} x100(1-T) = \frac{12}{100} x100(1-0.35) = 12X\,0.65 = 7.8\%$$

Computation of Weightted Average Cost of Capital

Source	Amount Rs.	After Tax Cost	Weight	Weighted Cost
Equty Capital	20,00,000	.4	10.0%	4.0%
Retained Earnings	10,00,000	.2	7.0%	1.4%
Pref. Share Capital	5,00,000	.1	9.0%	0.9%
Debentures	15,00,00	.3	7.8%	2.34%
Total	50,00,000	1.0		8.64%

llustration :

राजस्थान लिमिटेड की पूंजी संरचना निम्न प्रकार है –

Rajasthan Limited has the following capital structure : Rs.

Equity Shaare Capital (2,00,000 shares) 7% Preference Shares 8%Debentures	20,00,000 10,00,000 20,00,000 50,00,000

कम्पनी के समता अंश का बाजार मूल्य 20 रू. है। यह आशा की जाती है कि कम्पनी 2 रू. प्रति अंश लाभांश का भुगतान करेगी, जिसमें हमेशा 5 प्रतिशत की वृद्धि होती रहेगी। कर की दर 35 प्रतिशत मानी जा सकती है। आपको निम्न की गणना करनी है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(अ) वर्तमान पूंजी संरचना के आधार पर पूंजी की भारित औसत लागत।

(ब) पूंजी की नई भारित औसत लागत यदि कम्पनी 10 प्रतिशत ऋण पत्रों के निर्गमन द्वारा 30,00,000 रू. का अतिरिक्त ऋण जारी करती है। इसके परिणामस्वरूप प्रतयाशित लाभांश 3 रू. हो जायेगा तथा लाभांश में वृद्धि की दर अपरिवर्तित रहेगी, परन्तु अंश का बाजार मूल्य गिरकर 15 रू. प्रति अंश हो जयेगा।

The market price of the company's equity share is Rs. 20, It is expected that compan wil pay a current dividend of Rs. 2 per share which will grow at 5 percent for ever. The tax rate may be presumed at 35 per cent. You are required to compute the following :

(a) A weighted average cost of capital based on existing capital structure.

(b) The new weighted average xost of capital if the comapny raises an additional Ras. 30,00,000 debt by issuing 10 per centdebentures. This would result in increasing the expected dividend to Rs. 3 and leav the growth rate unchanged but the market price of share will fall to Rs. 15 per share.

solution : (a) Statement Showing Weighted Average Cost of Capital

Source	Amount Rs.	After Tax Cost	Weight	Weighted Cost
Equty Sharee Capital	20,00,000	.15	.4	.0600
Preference Share Capta	10,00,000	.07	.2	.0140
Debentures	20,00,000	.052	.4	.0208
Weighted Average Cost of Capital			0.0948 or 9.48%	

(i) The Cost of Equity Share i.e.

$$K_e = \frac{DPS}{MP} x100 + G = \frac{2}{20} x100 + 5\% = 10\% + 5\% = 15\% or .15$$

$$K_d\,(aftertax) = Kd\,(beforetax)\,X\,(1-T)$$

= 8% X (1-0.35) = 8% X 0.65 = 5.2% = .052

(b) Statement Showing Weighted Average Cost of Cappital

Source	Amount Rs.	After Tax Cost	Weight	Weighted Cost
Equty Sharee Capital	20,00,000	.25	.250	.0625
7% Pref. Share Captal	10,00,000	.07	.125	.0068
8% Debentures	20,00,000	.052	.250	.0130
10% Debentures	30,00,00	.065	.375	.243
Weighted Average Cost of Capita			0.1086 or 10.86%	

(i) Cost of neew Debt (after tax) = Kd (before tax) X 1-Tax rate

= 10 X 1 - 0.35 = 6.5% or 0.65

(ii) $$K_e = \frac{DPS}{MP} x100 + G = \frac{Rs.3}{Rs.15} x100 + 5\% = 20\% + 5\% = 25\% or .25$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पूँजी संरचना
(Capital Structure)

किसी संस्था की सफलता एवं असफलता का प्राथमिक तत्त्व उसकी पूँजी की उपलब्धता एवं पूँजी प्राप्ति के स्रोत है। पूँजी प्राप्ति के स्रोतों में मुख्यतः आन्तरिक एवं बाह्य स्रोत हैं। संस्था की कुल पूँजी में मुख्यतः समता अंश, पूर्वाधिकार अंश, ऋण–पत्र एवं अन्य अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन ऋण प्रमुख हैं। समता अंशों पर लाभांश देना अनिवार्य नहीं है जबकि पूर्वाधिकार अंश, ऋण–पत्र एवं अन्य ऋणों पर ब्याज/लाभांश की अनिवार्यता है। अतः पूर्वाधिकार अंशधारियों एवं ऋण–पत्रधारियों को एक निश्चित आय होती है जबकि समता अंशधारियों को आय की अनिश्चितता रहती है।

पूँजी संरचना के अन्तर्गत मुख्य ।रूप से यह देखा जाता है कि पूँजी की प्राप्ति हेतु किन–किन प्रतिभूमियों का निर्गमन किया जाए? उनका आपस में क्या अनुपात हो? तथा उनकी मात्रा एवं मूल्य क्या हों?

पूँजी संरचना का अर्थ एवं परिभाषा
(Meaning and Definition of Capital Structure)

एक व्यावसायिक संस्था में पूँजीकरण की राशि का निर्धारण करने के बाद पूँजी संरचना का निर्धारिण करना आवश्यक होता है। पूँजी संरचना का अर्थ, पूँजीकरण राशि को, किन–किन प्रतिभूतियों द्वारा, किस–किस अनुपात में प्राप्त करने के निर्धारिण करने से होता है। पूँजी संरचना में पूँजी के विभिन्न साधनों का एक ऐसा अनुपात निर्धारित किया जाता है, जिससे वे कम्पनी को एक ऐसी विशिष्ट पूँजी–संरचना प्रदान करें जो कम्पनी की आवश्यकताओं को पूरा करने में पूर्ण रूप से सक्षम हो। पूँजी संरचना जिन प्रतिभूतियों द्वारा निर्धारित की जाती है उनमें प्रत्येक प्रतिभूति के अपने–अपने गुण एवं दोष होते हैं। किसी कम्पनी की पूँजी संरचना में किसी एक विशिष्ट प्रकार की प्रतिभूतियों का अधिक भाग होना आगे चलकर कम्पनी के लिए अधिक लाभदायक अथवा अधिक जोखिमपूर्ण हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि एक कम्पनी अपनी पूँजी संरचना में समता अंशों (Equilty Shares) का ही प्रयोग करे तथा ऋण पूँजी का प्रयोग नहीं करे तो ऐसी कम्पनी 'समता पर व्यापार' (Trading on Equity) के लाभ से वंचित रह जाएगी तथा ऐसी कम्पनी अपने अंशधारियों या स्वामियों के लिए अधिकतम लाभ–अर्जित करने के उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल नहीं होगी। इसके विपरीत एक कम्पनी अपनी पूँजी संरचना में समता अंशों को कम तथा ऋण पूँजी को अधिक महत्त्व देती है तथा कम्पनी की आय में अत्यधिक उतार–चढ़ाव आते हैं तो यह माना जाएगा कि इस प्रकार की कम्पनी अपने ऊपर बहुत अधिक जोखिम ले रही है। इस प्रकार की पूँजी संरचना को पूँजी का उच्च गीयरिंग कहते हैं। यह पूँजी–संरचना सम्पन्नता के वर्षों में समता अंशधारियों की आय को अत्यधिक बढ़ा देता है, परन्तु विपन्नता के वर्षों में यह न केवल समता अंशधारियों की आय को बहुत घटा देती है बल्कि यह कम्पनी के ऊपर बड़ी जोखिम उत्पन्न कर देती है, क्योंकि ऐसे वर्षों में कम्पनी पूर्वाधिकार अंशों तथा ऋण–पत्रों पर देय निश्चित भार को वहन करने में असमर्थ होती है। अतः कम्पनी की पूँजी संरचना का निर्धारिण अत्यधिक सोच–समझ कर करना चाहिए। किसी आदर्श पूँजी संरचना की कल्पना करना कठिन है, जिसे सभी कम्पनियों एवं व्यवसायों में समान रूप से लागू किया जा सके। अतः प्रत्येक व्यक्तिगत स्थिति में प्रत्येक कम्पनी के लिए उसकी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार पूँजी संरचना का निर्धारण करना चाहिए।

कुछ लेखक पूँजीकरण एवं पूँजी संरचना दोनों को एक ही अर्थ में प्रयुक्त करते हैं, जो गलत है। इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है। जहाँ पूँजीकरण का तात्पर्य संस्था के लिए आवश्यक पूँजी की मात्रा का निर्धारण करना होता है, वहाँ पूँजी–संरचना का तात्पर्य पूँजी के स्वरूप का निर्धारण करना होता है पूँजीकरण में यह निर्धारित किया जाता है कि संस्था के लिए कितनी पूँजी प्राप्त की जाय? पूँजी–संरचना में यह निर्धारित किया जाता है कि यह पूँजी की राशि किन–किन प्रतिभूतियों द्वारा किस अनुपात में प्राप्त की जाय?

गेस्टनबर्ग ने इन दोनों के भेद को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, " पूँजीकरण एक निगम की स्वामी पूँजी तथा ऋण पूँजी जो इसके दीर्घकालीन ऋण भार द्वारा व्यक्त होती है, के बराबर होती है। पूँजी–संरचना उन प्रतिभूतियों के प्रकार को व्यक्त करता है, जिनसे पूँजीकरण का निर्माण होता है।"[1]

साधारणतया पूँजीकरण एवं पूँजी–सरंचना कीक आवश्यकता (i) संस्था के संगठन के समय, या (ii) संस्था के विकास या अन्य कार्य के लिए अतिरिक्त पूँजी की आवश्कता के समय, या (iii) अन्य संस्था के साथ एकीकरण या विलीनीकरण के समय, या (iv) पुनः पूँजीकरण (Recapitalisation), पुनःसमायोजन (Re-adjustment) या पुनःसंगठन (Reorganisation) समय महसूस की जाती है। इन सभी परिस्थितियों के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वित्तीय प्रबन्धक के सामने दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं– प्रथम कितनी मात्रा में प्रतिभूतियों का निर्गमन किया जाये तथा किस प्रकार की प्रतिभूतियों का निर्गमन किया जाए? कितनी मात्रा में प्रतिभूतियों का निर्गमन किया जाए–का सम्बन्ध पूँजीकरण से होता है तथा किस प्रकार की प्रतिभूतियों का निर्गमन किया जाए–का सम्बन्ध पूँजी–संरचना से होता है।

वैस्टन एवं ब्राइघम के अनुसार, "पूँजी संरचना किसी फर्म का स्थायी वित्त प्रबन्धन होता है, जो दीर्घकालीन ऋणों, पूर्वाधिकारी अंशों तथा शुद्ध मूल्य से प्रदर्शित होता है।"[2]

आर.एच. वैरूल के अनुसार, "पूँजी संरचना का उपयोग प्रायः किसी व्यावसायिक संस्था में विनियोजित कोषों के दीर्घकालीन स्रोतों को दर्शाने के लिए किया जाता है।"

अतः पूँजी संरचना में प्रमुखतः विभिन्न प्रतिभूतियों के पारस्परिक अनुपात को निर्धारित किया जाता है अर्थात् यह निर्णय लिया जाता है कि कुल आवश्यक पूँजी का कितना भाग अंशों से तथा कितना भाग ऋण–पत्रों से एकत्रित किया जाए। अंश पूँजी में भी कितना भाग समता या साधारण अंशों से तथा कितना भाग पूर्वाधिकारी अंशों से एकत्रित किया जाए। पूर्वाधिकारी अंश तथा ऋण पूँजी कम्पनी की आय पर एक निश्चित भार उत्पन्न करते है, अतः यह स्थायी लागत वाली प्रतिभूतियाँ (Fixed cost bearing securities) कहलाती है। दूसरी तरफ साधारण अंशों पर लाभांश घोषित करना सदैव आवश्यक नहीं होता है तथा लाभांश कितना घोषित किया जाए यह लाभों पर तथा संचालकों की नीति पर निर्भर करता है। साधारण अंशों पर लाभांश कम या अधिक घोषित किया जा सकता है, अतः ये परिवर्तनशील लागत प्रतिभूतियाँ (Variable Cost Securities) कहलाती हैं। संस्था को उपर्युक्त दोनों ही प्रकार की प्रतिभूतियों के मध्य सन्तुलन स्थापित करना आवश्यक होता है, क्योंकि प्रतिभूति सन्तुलन (Security mix) का संस्था की दीर्घकालीन वित्तीय सुदृढ़ता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि कोई संस्था इस सन्तुलन को कायम नहीं रख पाती है तो वित्तीय ढाँचा असन्तुलित हो जाएगा जो संस्था के लिए हानिकारण हो सकता है।

वित्तीय संरचना, पूँजी संरचना तथा सम्पत्ति संरचना

(Financial Structure, Capital Structure and Assets Structure)

कुछ धारणाओं के प्रयोग में भ्रम को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि हम अत्यधिक प्रयुक्त धारणाओं के अर्थ को स्पष्ट रूप से समझ लें। इस सम्बन्ध में हम यहाँ वित्तीय संरचना, पूँजी संरचना तथा सम्पत्ति संरचना को स्पष्ट करना चाहेंगे।

वित्तीय संरचना (Financial Structure)- यह संरचना व्यक्त करती है कि संस्था ने अपनी सम्पत्तियों की वित्तीय व्यवस्था किस प्रकार की है, यह स्थिति विवरण के समस्त बायें हाथ के भाग का योग होता है। वित्तीय संरचना के अन्तर्गत व्यवसाय के समस्त दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन दायित्वों को सम्मिलित किया जाता है

वित्तीय संरचना = दीर्घकालीन कोष व चालू दायित्व

अथवा

पूँजी संरचना. चालू दायित्व

पूँजी संरचना (Capital Structure)- फर्म की स्थायी वित्तीय व्यवस्था पूँजी संरचना है जो सामान्यतया दीर्घकालीन ऋण, पूर्वाधिकार अंश एवं समता द्वारा व्यक्त होती है, जिसमें अल्पकालीन साख सम्मिलित नहीं होती है। समता में समता अंश पूँजी, आधिक्य तथा संचित धारित आय सम्मिलित होती है।"[2] इस अर्थ में पूँजी संरचना का तात्पर्य संस्था की स्थायी पूँजी से लगाया जाता है।

पूँजी सरंचना = दीर्घकालीन कोष

= सामान्य अंश पूँजी. पूर्वाधिकार अंश पूँजी

. संचय एवं कोष. दीर्घकालीन ऋण

एक संस्था की पूँजी संरचना को चाट 3.1 से देखा जा सकता है

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

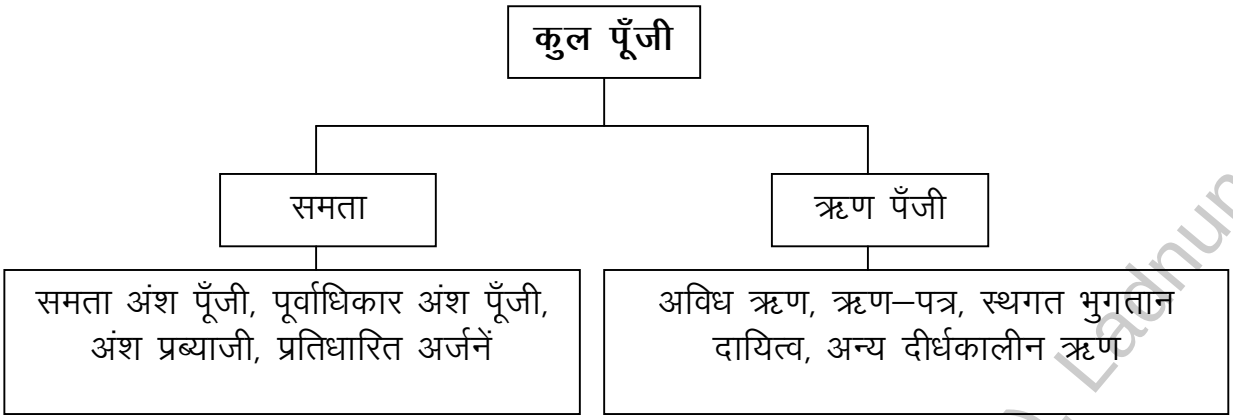

चार्ट : एक संस्था की कुल पूँजी संरचना

सम्पत्ति संरचना (Assets Structure) - इसका तात्पर्य संस्था की कुल सम्पत्तियों के योग से होता है। यह संस्था की स्थायी तथा चालू सम्पत्तियों का योग होता है।

सम्पत्ति संरचना = स्थायी सम्पत्तियाँ. चालू सम्पत्तियाँ
. अन्य सम्पत्तियाँ (यदि कोई हों)

पूँजी संरचना के प्रारूप
(Patterns of Capital Structure)

किसी नीवन कम्पनी में पूँजी संरचना का प्रारूप निम्नलिखित में से कोई एक हो सकता है–

(i) केवल समता अंशों युक्त पूँजी संरचना (Capital Structure with equity shares only,)

(ii) समता अंशों तथा पूर्वाधिकार अंशों, दोनों युक्त पूँजी संरचना (Capital structure with both equity and preference shares),

(iii) समता अंशों तथा ऋण–पत्रों युक्त पूँजी संरचना (Capital structure with equity shares and debentures),

(iv) समता अंशो, पूर्वाधिकार अंशों तथा ऋण–पत्रों युक्त पूँजी संरचना (Capital structure पूंजी equity shares, preference shares and debentures)

उपयुक्त पूँजी संरचना का चुनाव कम्पनी के व्यवसाय की प्रकृति, आय की निश्चितता एवं नियमितता, मुद्रा एवं पूँजी बाजार की स्थिति, विनियोक्ताओं के दृष्टिकोण जैसे अनेक तत्त्वों पर निभ्रर करता है। पूँजी संरचना संरचना को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का वर्णन इसी अध्याय में आगे किया गया है । यहाँ पर हम केवल एक बिन्दु पर बल देना चाहेंगे वह है ऋण एवं समता में अन्तर ऋण एक दायित्व होता है, जिस पर ब्याज चुकाना होता है, चाहे संस्था के लाभ की स्थिति कैसी भी हो, जबकि समता अंशधारी कम्पनी के स्वामी होते हैं जिनको लाभांश का भुगतान कम्पनी की लाभदायकता पर निर्भर करता है। कम्पनी की पूँजी संरचना में ऋण का ऊँचा अनुपात जोखिम को बढ़ाता है तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में कम्पनी को वित्तीय दिवालियापन की स्थिति में ले जा सकता है। ऋण द्वारा साधन प्राप्त करना अंशों के द्वारा साधन प्राप्त करने की तुलना में सस्ता ;बेमंचमतद्ध होता है, क्योंकि ऋण पर देय ब्याज कर की दृष्टि से व्यय माना जाता है तथा उसके लिए कर से छूट प्राप्त होती है। लाभांश कम्पनी में लाभों का समायोजन माना जाता है, अतः लाभांश भुगतना से कम्पनी को कर में कोई छूट प्राप्त नहीं होती है। इसका अर्थ यह है कि यदि कोइ कम्पनी अपने ऋण–पत्रों पर 10% ब्याज देती है तथा अपने लाभों पर 50ः निगम कर चुकाती है तो कम्पनी के लिए ऋण–पत्रों पर प्रभावी ब्याज दर केवल 5ः होती है। परन्तु कम्पनी यदि वित्त 10ः पूर्वाधिकार अंशों से प्राप्त करती है तो पूँजी की लागत 10ः होती है। इसलिए ऋण द्वारा वित्त प्राप्त करना सस्ता होता है तथा यह अंशधारियों के लिए, ऊँचे लाभों को सम्भव बनाता है। इसका परिणाम प्रति अंश अर्जन का बढ़ना होता है, जो वित्तीय प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यहाँ पर हम उदाहरणों की सहायता से कम्पनी की पूँजी संरचना में ऋण–समता के मिलान (Debt Equity Mix) में परिवर्तन के प्रति अंश अर्जन (EPS) पर पड़ने वाले प्रभावों को देख सकते हैं।

Illustration :

अजय लिमिटेड की प्रदत्त अंश पूँजी 2,00,000 रुपये है जो 10रु. मूल्य के समता अंशों में विभक्त है। कम्पनी एक विस्तार कार्य पर विचार कर रही है, जिसमें 1,00,000 रुपये का विनियोग आवश्यक है। कम्पनी प्रबन्ध इस राशि की व्यवस्था के लिए निम्न विकल्पों पर विचार कर रहा है–

(i) 10%ऋण–पत्र 1,00,000 रुपये मूल्य का निर्गमन।

(ii) 12% 10,000 पूर्वाधिकार अंश प्रत्येक का मूल्य 10 रुपये है, का निर्गमनं

(iii) 10,000 समता अंशों जिनमें प्रत्येक का अंकित मूल्य 10 रुपये है, का निर्गमन।

कम्पनी की वर्तमान आय ब्याज तथा कर पूर्व 80,000 रुपये है। निगम कर दी दर 30:है। आप उपरोक्त वित्त प्राप्ति की विधियों के प्रति अंश अर्जन या आय (EPS) पर प्रभाव बताइए यह मानते हुए कि–

(अ) ब्याज व कर पूर्व आय (EBIT) विस्तार कार्यक्रम के बाद भी स्थिर रहती है; तथा

(ब) ब्याज व कर पूर्व आय (EBIT) 20,000 रुपये से बढ़ जाती है।

Ajai Ltd. has paid up share capital of Rs. 20,000 divide into equity shares of Rs. 10 each. It has an expansion programme requiring an investment of another Rs. 1,00,000. The management is considering the following alternatives for raising this amount :

(i) Issue of 10% Debentures of Rs. 1,00,000.

(ii) Issue of 12% 10,000 Preference Shares of Rs 10 each.

(iii) Issue of 10,000 Equity Shares of Rs. 10 each.

The Company's earnings before interest and tax (EBIT) are Rs. 80,000 per annum. Corporate tax rate is 30%. You are required to calculate the effect of each of the above modes of financing on the earnings per share (EPS) presuming :

(a) EBIT continuous to be the same even after expansion.

(b) EBIT increases by Rs. 20,000.

Solution : (a) When EBIT is Rs. 80,000 p.a.

Present and Projected EPS

Particulars	Present Capital Structure	Proposed Capital Structure		
	All Equity	(i) (Equity +Debt)	(ii) (Equity + Pref.	(iii) (All Equity)
	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
EBIT	80,000	80,000	80,000	80,000
Less : Interest	--	10,000	--	--
PBT	80,000	70,000	80,000	80,000
Less : Tax @ 30%	24,000	21,000	24,000	24,000
PAT	56,000	49,000	56,000	56,000
Less : Preference Divided	--	--	12,000	--
Profit for Equity Shareholders	56,000	49,000	44,000	56,000
No. of Equity Shares'	20,000	20,000	20,000	30,000
EPS Rs.	2.80	2.45	2.20	1.87
Dilution against initial EPS of Rs. 2.80	--	(-) 0.35	(-) 0.60	(-) 0.93

टिप्पणी – उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि में न्यूनतम कमी उस समय होती है, जब अतिरिक्त समस्त राशि ऋण–पत्रों से प्राप्त की जाती है।

(b) When EBIT is Rs. 1,00,000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Present and Projected EPS

Details	Present Capital Structure All Equity Rs.	Proposed Capital Structure		
		(i) (Equity +Debt) Rs.	(ii) (Equity + Pref. Rs.	(iii) (All Equity) Rs.
EBIT	80,000	1,00,000	1,00,000	1,00,000
Less : Interest	--	10,000	--	--
PBT	80,000	90,000	1,00,000	1,00,000
Less : Tax @ 30%	24,000	27,000	30,000	30,000
PAT	56,000	63,000	70,000	70,000
Less : Preference Divided Profit	--	--	12,000	--
for Equity Shareholders	56,000	63,000	58,000	70,000
No. of Equity Shares'	20,000	20,000	20,000	30,000
EPS Rs.	2.80	3.15	2.90	2.33
Change in EPS as against initial of Rs. 2.80	--	+ 0.35	(+) 0.10	(-) 0.47

टिपण्णी– वर्तमान EPS 2.80 रुपये है, जो ऋण द्वारा विस्तार के लिए साधन प्राप्त करने पर बढ़कर 3.15 रुपये हो जाती है। अतः यह विकल्प सर्वोत्तम है।

Illustration :

राम एवं श्याम लिमिटेड की वर्तमान में 25 लाख रुपये की समता अंश पूँजी है, जो 100 रुपये मूल्य के 25,000 अंशों में विभक्त है।

कम्पनी का प्रबन्ध एक प्रमुख विस्तार कार्यक्रम की वित्त व्यवस्था हेतु 20 लाख रुपये सम्भावित चार वित्त योजनाओं में से किसी एक द्वारा प्राप्त करना चाहता है। ये योजनाएँ निम्न प्रकार हैं–

(i) सम्पूर्ण राशि समता अंशों द्वारा।

(ii) 10 लाख रुपये समता अंशों द्वारा तथा 10 लाख रुपये 8ः प्रति वर्ष ब्याज दर पर दीर्घकालीन ऋणों से।

(iii) 5 लाख रुपये समता अंशों से तथा 15 लाख रुपये 9ः प्रतिवर्ष ब्याज की दर पर दीर्घकालीन ऋणों से।

(iv) 10 लाख रुपये समता अंशों से तथा 10 लाख रुपये 5ः लाभांश युक्त पूर्वाधिकार अंशों से।

कम्पनी की सम्भावित ब्याज व कर पूर्व आय (EBIT) 8 लाख रुपये होगी। प्रतयेक विकल्प में प्रति अंश अर्जन (EPS) की गणना कीजिए (निगम कर की दर 30% मानते हुए) तथा इसके प्रभावों पर टिप्पणी कीजिए और सर्वोत्तम विकल्प बतलाइये।

Ram & Shyam Ltd., had currently an Ordinary Share Capital of Rs. 25 lakhs, consisting of 25,000 shares of Rs. 100 each.

The management is planning to raise another Rs. 20 lakhs to finance major programme of expansion through one of four possible financing plans. The plans are under

(i) Entirely through ordinary shares.

(ii) Rs. 10 lakhs through ordinary shares and Rs. 10 lakhs through long-term borrowing at 8 per cent interest per annum.

(iii) Rs. 5 lakhs through ordinary shares and Rs. 15 lakhs through long term borrowing 9 per cent interest per annum.

(iv) Rs. 10 lakhs through ordinary shares and Rs. 10 lakhs through preference shares with 5 percent divided.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

The company's expected 'Earnings Before Interest and Taxes' (EBIT) are be Rs. 8 lakhs. Assuming a corporate tax rate of 30 %. Determine the earnings per share (EPS) in each alternative and comment on the implications and suggest the best alterbnative.

Solution :

Statement of Comparative Earing Per Share (EPS)

Particulars	(Rs. in lakhs) Alternative			
	(i)	(ii)	(iii)	(iv)
Equity Share Capital	20.00	10.00	5.00	10.00
Preference Share Capital	--	--	--	10.00
Long-term Borrowings	--	10.00	15.00	--
Total Financing	20.00	20.00	20.00	20.00
EBIT	8.00	8.00	8.00	8.00
Less : Interest	--	0.80	1.35	--
Profit before tax (PBT)	8.00	7.20	6.65	8.00
Less : Tax at 30%	2.40	2.16	1.995	2.40
Profit after Tax (PAT)	5.60	5.04	4.655	5.60
Less : Preference Share Divided	--	--	--	0.50
Funds belonging to Equity Shareholders	5.60	5.04	4.655	5.10
No. of Equity Shares	45,000	35,000	30,000	35,000
(Earning per share (EPS) =	Rs. 12.44	Rs.14.00	Rs. 15.52	Rs. 14.57

टिप्पणी – उपरोक्त चार विकल्पों में विकल्प (iii) सर्वोत्तम है, क्योंकि इसमें प्रति अंश आय 15.52 रुपये है जो सबसे ऊँची है। अतः कम्पनी को विस्तार हेतु 5 लाख रुपये साधारण अंशों से तथा 15 लाख रुपये प्रतिशत ब्याज पर दीर्घकालीन ऋणों से प्राप्त करने चाहिए।

पूँजी संरचना के उपयुक्त प्रतिरूप सम्बन्धी सिद्धान्त

(Principles of Suitable Patterns of Capital Structure)

पूँजी संरचना या पूँजी की मात्रा में विभिन्न प्रतिभूतियों के मिश्रण का क्या प्रतिरूप हो, इस सम्बन्ध में निर्णय लेते समय पूँजी ढाँचे के निम्न आधारभूत प्रतिरूपों को ध्यान में रखना चाहिए–

(i) सम्पूर्ण पूँजी की मात्रा की सम अंशों द्वारा पूर्ति करना;

(ii) सम्पूर्ण पूँजी की मात्रा की सम और अधिमान अंशों द्वारा पूर्ति करना;

(iii) सम्पर्ण पूँजी की मात्रा की सम, अधिमान अंशों एवं ऋण–पत्रों द्वारा पूर्ति करना।

इन प्रतिरूपें में से कौन–सा प्रतिरूप किसी संस्था की पूँजी के लिए अधिक उपयुक्त होगा, इस पर निर्णय लेते समय कुछ आधारभूत सिद्धान्तों (Basic Principles) को ध्यान में रखना पड़ता है। यह सम्भव है कि ये सिद्धान्त कभी–कभी एक–दूसरे के विरोधी भी हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में देश की आर्थिक और औद्योगिक दशाओं एवं व्यावसायिक संस्था की स्थितियों के अनुरूप इन सिद्धान्तों को उपयुक्त भार (सापेक्षिक महत्त्व) प्रदान करके इनमें वांछित तालमेल स्थापित किया जा सकता है। साथ ही वित्तीय प्रबन्धकों को पूँजी की माँग व पूर्ति को भी ध्यान में रखना चाहिए। यदि इन सिद्धान्तों के आधार पर यह निर्णय लिया जाता है कि अतिरिक्त पूँजी को ऋण–पत्रों के द्वारा प्राप्त किया जाना चाहिए, परन्तु व्यापार में जोखिम की मात्रा अधिक होने के कारण ऋणदाता संस्था के ऋण–पत्रों को नहीं खरीदना चाहते हैं, तो पूँजी ढाँचे में वांछित सामंजस्य स्थापित नहीं किया जा सकता है। पूँजी ढाँचे के उपयुक्त प्रतिरूप के चुनाव में निम्न सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए–

(i) **लागत सिद्धान्त** (Cost Principle) - साधारणतया पूँजी की लागत उसके प्रयोग के लिए दी जाने वाली नकद राशि (ब्याज व लाभांश के रूप में) करारोपण की स्थिति पर निर्भर करती है। इन दोनों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दृष्टिकोणों से ऋण पूँजी, अंश पूँजी की तुलना में सस्ती पड़ती है। प्रथम, ऋण पर देय ब्याज की दर अंश पूँजी पर देय लाभांश की दर से अपेक्षाकृत कम होती है। दूसरे, ऋण पर देय ब्याज कर–योग्य लाभ की गणना हेतु कटौती योग्य खर्च है, जबकि लाभांश का भुगतान कर लगाने के बाद बची हुई आय में से किया जाता है। फलस्वरूप ऋण पूँजी पर देय ब्याज प्रभारी ब्याज दर से कम होता है। इस प्रकार ऋण पूँजी संस्था की आय बढ़ाने में सहायक होती है।

(ii) **जोखिम का सिद्धान्त** (Principle of Risk)– हालाँकि लागत सिद्धान्त के आधार पर ऋण पूँजी अधिक लाभकारी होती है, परन्तु अधिक ऋण पूँजी लगाने में जोखिम की मात्रा बढ़ जाती है। यह जोखिम दो प्रकार की होती है। प्रथम, ऋण पूँजी पर ब्याज की भारी रकम नियमित रूप से ऋण–पत्रधारियों एवं ऋणदाताओं को चुकानी पड़ती है। दूसरे, ऋण–पत्रों के शोधन के लिए या ऋण की वापसी के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था करनी पड़ती है। इसका प्रभाव यह पड़ सकता है कि संस्था में वित्तीय संकट की सम्भावना बढ़ जाती है, क्योंकि संस्था की आय पर ऋण पूँजी की जोखिम का प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अंशधारियों को देय लाभांश की दर में कटौती करनी पड़ती है जिसके कारण अंशों का बाजार मूल्य गिरने लगता है। यदि संस्था ऋण पूँजी व उस पर ब्याज का भुगतान करने में अक्षम होती है, तो ऋणदाता उसके समापन के लिए माँग कर सकते हैं। अतः यह आवश्यक होता है कि पूँजी ढाँचे प्रतिरूप के रूप में ऋण–पत्रों द्वारा पूँजी उगाहने का निर्णय लेते समय ऋणों से सम्भावित आय एवं उसमें निहित जोखिम का तुलनात्मक अध्ययन कर लिया जाए।

(iii) **नियन्त्रण का सिद्धान्त** (Principle of Control) – यह तो स्पष्ट हे कि समता अंशधारियों का कम्पनी संगठन व्यवसाय पर पूर्ण नियन्त्रण हेाता है और उनकी यही अभिलाषा होती है कि उनका यह प्रभावकारी नियन्त्रण बना रहे। अतः पूँजी ढाँचे के प्रतिरूप का चुनाव अर्थात् विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों काचुनाव करते समय इस अभिलाषा को ध्यान में रखना चाहिए। चूँकि ऋणदाताओं का मताधिकार प्राप्त नहीं होता है, अतः ऋण–पत्रों के निर्गमन पर समता अंशधारियों का नियन्त्रण अकाट्य बना रहता है। इस प्रकार यदि समता अंशधारियों की इच्छा अपने नियन्त्रण को यथावत् बनाए रखने की है, तो ऋण–पत्रों के निर्गमन द्वारा ही पूँजी की उगाही करना चाहिए। अतिरिक्त समता अंशों के निर्गमन के विद्यमान अंशधारियों का नियन्त्रण हल्का कम (dilute) हो जाता है। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि नियन्त्रण बनाए रखने के चक्कर में ऋणग्रस्तता की मात्रा अधिक न हो जाए, वरना संस्था की शोधन क्षमता दूषित व निर्बल हो जाएगी और समापन की स्थिति भी आ सकती है।

(iv) **लोचपूर्णता का सिद्धान्त** (Principle of Flexibility) – पूँजी ढाँचे के प्रतिरूप ऐसा होना चाहिए, ताकि आवश्यकता पड़ने पर भविष्य में पूँजी ढाँचे में वांछित परिवर्तन सरलतापूर्वक किया जा सके। यदि व्यवसाय के प्रारम्भ में ही कठोर शर्तों पर पूँजी उगाह ली जाती है, तो भविष्य में इच्छानुसार परिवर्तन नही लाया जा सकता। दूसरे शब्दों में, पूँजी ढाँचे में लोचपूर्णता का अभाव होगा। हाँ, उच्च प्रतिभूतियों में याचना या परिवर्तन (Conversion) सम्बन्धी प्रावधान निविष्ट करके पूँजी ढाँचे को कुछ सीमा तक लोचपूर्ण बनाया जा सकता है। लोचपूर्णता के दृष्टिकोण से सम अंशों का निर्गमन सबसे श्रेयस्कर माना जाता है। परन्तु संस्था की गिरती हुई परिस्थिति में ऋण–पत्रों की जगह अधिमान अंशों का निर्गमन पूँजी ढाँचे में लोचपूर्णता बनाए रखने के लिए अधिक अच्छा होगा।

(v) **काल सिद्धान्त** (Timing Principle) - पूँजी के विभिन्न साधनों का और उनसे उगाही जाने वाली पूँजी की मात्रा का निर्धारण करते समय काल सिद्धान्त बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त माना जाता है। पूँजी बाजार में विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों की माँग सदा एकसमान नहीं रहती है। अतः पूँजी बाजार में जिस समय जिन प्रतिभूतियों की माँग अधिक हो, उन्हीं प्रतिभूतियों द्वारा पूँजी का संग्रह करना चाहिए और उसी के अनुसार पूँजी ढाँचे में परिवर्तन कर लेना चाहिए। व्यापारिक चक्रों के अनुसार व्यवसाय तेजी काल, प्रतिसार और मन्दी की अवस्था से गुजरता है। तेजी काल में विनियोक्ताओं की पूँजी विनियोजन इच्छा प्रबल होती है। अतः ऐसे समय में समता अंशों का निर्गमन करके पूँजी उगाहनी चाहिए। प्रतिसार ;त्मबमेपवदद्ध काल में अस्थिरता के वातावरण के कारण विनियोक्ता आय की अपेक्षा धन की सुरक्षा पर अधिक ध्यान देते हैं। ऐसी स्थिति में स्थिर लागत वाली प्रतिभूतियों का निर्गमन करके पूँजी उगाहनी चाहिए। मन्दी काल में विनियोक्ताओं की विनियोजन की इच्छा बहुत ही कम होती है। अतः व्यवसाय में जितने धन की आवश्यकता होती है, उसे स्थिर लागत वाली प्रतिभूतियों को निर्गमित करके प्राप्त किया जा सकता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

पूँजी संरचना में परिवर्तन

(Changes in Capital Structure)

किसी भी कम्पनी की पूँजी संरचना प्रायः दीर्घकालीन एवं स्थायी प्रकृति की होती है। फिर भी इसका यह आशय कदापि नहीं है कि एक बार निर्धारित पूँजी संरचना कभी परिवर्तित ही नहीं की जा सकती है अथवा परिवर्तित करने की जरूरत ही नहीं पड़ती। आर्थिक लागत की गतिविधियों से प्रभावित होकर पूँजी संरचना में समयानुकूल परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ती है। विकास के समय धन की आवश्यकता पड़ती है जिसके लिए संचित लाभों का पूँजीकरण करके अथवा नये ऋण या अंश पूँजी का निर्गमन करके पूँजी संरचना में परिवर्तन किया जाता है। संकट की स्थिति से बचने के लिए भी पूँजी कलेवर में बदलाव लाया जाता है। पूँजी संरचना में परिवर्तन तनाव को कम करने और कम्पनी को अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने हेतु अवसर प्रदान करने के लिए किए जाते हैं।

पूँजी संरचना में परिवर्तन की आवश्यकता (Need of Changes in Capital Structure)

पूँजी संरचना में परिवर्तन की आवश्यकता निम्न तत्त्वों ;थ्बजवतेद्ध के कारण महसूर कीक जाती है–

(1) वैधानिक आवश्यकताएँ (Legal Requirements)– कभी–कभी निगमों की पूँजी संरचना में परिवर्तन वैधानिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 में केवल दो प्रकार समता एवं पूर्वाधिकार अंशों के निर्गमन की अनुमति दी गई है, तो पूर्व में जिन कम्पनियों के पूँजी संरचना में स्थगित अंश रहे होंगे, उन्हें परिवर्तन अनिवार्य रूप से करना पड़ा होगा।

(2) अंशधारियों का मनोविज्ञान (Psychology of Shareholders) – अंशों को लोकप्रियता प्रदान करने हेतु विनियोजको के मनोविज्ञान पर ध्यान देना पड़ता है। उदाहरणार्थ, बहुधा विनियोजक 100 रुपये के अंशों की तुलना में 1 से 10 रुपये के अंशों के क्रय को प्राथमिकता देते हैं। अगर पूर्व में कम्पनी की पूँजी संरचना में 100 रुपये के अंश हों तो बाद में उसमें कम मूल्य के अंशों के लिए समायोजन करना होगा।

(3) सरलीकरण (Simplification)– यदि कम्पनी की पूँजी संरचना में विविध प्रकार की प्रतिभूतियाँ निर्गमित की गई होंगी तो वे जटिलता उत्पन्न करती हैं और उन्हें सरल बनाने के लिए पूँजी संरचना में परिवर्तन करना चाहिए। जैसे, विभिन्न अधिकारों वाले बॉण्डों को समाप्त करके पूर्वाधिकार अंशों के निर्गमन से पूँजी संरचना को सरल बनाया जा सकता है।

(4) मूल्य–विहीन सम्पत्तियों का अपलेखन (Writing of watered Assets) – अगर कम्पनी के आर्थिक चिट्ठे में कुछ ऐसी सम्पत्तियाँ प्रदर्शित की गई हों, जिनका कुछ भी मूल्य नहीं है अथवा वास्तविक मूल्य पुस्तकीय मूल्य से कम है तो पूँजी संरचना मे परिवर्तन करना ठीक रहता है।

(5) अल्प– पूँजीकरण (Under-capitalisation) –कम्पनी की कार्यक्षमता उच्च होने पर लाभार्जन दर भी बढ़ती है और अल्प–पूँजीकरण की समस्या उत्पन्न हो सकती है, जिसे दूर करना चाहिए। इस अल्प–पूँजीकरण से निपटने के लिए बोनस अंशों का निर्गमन किया जा सकता है, जिससे पूँजी संरचना में परिवर्तन हो जाता है।

(6) एकीकरण और संविलयन (Amalgamation and Absorption) – जब दो या अधिक कम्पनियाँ आपस में मिलकर एक नई कम्पनी बन जाएँ तो इसे एकीकरण कहते हैं और अगर एक कम्पनी किसी दूसरी कम्पनी के व्यापार को खरीद लेती है तो उसे संविलयन कहा जाता है। इन दोनों ही दशाओं में सभी कम्पनियों के अंशों के मूल्य को एक दर पर लाने के लिए पूँजी संरचना में परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है।

(7) परिवर्तनशीलता प्रतिभूतियों का निर्गमन (Issue of Convertible Securities) – यदि कम्पनियों को परिवर्तनशील प्रतिभूतियों का निर्गमन करना हो तो उसकी पूँजी संरचना में परिवर्तन करना अति आवश्यक हो जाता है।

पूँजी संरचना में परिवर्तन के ढंग (Modes of Changes in Capital Structure)

पूँजी संरचना में परिवर्तनों के लिए निम्नलिखित ढंग अपनाए जा सकते हैं :

1. पुनःपूँजीकरण (Recapitalisation) – कम्पनी अपने पूँजी संरचना में परिवर्तन दो प्रकार– पूँजी की मात्रा में वृद्धि व पूँजी की मात्रा में कमी से कर सकती है। इसे पुनःपूँजीकरण कहा जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. पुनर्वित्तीकरण (Re-financing) –इस ढंग में पूँजी की मात्रा में परिवर्तन न करके बल्कि पूर्व–निर्धारित पूँजी के प्रतिभूति मिश्रण में समायोजन किया जाता है। इसके अन्तर्गत अल्पकालीन ऋणों को दीर्घकालीन ऋणों में बदलना, ऋण–पत्रों या बाण्ड्स की ब्याज दरों में बदलाव, अंशों का अंकित मूल्य बदलना व संचयों का पूँजीकरण सम्मिलित होता है।

3. पुनर्निर्माण (Reconstruction) – पुनर्निर्माण मे कम्पनी की आन्तरिक एवं बाह्य संरचना में परिवर्तन किया जाता है। कम्पनी की सभी पुरानी सम्पत्तियों की नई कम्पनी के द्वारा इस प्रकार क्रय किया जाता है कि पुराने अंशधारियों के हितों में बहुत अधिक परिवर्तन न हो। बहुधा निगमें आवश्यकतानुसार कार्यशील पूँजी जुटाने तथा व्यवसाय को अधिक लाभदायक बनाने के लिए पुनर्निर्माण का सहारा लेकर पूँजी संरचना में परिवर्तन करती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

खण्ड–स

परिचालन एवं वितीय उत्तोलक

(OPERATING AND FINANCIAL LEVERAGE)

एक व्यावसायिक संस्था की पूंजी संरचना के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों (समता अंश, अधिमान अंश व ऋण पत्र इत्यादि) को अनुकूलतम अनुपात में निर्गमित किया जाता है जिससे संस्था को उनकी कम से कम लागत पडे तथा संस्था के मुख्य उद्देश्य अंशधारियों हेतु अधिकतम प्रत्याय की प्राप्ति में सहायक हो सकें। अतः पूंजी संरचना निर्णय एक संस्था के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते है । किसी संस्था की कुल पूंजी में ऋण की मात्रा बढाने से एक ओर अंशधारियों की प्रत्याय में वृद्धि एवं अंश का बाजार मूल्य गिरता भी है। यदि किसी संस्था की कुल पूंजी स्वामियों के कोषो की मात्रा बढाती है तो इससे अंशधारियों की प्रत्याय एवं जोखिम दोने ही कम होती है । किसी संस्था की पूंजी संरचना में ऋण समता मिश्रण के निर्धारण एवं इसका अंशधारियों की प्रत्याय एवं जोखिम पर पडने वाले प्रभावों का अध्ययन करने हेतु उत्तोलक या लीवरेज की अवधारणा को प्रयुक्त किया जाता है। पूंजी संरचना निर्णयों में परिचालन उत्तोलक एवं वितीय उत्तोलक तथा इन दोनों के मध्य सम्बन्ध अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है । उत्तोलक संस्था की लाभ अर्जन क्षमता एवं वितीय सुदृढता दोनें को प्रभावित करता है ।

उत्तोलक का अर्थ

यान्त्रिकी विज्ञान में उत्तोलक से अभिप्राय ऐसी तकनीक के प्रयोग से लिया जाता है, जिससे अधिक भार को कम शक्ति के प्रयोग से उठाया जा सके। इस आशय हेतु एक आधार पर किसी उत्तोलक का प्रयोग किया जाता है। वित्तीय प्रबन्ध में यह आधार स्थायी लागतो का होता है तथा उत्तोलक विभिन्न प्रकार की पूंजी का मिश्रण होता है।

एक संस्था वित पूर्ति हेतु पूंजी लागत या प्रत्याय के दृष्टिकोण से दो प्रकार की पूंजी का प्रयोग कर सकती है। ऐसी पूंजी जिस पर प्रत्याय की दर स्थिर होती है तथा ऐसी पूंजी जिस पर प्रत्याय की दर परिवर्तनशील होती है । स्थायी प्रत्याय दर वाली पूंजी में ऋण पत्र, दीर्घकालीन ऋण एवं पूर्वाधिकार अंशो को सम्मिलित किया जाता है, जबकि परिवर्तनशील–प्रत्याय दर वाली पूंजी में साधारण अंश पूंजी एवं प्रतिधारित अर्जनों को सम्मिलित किया जाता है।

अतः वितीय प्रबन्ध में उत्तोलक से अभिप्राय ऐसी सम्पतियों या कोषो के प्रयोग से है जिनके लिए संस्था एक स्थायी लागत या प्रत्याय चुकाती है। स्थायी लागतों को वहन करने तथा चुकाने की क्षमता क्रमशः लाभदायकता एवं वितीय सुदृढता को प्रभावित करती है। अतः स्थायी लागत भार उत्तोलक के आधार का कार्य करती है। यदि संस्था द्वारा अर्जित ब्याज व कर घटाने के पूर्व के लाभ स्थायी लागत या स्थायी प्रत्याय से अधिक हो तो अनुकूल उत्तोलक (Favourable Leverage) कहलायेगा। इससे विपरीत यदि स्थायी लागत या प्रत्याय संस्था द्वारा अर्जित ब्याज व कर से पूर्व लाभों से अधिक हो तो यह प्रतिकूल उत्तोलक (Unfavourable Leverage) कहलायेगा।

जेम्स वॉन हार्न ने उत्तोलक को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ''उत्तोलक से अभिप्राय ऐसी सम्पतियों या कोष के प्रयोग से है जिनके लिए संस्था एक स्थायी लागत या प्रत्याय चुकाती है । स्थायी लागत या प्रत्याय को उत्तोलक का आधार (Fulcrum) कहा जा सकता है ।'' इस प्रकार उत्तोलक स्थायी लागत वाले कोषो के स्त्रोतों के प्रयोग के परिणामस्वरूप होता है तथा किसी संस्था द्वारा इन स्थायी लागत वाले कोषों के स्त्रोतो के प्रयोग करने पर ही होता है अन्यथा नही ।

उत्तोलक को 'विक्रय मात्रा में परिवर्तन से लाभ मं संबन्धित परिवर्तन के (Relative change in profits due to a change in sales quantity) के रूप में भी परिभाषित किया जा सकता है । इस दृष्टिकोण से उत्तोलक विक्रय मात्रा में परिवर्तन के प्रभावों का परिणाम निर्धारण करने में सहायक होता है । इसमें विक्रय मात्रा में परिवर्तन की तुलना में लाभों में आनुपातिक रूप स अधिक वृद्धि या कमी उत्पन्न होती है ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उत्तोलक की विशेषताएँ या तत्व

उत्तोलक की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है :

(1) उत्तोलक विक्रय मे होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप लाभों में होने वाले परिवर्तनों को प्रदर्शित करता है ।
(2) जितना अधिक उत्तोलक होगा, लाभ भी उतने ही अधिक होगों (More leverage more profit) तथा कम उत्तोलक की स्थिति में लाभ भी कम ही होगें ।
(3) उत्तोलक बिक्री की मात्रा और परिचालन लाभों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करता है ।
(4) उत्तोलक विश्लेषण हेतु एक यंत्र या औजार है ।
(5) उत्तोलक परिचालन लागतों को नियंत्रित करने में प्रबन्ध की सहायता करता है।
(6) उत्तोलक माल की बिक्री हेतु की गई स्थायी लागतों को प्रदर्शित करता है ।

उत्तोलक के प्रकार

व्यवसाय में उत्तोलक दो प्रकार का हो सकता है प्रथम परिचालन उत्तोलक एवं द्वितीय वितीय उत्तोलक । इन दोनों उत्तोलक को मिला कर संयुक्त उत्तोलक की गणना की जाती है ।

(1) परिचालन उत्तोलक

यदि किसी संस्था को अपने उत्पादन कार्य में स्थायी लागतें अथवा स्थायी व्यय वहन करने पडते हो जिनको कि उत्पादन स्तर से कोई सम्बन्ध न हो तो हम कहेगें कि संस्था में परिचालन उत्तोलक विद्यमान है। संस्था की परिचालन लागतों को प्रमुखतः स्थायी, परिवर्तनशील एवं अर्द्ध परिवर्तनशील लागतों में विभक्त किया जाता है। परिवर्तनशील लागतें ऐसी लागते होती है जो उत्पादन स्तर के साथ उसी अनुपात में परिवर्तित होती है जिसमें उत्पादन स्तर परिवर्तित होता है। स्थायी लागतें ऐसी लागतें होती है जिनका उत्पादन स्तर से कोई सम्बन्ध नही होता है तथा उत्पादन शून्य होने पर भी संस्था को ये लागतें वहन करनी होती है। अर्द्ध–परिवर्तनशील लागतें वे लागतें होती है जो उत्पादन के एक स्तर तक स्थायी होती है तथा उस स्तर के पश्चात् परिवर्तनशील होती है। सामान्यतया अर्द्धपरिवर्तनशील लागतों का स्थायी अंश स्थायी लागतों में तथा परिवर्तनशील अंश परिवर्तनशील लागतों में जोड दिया जाता है। अतः प्रमुख रूप से स्थायी एवं परिवर्तनशील लागते ही महत्वपूर्ण रह जाती है।

यदि किसी संस्था में स्थायी लागतें है तथा एक निश्चित सीमा या वर्तमान सीमा से उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन किया जाये तो उत्पादन दर में परिवर्तन की अपेक्षा लाभ दर में परिवर्तन अधिक होगा । इस परिवर्तन के सापेक्ष अध्ययन को परिचालन उत्तोलक की मात्रा के नाम से जाना जाता है । जिस संस्था में परिचालन उत्तोलक विद्यमान होगा, उसमें विक्रय की मात्रा में मामूली परिवर्तन के परिणामस्वरूप परिचालन लाभो में तुलनात्मक रूप से अधिक परिवर्तन होगा। उदाहरण के लिए, यदि विक्रय में 20 प्रतिशत वृद्धि हाती है तो परिचाल लाभों में 50 प्रतिशत वृद्धि होती है। यदि किसी संस्था में स्थायी लागतें विद्यमान नही है, तो उस संस्था में परिचालन उत्तोलक भी विद्यमान नही होगा तथा उस संस्था में विक्रय में परिवर्तन की दर व परिचालन लाभों में परिवर्तन की दर एक समान होगी। उदाहरणार्थ यदि विक्रय में 20 प्रतिशत वृद्धि होती है तो परिचालन लाभों में भी 20 प्रतिशत वृद्धि होगी।

परिभाषाएँ

परिचालन उत्तोलक की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार है :

''यदि एक फर्म की मुल लागतो मे स्थायी लागतों का प्रतिशत ज्यादा है तो यह कहा जायेगा कि फर्म में उच्च मात्रा का परिचालन उत्तोलक है ।''

–ई.एफ.ब्राइगम

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

''परिचालन उत्तोलक को स्थायी परिचालन लागतों के उपयोग के फलस्वरूप दी गई विक्रय मात्रा में हुऐ परिवर्तनों की तुलना में लाभों मे हुये परिवर्तनों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

–बाकर एवं पेट्टी

संक्षेप में, परिचालन उत्तोलक विक्रय मे परिवर्तन का परिचालन आय पर प्रभाव स्पष्ट करता है । संस्था की परिचालन क्रियाओं में स्थायी लागतें परिवर्तन लागतों से अधिक है तो उच्च परिचालन उत्तोलक होगा तथा विपरीत स्थिति में निम्न परिचालन उत्तोलक होगा ।

परिचालन उत्तोलक की विशेषताएँ निम्नलिखित है –

1. स्थायी लागतों से सम्बन्धित – परिचालन उत्तोलक स्थायी लागतों से सम्बन्धित होता है। यदि किसी संस्था में स्थायी लागतें अधिक है तो परिचालन उत्तोलक अधिक होगा एवं किसी संस्था में यदि स्थायी लागतें कम है तो परिचालन उत्तोलक कम होगा।

2. सम–विच्छेद बिन्दु के निकट सर्वाधिक परिचालन उत्तोलक – परिचालक उत्तोलक की मात्रा किसी भी संस्था के सम–विच्छेद बिन्दु के निकट सबसे अधिक होती है । विक्रय का स्तर ज्यो ज्यों सम–विच्छेद बिन्दु से दूर होता जाता है त्यों त्यों परिचालन उत्तोलक की मात्रा कम होती जाती है । सम–विच्छेद बिन्दु के निकट अधिक परिचालन उत्तोलक की मात्रा यह दर्शाती है कि सम–विच्छेद बिन्दु के निकट यदि विक्रय की मात्रा मे जरा भी वृद्धि होती है तो अधिक परिचालन उत्तोलक के प्रभाव से परिचालन लाभो (EBIT) में तुलनात्मक रूप से बहुत अधिक वृद्धि होगी। सम–विच्छेद बिन्दु से दूर कम परिचालन उत्तोलक की मात्रा यह दर्शाती है कि सम–विच्छेद बिन्दु से दूर विक्रय की मात्रा मे परिवर्तन होता है तो कम परिचालन उत्तोलक के प्रभाव में परिचालन लाभों (EBIT) में तुलनात्मक रूप में वृद्धि कम होगी ।

3. व्यावसायिक जोखिम – परिचालन उत्तोलक के कारण व्यवसाय के लाभों के साथ साथ व्यावसायिक जोखिम में भी वृद्धि होती है । उच्च परिचालन उत्तोलक की स्थिति में एक तरफ विक्रय में मामूली–सी वृद्धि के कारण परिचालन लाभों में वृद्धि तुलनात्मक रूप से अधिक होती है तो दूसरी ओर विक्रय में मामूली–सी कमी होने पर परिचालन लाभों में कमी तुलनात्मक रूप से अधिक होती है ।

4. स्थायी सम्पतियों के मिश्रण पर प्रभाव – परिचालन उत्तोलक स्थायी लागत वाली सम्पतियों के उपयोग के कारण उत्पन्न होता है, फलस्वरूप यह चिटठे के सम्पति पक्ष मे स्थायी सम्पतियों के मिश्रण को प्रभावित करता है ।

परिचालन उत्तोलक का महत्व –
परिचालन उत्तोलक का महत्व निम्नलिखित है–

(1) पूंजी वजटन निर्णयों में सहायक – ब्राइगम के अनुसार ''परिचालन उत्तोलक अवधारण का विकास ही मूल रूप से पूंजी बजटन निर्णयों में उपयोग के लिए हुआ था।'' परिचालन उत्तोलक स्थायी लागतों से सम्बन्धित होने के कारण पूंजी बजटन निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है ।

(2) पूंजी संरचना निर्णयो मे सहायक – परिचालन उत्तोलक पूंजी संरचना निर्णयों को भी प्रभावित करता है। उच्च परिचालन उत्तोलक से अधिक जोखिम व अधिक लाभ की प्राप्ति होती है जबकि निम्न परिचालन उत्तोलक से कम जोखिम व कम लाभ की प्राप्ति होती है । अतः एक फर्म वांछित लाभदायकता व जोखिम को ध्यान मे रखते हुए ही पूंजी संरचना नियोजन करती है ।

परिचालन उत्तोलक की कमियॉ
परिचालन उत्तोलक की प्रमुख कमियॉ इस प्रकार है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(1) परिचालन उत्तोलक की विश्वसनीयता स्थायी लागतों का उत्पादों के साथ सही सही अनुभाजन पर निर्भर करती है । दोषपूर्ण अनुभाजन से उत्तोलक की उपयेागिता ही समाप्त हो जाती है ।

(2) संस्था के बाहर के वयक्तियों के लिए परिचालन उत्तोलक की गणना करना आसान कार्य नही है क्योंकि प्रकाशित खाते किसी उत्पाद विशेष की स्थायी लागतों एवं अंशदान के बारें में विस्तृत विवरण प्रदान नही करते है।

परिचान उत्तोलक की गणना

बिक्री के किसी एक स्तर पर परिचालन उत्तोलक की गणना निम्न सूत्र की सहायता से की जा सकती है–

$$\text{Operating Leverage} = \frac{Contribution}{Operating\ \text{Pr}ofit\ or\ EBIT}$$

अथवा

$$\frac{Sales - Variable\ Cost}{Contribution - Fixed\ Cost}$$

अंशदान के स्थायी लागतों से अधिक होने पर अनुकूल परिचालन उत्तोलक होगा जबकि स्थायी लागते यदि अंशदान से अधिक होती है तो प्रतिकूल परिचालन उत्तोलक होगा ।

परिचालन उत्तोलक की मात्रा

परिचालन उत्तोलक की मात्रा की गणना विक्रय के दो स्तरों के परिणाम के आधार पर की जाती है । इसे परिचालन लाभों में प्रतिशत परिवर्तन को विक्रय में प्रतिशत परिवर्तन के अनुपात के रूप में व्यक्त किया जाता है । परिचालन उत्तोलक की मात्रा की गणना निम्न सूत्र से की जाती है –

$$\text{Degree of Operating Leverage (DOL)} = \frac{\%\ Change\ in\ \text{Pr}ofit}{\%\ Change\ in\ Sales}$$

परिचालन उत्तोलक की मात्रा यह दर्शाती है कि यदि बिक्री में परिवर्तन होता है तो लाभों में परिवर्तन परिचालन उत्तोलक की मात्रा का गुणा होगा। उदाहरणार्थ, यदि परिचालन उत्तोलक की मात्रा 2 हो तो बिक्री में परिवर्तन होने पर लाभों में उसका दो गुना परिवर्तन होगा ।

परिचालन उत्तोलक एवं समविच्छेद विश्लेषण

वित्तीय प्रबन्धक विभिनन प्रकार के निर्णय लेने के लिए विक्रय का वह न्यूनतम स्तर जानना चाहेगा जहां कि सम्पूर्ण स्थायी परिचालन लागतो की पूर्ति हो जाती है । इस विक्रय स्तर को सम–विच्छेद विश्लेषण के माध्यम से ज्ञात किया जा सकता है । सम–विच्छेद विश्लेषण न केवल वह न्यूनतम स्तर प्रकट करता है जो स्थायी लागतों की पूर्ति के लिए आवश्यक है अपतु वह विक्रय के विभिन्न स्तरों पर होने वाले लाभ या हानि को भी बताता है । परिचालन उत्तोलक के संदर्भ में सम–विच्छेद विश्लेषण के प्रमुख सूत्र निम्न प्रकार है –

(प) सम–विच्छेद बिन्दु पर विक्रय मात्रा :

$$\text{BEP Slaes (Units)} = \frac{Fixed\ Cost}{Contibution\ per\ unit}$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ii) सम–विच्छेद बिन्दु पर विक्रय आगम :

$$\text{BEP Slaes (in Amount)} = \frac{Fixed\ Cost}{P/V\ Ratio}$$

यहॉ $$\text{P/V Ratio} = \frac{Contribution}{Sales} \times 100$$

(iii) EBIT का मुल्य :

EBIT = Contribution – Fixed Cost

अथवा

EBIT = Total Sales Value – Variable Cost – Fixed Cost

Illustration :

तपस्वी लिमिटेड की स्थापित क्षमता 10,000 इकाइयॉ प्रति वर्ष है । वास्तविक प्रयोगिता क्षमता 8,000 इकाइयॉ वार्षिक है । प्रति इकाई विक्रय मूल्य 5 रूपये तथा परिवर्तनशील लागत 3 रूपये है । निम्न तीन स्थितियों में प्रत्येक स्थिति में परिचालन उत्तोलक की गणना कीजिये एवं व्याख्या कीजिये :

(i) जब स्थायी लागत 6,000 रूपये वार्षिक हो ।
(ii) जब स्थायी लागत 8,000 रूपये वार्षिक हो ।
(iii) जब स्थायी लागत 12,000 रूपये वार्षिक हो ।

The Installed capapcity of Tapasavi Limite is 10,000 units per annum. Actual capacity used is 8,000 units per annuam. Selling price per unit is Rs. 5. Variable Cost is Rs. 3 per unit. Calculate the operating leverage in each of the following three situations and comment :

(i) When Fixed Cost are Rs. 6,000 per annum.
(ii) When Fixed Cost are Rs. 8,000 per annuam.
(iii) When fixed Costs are Rs. 12,000 per annuam.
Solution :
Statement Showing Operating Leverage

Items	Situation-1	Situation-2	Situation-3
(i) Sales (8,000 units@ Rs. 5 per unit)	Rs. 40,000	Rs. 40,000	Rs. 40,000
(ii) Variable Cost	24,000	24,000	24,000
(iii) Contribution (i-ii)	16,000	16,000	16,000
(iv) Fixed Cost	6,000	8,000	12,000
(v) Operation Profit or EBIT (iii-iv)	10,000	8,000	4,000
(vi) Operating Leverage = C / EBIT	16,000 / 10,000 = 1.60	16,000 / 8,000 = 2.00	16,000 / 4,000 = 4.00

निष्कर्ष – उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि जैसे – जैसे कुल लागत में स्थायी खर्चो का अनुपात बढता जाता है, वैसे–वैसे परिचालन उत्तोलक की मात्रा भी बढती जाती है। तृतीय स्थिति में परिचालन उत्तोलक की मात्रा 4 है अर्थात् विक्रय की राशि में एक गुना परिवर्तन होने पर लाभ में चार गुना परिवर्तन होगा ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Illustration :

रचना लिमिटेड वर्तमान में 10,000 इकाइयों का उत्पादन कर रही है । अन्य सूचनाएँ निम्न प्रकार है –

उत्पाद का विक्रय मूल्य	20 रूपये प्रति इकाई
स्थायी परिचालन लागत	50,000 रूपये प्रति वर्ष
परिवर्तनशील परिचालन लागत	10 रूपये प्रति इकाई

उपरोक्त दी गई सूचना के आधार पर परिचालन उत्तोलक की मात्रा ज्ञात कीजिये और इस पर अपनी राय दीजिए। यदि कम्पनी विक्रय करती है – (अ) 5,000 इकाइयॉ, और (ब) 15,000 इकाइयॉ । यह मान लीजिए कि समस्त उत्पादन का विक्रय कर दिया जाता है तथा कोई प्रारम्भिक और अन्तिम स्कन्ध है ।

Rachna Limited is producing 10,000 units at present. Other information are as follows :

Selling price of the product	Rs. 20 per unit
Fixed Operating Cost	Rs. 50,000 per unit
Variable Operating Cost	Rs. 10 per unit

On the basis of informations given aboue ascertaing the degree of operating leverage (DOL) and comment on it, if the Company sells (a) 5,000 Units, and (b) 15,000 Units. It may be assumed that all production is sold and there is no closing or opening stock.

Solution :
Degree of Operating Leverage

Items	Existing Situation	Assumed Situation	Assumed Situation
Sales in units	10,000	5,000	15,000
Sales @ Rs. 20 per unit	2,00,000	1,00,000	3,00,000
Less : Variable Cost @ Rs. 10 per unit	1,00,000	50,000	1,50,000
Contribution	1,00,000	50,000	1,50,000
Less : Fixed Cost	50,000	50,000	50,000
Operation Profit (EBIT)	50,000	Zero	1,00,000
Precentage Change in EBIT	-	(-) 100%	(+) 100%
Precentage Change in Sales	-	(-) 50%	(+) 50%
Degree of Operating Leverage :			
Formula : % change in EBIT / % change in Sales		(-) 100% / (-) 50% = 2 (Unfavourable)	(+) 100% / (+) 50% = 2 (Favourable)

निष्कर्ष – उपर्युक्त से स्पष्ट हो जाता है कि यदि कम्पनी में स्थायी लागत विद्यमान होती है तो ऐसी दशा में विक्रय मात्रा में वृद्धि होने पर म्ठप्ज में वृद्धि अनुपातिक से अधिक होगी । दूसरी तरफ यदि विक्रय मात्रा में कमी होती है तो म्ठप्ज में कमी आनुपातिक से अधिक होगी । जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण में विक्रय मात्रा में 50ः की वृद्धि से म्ठप्ज में 100ः की वृद्धि हुई तथा विक्रय मात्रा में 50ः की कमी पर 100ः की कमी हुई । परिचालन उत्तोलक की विद्यमानता तभी समझी जानी चाहिए जबकि इसकी मात्रा एक से अधिक हो ।

Illustration :

आपको निम्न सूचना दी गई

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

The following information is supplied to you :

Particulars	Existing Situation	New Situation
	Rs.	Rs.
No. of Units Sold	10,000	12,000
Selling price per unit	40	40
Variable cost per unit	20	20
Fixed cost	Nil	Nil

यदि कोई परिचालन उत्तोलक विद्यमान है, तो स्पष्ट कीजिये ।

Explain the existence of operating leverage, if there is any.
Solution :

Degree of Operating Leverage

Items	Existing Situation	New Situation
	Rs.	Rs.
Sales Revenue	4,00,000	4,80,000
Less : Variable Cost	2,00,000	2,40,000
Contribution	2,00,000	2,40,000
Less : Fixed Cost	Nil	Nil
Operating Profit (EBIT)	2,00,000	2,40,000
Precentage change in EBIT		20%
Percentage change in Sales		20%
Degree of Operating Leverage Formula :		
Precentage change in EBIT		20
----------		------ = 1
Precentage change in Sales		20

यहॉ परिचालन उत्तोलक की मात्रा एक है, अतः उपर्युक्त उदाहरण में परिचालन उत्तोलक उपस्थित नही है।

(2) वित्तीय उत्तोलक
(Financial Leverage)

एक संस्था वित्त पूर्ति हेतु पूँजी की लागत या प्रत्याय के दृष्टिकोण से दो प्रकार की पूँजी का प्रयोग कर सकती है–ऐसी पूँजी जिस पर एक निश्चित दर से ब्याज या लाभांश चुकाना पड़ता है, जैसे–अधिमान अंश पूँजी, ऋण–पत्र, दीर्घकालीन ऋण आदि (यद्यपि अधिमान अंशों पर लाभांश चुकाना कोई कानूनी दायित्व नहीं है, लाभों के होने पर ही इसका भुगतान किया जाता है, तथापि लाभों की विद्यमानता की स्थिति में इन्हें एक निश्चित दर से ही लाभांश दिये जाने के कारण इन्हें स्थायी लागत पूँजी के अन्तर्गत ही ही सम्मिलित किया जाता है) तथा ऐसी पूँजी जिस पर एक निश्चित दर से ब्याज या लाभांश चुकाने की आवश्यकता नहीं होती, जैसे–समता अंश पूँजी व प्रतिधारित अर्जनें। वित्तीय उत्तोलक यह बतलाता है कि पूँजी संरचना में स्थायी लागत पूँजी व समता पूँजी का प्रयोग किस अनुपात में किया गया है।

वित्तीय उत्तोलक उच्च या निम्न स्तर का हो सकता है। यदि संस्था में स्थायी लागत पूँजी परिवर्तनशील लागत पूँजी से अधिक है तो संस्था में उच्च स्तर का वित्तीय उत्तोलक होगा, इसके विपरीत यदि परिवर्तनशील लागत पूँजी का अनुपात स्थायी लागत पूँजी से अधिक है तो निम्न स्तर का वित्तीय उत्तोलक होगा। इस प्रकार उत्तोलक को समता पर व्यापार (ज्तंकपदह वद म्नपजल) के नाम से भी जाना जाता है। यदि कम्पनी की अर्जनें पर्याप्त नहीं हों तो इस स्थिति में उसे परिवर्तनशील लागत पूँजी का प्रयोग

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अधिक करना चाहिए, अर्थात् उसे निम्न स्तर के उत्तोलक का प्रयोग अधिक करना चाहिए। इसके विपरीत यदि कम्पनी की अर्जनें अधिक हैं तो उस स्थिति में उसे स्थायी लागत पूँजी का प्रयोग अधिक करना चाहिए अर्थात् उच्च उत्तोलक का प्रयोग अधिक करना चाहिए। कम्पनी की अर्जनें अधिक तब मानी जावेंगी जबकि उसकी विनियोग पर अर्जन दर पूँजी की स्थायी लागत दर से अधिक हो।

परिभाषा, (Definitions)-

वित्तीय उत्तोलक की परिभाषाएँ निम्नानुसार हैं–

"वित्तीय उत्तोलक संस्था की गतिविधियों में प्रयुक्त ऋण तथा ईक्विटी कोषों के मिश्रण को बताता है"[1]

–इजरा सोलोमन

"वित्तीय उत्तोलक में स्थायी लागत कोषों का प्रयोग साधारण अंशधारियों के प्रत्याय को बढ़ाने की आशा में किया जाता है"[2]

–जेम्स सी. वान हार्न

"वित्तीय उत्तोलक को स्थायी वित्तीय व्ययों के उपयोग से संस्था की प्रति अंश अर्जनों पर परिचालन लाभों (EBIT) में परिवर्तन के प्रभाव को आवर्धित (Magnify) करने की योग्यता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"

–गिटमैन

निष्कर्ष के रूप में, वित्तीय उत्तोलक संस्था में वित्त साधनों के सम्मिश्रण अर्थात् स्थायी लागत साधनों से वित्त पूर्ति एवं परिवर्तनशील लागत साधनों से पूर्ति के अनुपात पर प्रकाश डालता है।

वित्तीय उत्तोलक के प्रकार (Types of Financial Leverage)

वित्तीय उत्तोलक दो प्रकार का होता है–

(i) अनुकूल वित्तीय उत्तोलक (ii) प्रतिकूल वित्तीय उत्तोलक

(i) **अनुकूल वित्तीय उत्तोलक** (Favourable Financial Leverage) – यदि स्थिर भार वाली प्रतिभूतियों के उपयोग के कारण प्रति अंश अर्जनें अधिक होती हैं इसे अनुकूल वित्तीय उत्तोलक कहते हैं। सामान्य प्रत्याय दर से ऋण पूँजी की लागत के कम होने पर ही अनुकूल वित्तीय उत्तोलक होगा।

(ii) **प्रतिकूल वित्तीय उत्तोलक** (Unfavourable Financial Leverage) –यदि स्थिर भार वाली प्रतिभूतियों के उपयोग के कारण प्रति अंश अर्जनें कम होती हैं इसे प्रतिकूल वित्तीय उत्तोलक कहते हैं। ऐसा तब सम्भव होता है जब कम्पनी की सामान्य प्रत्याय दर ऋण–पूँजी की लागत से कम होती है।

वित्तीय उत्तोलक का प्रभाव (Effect of Financial Leverage)

वित्तीय उत्तोलक दो प्रकार के प्रभाव डालता है, जो निम्नानुसार है–

(i) **समता अंशधारियों की आय पर प्रभाव** (Effect on Earnings of Equity Shareholders) – अनुकूल वित्तीय उत्तोलक की स्थिति में स्थिर लागत वाली पूँजी को प्रयुक्त करके समता अंशधारियों की आय को बढ़ाया जा सकता है, जबकि प्रतिकूल वित्तीय उत्तोलक की स्थिति अंशधारियों की आय स्थिर लागत वाली पूँजी प्रयुक्त करने पर घटती है। इस प्रकार वित्तीय उत्तोलक दुधारी तलवार है, जहाँ एक ओर यह समता अंशधारियों के लिए उपलब्ध अर्जनों में वृद्धि करता है, वहीं दूसरी ओर इसमें कभी भी करता है।

(ii) **वित्तीय जोखिम पर प्रभाव** (Effect on Financial Risk) – वित्तीय उत्तोलक के उपयोग से वित्तीय जोखिम बढ़ती है। एक फर्म की पूँजी संरचना में जितनी अधिक ऋण–पूँजी की मात्रा होगी, उस फर्म की वित्तीय जोखिम भी उतनी ही अधिक होगी।

वित्तीय उत्तोलक की विशेषताएँ (Characteristics of Financial Leverage)

वित्तीय उत्तोलक की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं–

1.स्थायी लागत वाली पूँजी से सम्बन्धित (Related to Fixed Cost Bearing Capital) – वित्तीय उत्तोलक का सम्बन्ध किसी संस्था की पूँजी संरचना में स्थायी लागत वाली पूँजी की उपस्थिति से होता है। यदि किसी संस्था की पूँजी संरचना में स्थायी लागत वाली पूँजी अधिक है तो उस संस्था में वित्तीय उत्तोलक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अधिक होगा एवं यदि संस्था की पूँजी संरचना में स्थायी लागत वाली पूँजी कम है तो वित्तीय उत्तोलक कम होगा।

2. चिट्ठे के दायित्व पक्ष से सम्बन्धित (Related with Liabilites side of the Balance Sheet) – वित्तीय उत्तोलक संस्था की पूँजी संरचना में स्थायी लागत वाली पूँजी कीमात्रा से प्रभावित होता है अतः यह कहा जा सकता है कि वित्तीय उत्तोलक का सम्बन्ध संस्था के चिट्ठे के दायित्व पक्ष से है।

3. प्रति अंश अर्जनों पर प्रभाव (Effct on Earnings per Share) – वित्तीय उत्तोलक स्थिर वित्तीय व्ययों के कारण संस्था के लाभों में होने वाले परिवर्तनों का प्रति अंश अर्जनों पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करता है।

4.वित्तीय जोखिम (Financial Risk) – वित्तीय उत्तोलक के कारण संस्था की वित्तीय जोखिम में वृद्धि होती है। उच्च वित्तीय उत्तोलक की स्थिति में संस्था के परिचालन लाभों में वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति अंश अर्जनों में तुतनात्मक रूप से अधिक वृद्धि हो जाती है एवं परिचालन लाभों में कमी के परिणामस्वरूप प्रति अंश अर्जनों में तुलनात्मक रूप से अधिक गिरावट आ जाता है।

वित्तीय उत्तोलक की उपयोगिता (Utility of Financial Leverage)

वित्तीय उत्तोलक की प्रमुख उपयोगिता निम्नानुसार है–

(1) अंशधारियों की आय में वृद्धि (Increase in Shareholders Return)– अनुकूल वित्तीय उत्तोलक समता पूँजी पर प्रत्याय में वृद्धि करता है, जिससे समता अंशों के मूल्य में वृद्धि होती है तथा संस्था की बाजार में साख बढ़ती है। फलस्वरूप नीची बयाज दर पर पर्याप्त ऋण आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं जिससे संस्था के लाभों में व अंशधारियों की आय में और वृद्धि होती है।

(2) लाभ नियोजन (Profit Planning) – वित्तीय उत्तोलक की अवधारणा लाभ नियोजन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। वित्तीय उत्तोलक प्रति अंश आय को प्रभावित करता है। सम–विच्छेद विश्लेषण की सहायता से इसके प्रभाव का कुशलतापूर्वक विश्लेषण करके लाभ नियोजन किया जा सकता है।

(3) **अनुकूल पूँजी संरचना** (Optimum Capital Structure)– वित्तीय उत्तोलक ऋण–पूँजी व समता पूँजी में उचित संतुलन स्थापित करके अनुकूलतम पूँजी संरचना के निर्धारण करने में सहायता प्रदान करता है। अनुकूल पूँजी संरचना वह होगी, जहाँ पूँजी की लागत न्यूनतम तथा अंशधारियों की प्रत्याय अधिकतम हो।

परिचालन उत्तोलक एवं वित्तीय उत्तोलक में सम्बन्ध (Relationship between Operating Leverage and Financial Leverage)

परिचालन उत्तोलक एवं वित्तीय उत्तोलक के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों ही उत्तोलक संस्था की स्थायी लागतों –स्थायी परिचालन लागत एवं स्थायी वित्तीय लागत के संस्था की लाभार्जन क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट करते हैं। परिचालन उत्तोलक संस्था के विक्रय में परिवर्तन का संस्था के परिचालन लाभों पर पड़ने वाले प्रभाव का मापन करता है। वित्तीय उत्तोलक संस्था के परिचालन लाभों में परिवर्तन का प्रति अंश अर्जन पर पड़ने वाले प्रभाव का मापन करता है। इस प्रकार जहाँ परिचालन उत्तोलक समाप्त होता है वहाँ वित्तीय उत्तोलक प्रारम्भ होता है।

परिचालन उत्तोलक का अत्यधिक उपयोग व्यवसाय में परिचालन जोखिम को एवं वित्तीय उत्तोलक का अत्यधिक उपयोग व्यवसाय में वित्तीय जोखिम को प्रकट करते हैं।

परिचालन उत्तोलक एवं वित्तीय उत्तोलक में निम्नलिखित अन्तर हैं–

अन्तर का आधार	परिचालन उत्तोलक	वित्तीय उत्तोलक
1. उद्देश्य	परिचालन उत्तोलक का उद्देश्य विक्रय में परिवर्तन के कारण परिचालन लाभों में होने वाले परिवर्तनों को दर्शाना है।	वित्तीय उत्तोलक का उद्देश्य परिचालन लाभों में परिवर्तन के कारण प्रति अंश अर्जनों में होने वाले परिवर्तनों को दर्शाना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2. सम्बन्ध	परिचालन उत्तोलक परिचालन लाभों व बिक्री में सम्बन्ध बतलाता है।	वित्तीय उत्तोलक परिचालन लाभों व समता पर प्रत्याय में सम्बन्ध बतलाता है।
3. जोखिम	परिचालन उत्तोलक व्यावसायिक जोखिम में वृद्धि करता है।	वित्तीय उत्तोलक वित्तीय जोखिम में वृद्धि करता हे।
4. लाभों पर प्रभाव	परिचालन उत्तोलक संस्था के परिचालन लाभों को प्रभावित करता है।	वित्तीय उत्तोलक ब्याज व कर पश्चात् लाभों को प्रभावित करता है।
5. चिट्ठे से सम्बन्ध	यह चिट्ठे के सम्पत्ति पक्ष पर प्रभाव डालता है।	यह चिट्ठे के दायित्व पक्ष पर प्रभाव डालता है।
6. निर्णय से सम्बन्ध	परिचालन उत्तोलक विनियोग निर्णयों से सम्बन्धित होता है।	वित्तीय उत्तोलक वित्त–पूर्ति निर्णयों से सम्बन्धित है।

वित्तीय उत्तोलक की गणना (Computation of Financial Leverage)

लाभ के किसी एक स्तर पर वित्तीय उत्तोलक की गणना निम्न सूत्र से की जाती है–

$$FinancialLeverage = \frac{Operating\ ProfitorEBIT}{EBT}$$

अथवा

$$FinancilLeverage = \frac{EBIT}{EBIT - I}$$

यहाँ EBIT = Earnings Before Interest and Tax

EBT = Earnings Before Tax (but after interest)

I = Fixed Financial Expenses or Interest and Preferences Divided.

कम्पनी की पूँजी संरचना में अधिमान अंश होने पर अधिमान अंश लाभांश को कम्पनी हेतु लागू आयकर की दर के आधार पर कर पूर्व अर्थात् एक बनाया जाएगा और इस प्रकार सकल राशि को ही ब्याज व कर से पूर्व के लाभों (EBIT) में से घटाया जायेगा।

वित्तीय उत्तोलक की मात्रा ;क्महतमम वि्थिदंदबपंस स्मअमतंहमद्ध रू

लाभ के दो स्तरों की तुलना के लिए वित्तीय उत्तोलक की मात्रा का माप निम्न सूत्र की सहायता से किया जाता है–

$$DegreeofFinanciaLeverage(DFL) = \frac{\%Channgesin\ EPS}{\%ChangeinEBIT}$$

वैकल्पिक सूत्र :

$$DegreeofFinanciaLeverage(DFL) = \frac{\%Channgesin\ Taxable\ Profit}{\%ChangeinOperating\ Profit}$$

अथवा

$$DFL = \frac{\%Channgesin\ EBT}{\%ChangeinEBIT}$$

यदि वित्तीय उत्तोलक विद्यमान होगा तो उपर्युक्त सूत्रों में भागफल एक से अधिक होगा, अन्यथा वित्तीय उत्तोलक विद्यमान नहीं होगा। इसके अलावा लाभ के दो स्तर दिये होने पर वित्तीय उत्तोलक (Financial Leverage) तथा वित्तीय उत्तोलक की मात्रा (Degree of Financial Leverage) समान है, किन्तु वित्तीय उत्तोलक की मात्रा (DFL) लाभ के वर्तमान स्तर के लिए होती है, न कि परिवर्तित स्तर के लिये।

प्रति अंश अर्जन (EPS) की गणना निम्न प्रकार की जा सकती है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Calculation of Earning Per Share

Sales	Rs.
Less : All costs including Depreciation	xxx
but excluding Interest on Debt	xxx
Earning before Interest and Tax (EBIT)	xxx
Less : Interest on Debt'	xxx
Earning Before Tax (EBT)	xxx
Less : Tax	xxx
Earning After Tax (EAT)	xxx
Less : Preference Dividend	xxx
Earnings available to Equity Shareholders	xxx
Divided by Number of Equity Shares	xxx
EPS	xxx

सूत्र के रूप में :

$$EPS = \frac{(EBIT - Interist)(1 - TaxRate) - \Pr eferenceDivided}{No.ofEquityShares}$$

अथवा

$$EPS = \frac{EarningAfterTax - \Pr eferenceDivided}{No.ofEquityShares}$$

वित्तीय उत्तोलक की गणना के सम्बन्ध में पूँजी संरचना की निम्न तीन स्थितियाँ हो सकती हैं–

(1) जब पूँजी संरचना में सामान्य अंश एवं ऋण–पूँजी हो,

(2) जब पूँजी संरचना में सामान्य अंश एवं पूर्वाधिकार अंश हो, तथा

(3) जब पूँजी संरचना में सामान्य अंश, पूर्वाधिकार अंश एवं ऋण–पूँजी हो।

उपरोक्त प्रत्येक स्थिति में वित्तीय उत्तोलक की मात्रा की गणना विधि को यहाँ उदाहरणों द्वारा समझाया गया है।

(1) जब पूँजी संरचना में सामान्य अंश पूँजी एवं ऋण पूँजी हो (When Capital Structure consists of Equity Share Capital and Debt Capital) – वित्तीय संरचना में सामान्य अंश पूँजी एवं ऋण–पूँजी होने पर वित्तीय उत्तोलक की मात्रा ज्ञात करने हेतु उपर्युक्त वर्णित किसी भी सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन आय की राशि समान रहते हुए यदि वित्तीय संरचना में परिवर्तन हो तो निम्न सूत्र से इसकी गणना करना चाहिए–

$$DegreeofFinancialLeverage = \frac{EBIT}{EBT} = \frac{OP}{EBT}$$

Illustrution :

एक कम्पनी निम्न तीन वित्तीय योजनाओं में से किसी एक को चुनने का विकल्प रखती है। आप प्रत्येक स्थिति में वित्तीय उत्तोलक की गणना कीजिये।

A company has a choice of the following three financial plans. You are required to calculate the financial leverage in each case :

Particulars	Financial Plan (Rs.)		
	X	Y	Z
Equity Capital	50,000	30,000	60,000
Debt	30,000	50,000	20,000
Operating Profit (EBIT)	8,000	8,000	8,000
Interest on debts	10%	10%	10%

Solution :

Computation of the Financial Leverage

	Financial Plan (Rs.)		
	A	B	C

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Operating Profit (OR or EBIT)	8,000	8,000	8,000
Less : Interest (10% on debt)	3,000	5,000	2,000
Earning Before Tax (EBT)	5,000	3,000	6,000
Financial Leverage			
$(\frac{EBIT}{EBT})$	8,000 5,000 =1.6	8,000 3,000 =2.67	8,000 6,000 =1.33

(2) जब पूँजी संरचना में सामान्य अंश पूँजी एवं अधिमान अंश पूँजी हो (When Capial Structure consists of Equity Share Capital and Preference Share Capital) – यदि पूँ संरचना में सामान्य अंश एवं अधिमान अंश हों तो अधिमान अंशों पर देय लाभांश की राशि को यदि कर से पूर्व आय ;म्ठज्द्ध में से घटाया जाता है तो इसे सकल बना लिया जाता है, क्योंकि अधिमान अंशों पर लाभांश का भुगतान कर चुकाने पश्चात् ही किया जा सकता है। यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट होगा–

Illustrution :

एक कम्पनी की पूँजी संरचना निम्न प्रतिभूतियों से निर्मित है–

जीम ब्वपजंस ैजतनबजनतम वि ब्वउचंदल बवदेपेजे वि जीम विससवूपदह ेमबनतपजपमे रू

	Rs.
10% Preference Share Capital	7,00,000
Equity Share Capital (Rs. 10 each)	10,00,000

The amount of EBIT is Rs. 6,00,000. The rate of income tax is 30%

vki foŸkh; mŸkksyd dh x.kuk dhft;sa

Solution :

Computation of The Financial Leverage

	Rs.
EBIT or Operation Profit	6,00,000
Less : Preference Divided [70,000/ (1-0.30)]	1,00,000
EBT	5,00,000
	6,00,000
Financial Leverage = $\frac{EBIT}{EBT}$	5,00,000 = 1.20

(3) जब पूँजी संरचना में सामान्य अंश, पूर्वाधिकार अंश एवं ऋण–पूँजी हो (When Capital Structure consists of Equity Share Capital, Preference Share Capital and Debt Capital) – जब पूँजी संरचना में सामान्य अंश, पूर्वाधिकार अंश एवं ऋण–पूँजी तीनों हों तो कर एवं ब्याज से पूर्व लाभ की राशि में से सर्वप्रथम ऋण पर देय ब्याज को घटाया जाता है तथा इस प्रकार ज्ञात राशि में से पूर्वाधिकार अंशों पर देय लाभांश को सकल करके घटाया जाता है। पूर्वाधिकार लाभांश को सकल करने हेतु निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$\frac{\text{Pr}eferenceShareDivided}{(1-TaxRate)}$$

Illustrution :

diwj fyfeVsM dEiuh dh iw¡th lajpuk fuEu izdkj gS&

Kapoor Limited has the following capaital structure :	Rs.
Equity Share Capital	10,00,000
10% Preference Share Capital	10,50,000
8% Debentures	12,50,000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

The earning before interest and tax (EBIT or OP) is Rs. 5,00,000. The rate of income tax is 30 %.Rs.

वित्तीय उत्तोलक की गणना कीजिये।

Calculate the Financial Leverage.

Solution :

Calculation of The Financial Leverage

	Rs.
Earning Bofore Interest & Tax i.e. IBIT or OP	5,00,000
Less : Interest on Debentures	1,00,000
Less : Pref. Dividend [1,05,000/(1-0.30)]	4,00,000
Earnings Before Tax (EBT)	1,50,000
	2,50,000
Degree of Financial Leverage = $\frac{EBIT}{EBT} = \frac{5,00,000}{2,50,00} = 2.0$	

Illustrution :

रितीका लिमिटेड का पूँजी ढाँचा निम्न प्रकार है–

Ritika Ltd. has the following Capital Structure :

1,00,000 Equity Share of Rs. 10 each	10,00,000
28,000 10% Preference Share of Rs. 100 each	28,00,000
20,000 Debentures of Rs. 100 each	20,00,000

निम्न स्तरों EBIT के लिए प्रति अंश अर्जन ज्ञात कीजिये–

Calculate EPS वित each of the following levels of EBIT :

(i) Rs. 10,00,000, (ii) Rs. 6,00,000, (iii) Rs. 14,00,000

कम्पनी के लिए की दर 30% है। उपर्युक्त स्थिति में म्ठप्ज् 10,00,000 रु. को आधार मानते हुए वित्तीय उत्तोलक की गणना कीजिये।

The rate of income tax for the Company is 30% . In the above case, also calculate the financial leverage taking EBIT Rs. 10,00,000 as base. Solution :

Calculation of Earning Per Share

Items	(i) Rs.	(ii) Rs.	(ii) Rs.
EBIT	10,00,000	6,00,000	14,00,000
Less : Interest on Debentures	2,00,000	2,00,000	2,00,000
EBT	8,00,000	4,00,000	12,00,000
Less : Income Tax (30%)	2,40,000	1,20,000	3,60,000
EAT	5,60,000	2,80,000	8,40,000
Less : Preference Divided	2,80,000	2,80,000	2,80,000
Earnings Avaiable for Equity Shareholders (EAES)	2,80,000	-	5,60,000
Earning per Share (EPS)	2,80,000	.	5,60,000
	1,00,000		1,00,000
	= Rs. 2.80	Nil	=Rs. 5.60

Calculation of the Degree of Financial Leverage

(अ) उपर्युक्त स्थिति (ii) में (i) की तुलना में EBIT 40% (10,00,000 रु. से 6,00,000 रु. अर्थात् 4,00,000 रु. की कमी जो 10,00,000 रु. का 40% है) घटी है जबकि EPS 100% (2.80 रु. से शून्य) घटी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ब) उपर्युक्त स्थिति (iii) में (i) की तुलना में EBIT 40% (10,00,000 रु. से 14,00,000 रु.) बढ़ी है जबकि EPS 100% 2.80 रु. से 5.60 रु.) बढ़ी है।

वित्तीय उत्तोलक की मात्रा निम्न सूत्र से ज्ञात की जा सकती है–

$$Degree\ of\ Financial\ Leverage \frac{Percentage\ Change\ in\ EPS}{Percentage\ Change\ in\ EBIT}$$

अतः स्थिति (i) व (ii) के मध्य वित्तीय उत्तोलक $= \frac{-100}{-40} = 2.5$

स्थिति (i) व (iii) के मध्य वित्तीय उत्तोलक $= \frac{100}{40} = 2.5$

Illustrution :

टाटा लिमिटेड के वित्त प्रबन्धक द्वारा यह प्रत्याशित है कि इसकी ब्याज व कर पूर्व आय म्ठज चालू वर्ष में 50,000 रुपये होगी। कम्पनी में 5ः वाले कुल 2,00,000 रुपये के ऋण–पत्र हैं, 10ः वाले पूर्वाधिकार अंश 1,00,000 रुपये के हैं। कम्पनी के पास 5,000 समता अंश 10 रुपये मूल्य के हैं। वित्तीय उत्तोलक की मात्रा ज्ञात कीजिये। यदि उपरोक्त स्थिति में (अ) EBIT 30,000 रुपये, तथा (ब) IBIT 70,000 रुपये हों। कम्पनी की कर दर 30% मान लें।

The financial manager of Tata Limited expects that its earnings beofore interest and taxes (EBIT) in the current year would amount to Rs. 50,000. The company has 5% debentures aggregating Rs. 2,00,000, while the 10% preference shares amounting to Rs. 1,00,000. The company has 5,000 equity shares of Rs. 10 each. What would be the Degree of Financial Leverage (DFL) in the above case if the EBIT being : (a) Rs. 30,000, and (b) Rs. 70,000? The tax rate of the company may be assumed as 30%.

Solution :

Degree of Financial Leverage

Particulars	Existing Situation	Assumed Situaion (a)	Assumed Situation (b)
	Rs.	Rs.	Rs.
Earnings before interest and tax (EBIT)	50,000	30,000	70,000
Less : Interest on Debentures	10,000	10,000	10,000
Earnings before tax (EBT)	40,000	20,000	60,000
Less : Tax (30%)	12,000	6,000	18,000
Earnings after tax (EAT)	28,000	14,000	42,000
Less : Preference dividend	10,000	10,000	10,000
Earnings available for equity shareholders (EAES)	18,000	4,000	32,000
Earning per equity share (EPS)	3.60	0.80	6.40
Percentage change in EBIT		(-)40%	(+)40%
Percentage change in EPS		(-)77.78%	(+) 77.78%
Degree of Financial Leverage (DFL)			
Formula : $= \frac{Percentage\ change\ in\ IPS}{Percentage\ change\ in\ EBIT}$		-77.78 -40 =1.94 (unfavourable)	77.78 40 = 1.94 (Favourable)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Illustration :

गौरव मशीन लिमिटेड की पूँजी 10,00,000 रुपये जो 10 रुपये मूल्य के 1,00,000 अंशों में विभक्त हैं। ब्याज व कर पूर्व आय (EBIT) 2,00,000 रुपये है। वित्तीय उत्तोलक की मात्रा क्या होगी? यदि (अ) EBIT 1,50,000 रुपये तथा (ब) 2,50,000 रुपये हो। कम्पनी की कर दर 30% मान लें।

Gaurav Machines Ltd. has a capital of Rs. 10,00,000 equity shares of Rs. 10 each. Earnings before interest and tax (EBIT) are Rs. 2,00,000. What would be the degree of financial leverage (DFL) assuming the EBIT being (a) Rs. 1,00,000, and (b) Rs. 2,00,000? The tax rate for the company may be assumed as 30%.

Solution :

Degree of Financial Leverage

Particulars	Existing Situation	Assumed Situation (a)	Assumed Situation (b)
	Rs.	Rs.	Rs.
Earnings before interest and tax (EBIT)	2,00,000	1,50,000	2,50,000
Less : Interest on Debts	Nil	Nil	Nil
Earnings before tax (EBT)	2,00,000	1,50,000	2,50,000
Less : Tax	60,000	45,000	75,000
Earnings after tax (EAT) (Available for equity share holders)	1,40,000	1,05,000	1,75,000
No. of equity shares	1,00,000	1,00,000	1,00,000
Earnings per share (EPS)	1.40	1.05	1.75
Percentage change in EPS		(-)25%	(+)25%
Percentage change in EBIT		(-)25%	(+)25%
Degree of financial leverage (DFL)			
Formula :			
Percentage change in IPS / Percentage change in EBIT		$\frac{-25\%}{-25\%}=1$	$\frac{25\%}{25\%}=1$

गौरव मशीन लिमिटेड में वित्तीय उत्तोलक की मात्रा एक है, अतः यह कहा जावेगा कि यहाँ वित्तीय उत्तोलक विद्यमान नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वित्तीय उत्तोलक एवं पूँजी संरचना

(Financial Leverage & Capital Strutcture)

पूँजी संरचना (Capital Structure) – का आशय ऋण पूँजी, अधिमान अंश पूँजी तथा सामान्य अंश पूँजी में उचित सामंजस्य से है। अतः वित्तीय प्रबन्धक वैकल्पिक पूँजी संरचनाओं की परस्पर तुलना करते हुए सर्वोत्तम पूँजी संरचना अपनाने का प्रयत्न करता है। सर्वोत्तम पूँजी संरचना का मुख्य उद्देश्य न्यूनतम लागत पर पूँजी प्राप्त करते हुए सामान्य अंशधारियों को अधिकतम लाभ पहुँचाना होता है। एक कम्पनी अपने वित्तीय साधनों में वृद्धि विभिन्न प्रकार के साधनों से एवं विभिन्न अनुपातों में कर सकती है, जैसे – (i) केवल समता अंश पूँजी का प्रयोग, (ii) केवल अधिमान अंश पूँजी का प्रयोग] (iii) केवल ऋण–पूँजी का प्रयोग] (iv) एक से अधिक साधनों का एक साथ प्रयोग। अब समस्या यह है कि प्रबन्धक इन विभिन्न विकल्पों में से किस विकल्प का प्रयोग करें। इस हेतु प्रति अंश अर्जनों को स्थायी पूँजी लागत (स्थायी वित्तीय व्यय) किस प्रकार प्रभावित करते हैं, यह ज्ञात करने के लिए EBIT o EPS में सम्बन्ध स्थापित कर अध्ययन किया जाता है।

Illustration :

विजय श्री लिमिटेड को अपने परिचालन हेतु 10,00,000 रुपये की आवश्यकता है। पाँच वैकल्पिक वित्तीय विकल्प उपलब्ध हैं–

An investment of Rs. 10,00,000 is required to set up the operations of a Vijayshree Ltd. Five alternative financial options are as follows :

Case A : All equity financing (Equity Share Capital of Rs. 10,00,000).

Case B : Rs. 8,00,000 of equity share capital and Rs. 2,00,000 of debt financing.

Case C : Rs. 6,00,000 of equity share capital and Rs. 4,00,000 of debt financing.

Case D : Rs. 4,00,000 of equity share capital and Rs. 4,00,000 of debt and Rs. 2,00,000 of preference share capital.

Case E : Rs. 4,00,000 of equity share capital, and Rs. 6,00,000 of preference share capital.

ऋण पर ब्याज दर तथा पूर्वाधिकार अंशो पर लाभांश दर 10 प्रतिशत है। ब्याज व कर पूर्व आय 1,50,000 रुपये माने। कर की दर 30ः तथा समता अंशों का सम–मूल्य 100 रुपये प्रति अंश है। फर्म द्वारा किस वित्तीय विकल्प को चुना जाय।

The interest rate on debts and divided rate on preference share is 10 percent. Assume that earnings before interest and tax (EBIT) would amount at Rs. 1,50,000. The tax rate is 30% and the per value of equity share is Rs. 100Which financial option should be selected by the firm?

Solution :

Computation of EPS under various Financial Operations

Particulars	Various Financial Operations				
	A	B	C	D	E
EBIT	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.	Rs.
Less : Interest	1,50,000	1,50,000	1,50,000	1,50,000	1,50,000
	-	20,000	40,000	40,000	-
Earnings before rax (EBT)	1,50,000	1,30,000	1,10,000	1,10,000	1,50,000
Less : Taxes (30%)	45,000	39,000	33,000	33,000	45,000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Earnings after tax (EAT)	1,05,000	91,000	77,000	77,000	1,05,000
Less : Preference divided	-	-	-	20,000	60,000
Earnings available to equity shareholders Number of equity shares	1,05,000	91,000	77,000	57,000	45,000
	10,000	8,000	6,000	4,000	4,000
Earnings per share	10.50	11.375	12.83	14.25	11.25

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि विकल्प D' सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि वहाँ प्रति सामान्य अंश अर्जन सर्वाधिक है। उपर्युक्त उदाहरण के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि कुल पूँजी 10,00,000 रु. है तथा अर्जनों की राशि 1,50,000 रु. है। अतः अर्जन दर 15% है। स्थायी पूँजी लागत 10ः है, अतः उच्च वित्तीय उत्तोलक संस्था के हित में होगा। विकल्प D' व E' दोनों में ही स्थायी लागत पूँजी की राशि 6,00,000 रु. है, लेकिन विकल्प D' में 4,00,000 रु. के ऋण–पत्र तथा 2,00,000 रु. के अधिमान अंश हैं जबकि विकल्प E' में सम्पूर्ण 6,00,000 रु. के अधिमान अंश ही हैं। विकल्प D' में ऋण–पत्रों पर ब्याज खर्चे के रूप में माना जाता है, अतः यहाँ आय–कर की बचत होती है, लेकिन E' में अधिमान अंशों पर लाभांश देने से पूर्व आय–कर देना आवश्यक है, अतः प्रति सामान्य अंश E' विकल्प की अपेक्षा D' विकल्प में अधिक है।

वित्तीय सम–विच्छेद बिन्दू से तात्पर्य उस स्तर से है, जहाँ पर EBIT की राशि स्थायी वित्तीय व्ययों के ठीक बराबर होती है। अर्थात् यह वह स्तर है, जहाँ पर EBIT में से स्थायी वित्तीय व्ययों को घटा देने के पश्चात् समता अंशधारियों के लिए कोई राशि शेष नहीं बचती और प्रति अंश अर्जन (EPS)– शून्य होती हैं।

अन्य शब्दों में– EBIT का वह स्तर जहाँ फर्म केवल अपने स्थयी वित्तीय व्ययों की पूर्ति कर पाती है, वित्तीय सम–विच्छेद बिन्दु कहलाता है। यदि EBIT, इस स्तर से कम होती अर्थात् स्थायी वित्तीय व्यय EBIT से अधिक होंगे तो फर्म को हानि दर्शायेगी।

स्थायी वित्तीय व्ययों में ब्याज व अधिमान लाभांश की राशि को सम्मिलित किया जाता है। अधिमान अंश पूँजी पर लाभांश स्थायी लागत में सम्मिलित किया जाता है तथा इसका प्रभाव EBIT पर ज्ञात किया जाता है। अतः अधिमान अंशधारियों को दिये गये लाभांश में '1–कर दर' का भाग देकर यह सकल राशि ज्ञात की जाती है।

यदि स्थायी वित्तीय व्ययों में वृद्धि होती है तो सम–विच्छेद बिन्दु में भी स्थायी वित्तीय लागतों के बराबर वृद्धि हो जायेगी। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि EBIT में अनुपातिक वृद्धि की अपेक्षा म्दै में आनुपातिक वृद्धि अधिक होती है। इसका कारण यह हे कि EBIT में तो वृद्धि होती है, किन्तु स्थायी वित्तीय व्यय ज्यों के त्यों ही (पूर्व के अनुसार) बने रहते हैं, अतः EBIT में जितनी वृद्धि होती है, उस पर कर घटाने के पश्चात् जो भी शेष रहता है, वह सभी सामान्य अंशधारियों को ही प्राप्त होता है, अतः म्दै में आनुपातिक वृद्धि दर अधिक होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तटस्थता बिन्दु का निर्धारिण

(Determination of Indifference Point)

तटस्थता बिन्दु ब्याज एवं कर से पूर्व आय (EBIT) का वह स्तर होता है जिस पर विभिन्न ऋण समता मिश्रणों (Debt.equity-mix) के अन्तर्गत प्रति अंश अर्जन समान (या अपरिवर्तित) रहती है। एक संस्था तटस्थता बिन्दु पर उस समय होती है, जबकि उसकी अर्जन दर तथा ब्याज दर समान हो। यदि विनियोग पर अर्जन दर (ROI) ब्याज दर के बराबर है तो ऐसी स्थिति में प्रति अंश अर्जन उत्तोलक स्तर से अप्रभावित रहेगी। तटस्थता बिन्दु का निर्धारण अग्र सूत्र के माध्यम से किया जा सकता है–

सूत्र रूप में–

$$\frac{(X - i_1)(1 - T)}{S_1} = \frac{(X - i_2)(1 - T)}{S_2}$$

सूत्र में–

X = EBIT का तटस्थता बिन्दु

i1 = प्रथम विकल्प में ब्याज की राशि

i2 = द्वितीय विकल्प में ब्याज की राशि

T = कर दर

S1 = प्रथम विकल्प में समता अंशों की संख्या

S2 = द्वितीय विकल्प में समता अंशों की संख्या

Illustration :

दी ब्राउन 50 लाख रुपये के अतिरिक्त वित्त की व्यवस्था या तो 10% ऋण–पत्र निर्गमन द्वारा अथवा 50 रुपये प्रति अंश की दर से अतिरिक्त समता पूँजी निर्गमन कर सकती है। कम्पनी का वर्तमान पूँजी ढाँचा 10 लाख समता अंशों से बना है तथा कोई ऋण नहीं है। ब्याज व कर पूर्व आय (EBIT) के किस स्तर पर प्रति अंश आय (EPS) समान होगी चाहे साधन समता अंश निर्गमन द्वारा अथवा ऋण–पत्र निर्गमन द्वारा एकत्र किये जावें? निगम कर की दर 30% मानिये

The Brown Company has the choice for raising an additional sum of Rs. 50 lakhs either by the sales of 10% debentures or by issue of additional equity shares at Rs. 50pe share. The current capitalisation structure of the company consists of 10 lakhs ordinary shares and no debts. At what level of Earnings before Interest and Tax (EBIT) after the new capital is acquired, would Earnings Per Share (EPS) be the same whether new funds are raised either by issuing ordinary shares or by issuing debentures ? Assume that corporate tax rate is 30 %.

Solution :

Alternative 1 : 10% debentures : Rs. 50 lakhs

Alternative 2 : Equity Share (Additional) : Rs. 1,00,000 shares of Rs. 50 each.

Exisiting Capital Structure : 10,00,000 Equity Shares of Rs. 50 each. No. debt.

Proposed : Alternative 1 : Rs. 500 Lakhs Equity Share Capital

+ Rs. 50 lakhs debentures

Proposed : Alternative 2 : Rs. 500 lakhs + Rs. 50 lakhs =

Rs. 550 equity share capital i.e. 11,00,000 Shares of Rs. 50 each.

EBIT का वह स्तर जहाँ पूँजी संरचना के दोनों स्तरों पर EPS समान होगी, का निर्धारण निम्न सूत्र से किया जा सकता है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$\frac{(X-i_1)(1-T)}{S_1} = \frac{(X-i_2)(1-T)}{S_2}$$

सूत्र में मूल्य रखने पर–

$$\frac{(X-5{,}00{,}000)(1-\frac{30}{100})}{10{,}00{,}000} = \frac{(X-0)(1-\frac{30}{100})}{11{,}00{,}000}$$

or $$\frac{(X-5{,}00{,}000)(0.7)}{10{,}00{,}000} = \frac{(X)(0.7)}{11{,}00{,}000}$$

or $$\frac{0.7x-3{,}50{,}000}{10{,}00{,}000} = \frac{0.7X}{11{,}00{,}000}$$

or 7,70,000 X-3,85,00,00,000 = 7,00,000 X

or 70,000 X = 85,00,00,00,000

or X = Rs. 55,00,000

अतः EBIT = 55,00,000 पर दोनों विकल्पों में EPS समान होगा।

Proof :

	Alternative- 1	Alternative - 2
EBIT	Rs. in lakhs	Rs. in lakhs
Less : Int. on Debentures	55.00	55.00
Profit Before Tax (PBT)	5.00	----
Tax 30%	50.00	55.00
Profit After Tax (PAT)	15.00	16.50
	35.00	38.50
EPS	$\frac{35{,}00{,}000}{10{,}00{,}000} = Rs.3.50$	$\frac{38{,}50{,}000}{11{,}00{,}000} = Rs.3.50$

(3) संयुक्त उत्तोलक

(Combined Leverage)

स्थायी परिचालन व्यय एवं स्थायी वित्तीय व्ययों के आधार पर कुल उत्तोलक ही संयुक्त उत्तोलक (Combined Leverage or Composite Leverage) के नाम से जाना जाता है। इसकी गणना परिचालन उत्तोलक की मात्रा ;क्व्स्द्ध तथा वित्तीय उत्तोलक की मात्रा (DFL) के सूत्रों से ही की जाती है।

EBIT का एक ही स्तर दिया होने पर संयुक्त उत्तोलक की मात्रा निम्न प्रकार ज्ञात की जा सकती है–

Combined Leverage = Operating Leverage X Financial Leverage

अथवा

$$\text{Combined Leverage} = \frac{\text{Combined}}{\text{EBIT}} X \frac{\text{EBIT}}{\text{EBIT}} = \frac{\text{Contribution}}{\text{EBIT}}$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संयुक्त उत्तोलक की मात्रा (Degree of Composite Leverage)

संयुक्त उत्तोलक की मात्रा की गणना हेतु परिचालन उत्तोलक की मात्रा तथा वित्तीय उत्तोलक की मात्रा को परस्पर गुणा किया जाता है। सूत्र रूप में :

Degree of Combined Leverage (DCL) = Degree of Operating Leverage X Degree of Financial Leverage

अथवा

$$DCL = \left(\frac{\%ChangeinEBIT}{\%ChangeinSales}\right) X \left(\frac{\%ChangeinEPS}{\%ChangeinEBIT}\right) = \frac{\%ChangeinEPS}{\%ChangeinSales}$$

संयुक्त उत्तोलक बिक्री के कारण अंशदान तथा कर पूर्व अर्जन (EBT) में सम्बन्ध दर्शाता है। संयुक्त उत्तोलक की मात्रा द्वारा बिक्री में प्रतिशत परिवर्तन के फलस्वरूप प्रति अंश अर्जनों में होने वाले प्रतिशत परिवर्तन का माप किया जता है।

Illustration :

राजस्थान लिमिटेड का चिट्ठा निम्न प्रकार है–

The Rajasthan Limited's balance sheet is as follows :

Liabilities	Amount Rs.	Assets	Amount Rs.
Equity Capital	1,20,000	Net Fixed Assets	3,00,000
(Rs. 10 per share)		Current Assets	1,00,000
10% Long-term debts	1,60,000		
Retained Earnings	40,000		
Current Liabilities	80,000		
	4,00,000		4,00,000

कम्पनी का कुल सम्पत्ति आवर्त अनुपात 3.0 है। इसकी स्थायी परिचालन लागत 2,00,000 रुपये है तथा इसकी परिवर्तनशील लागत अनुपात 40% है । आय कर की दर 30% है।

कम्पनी के लिए तीनों प्रकार के उत्तोलकों की गणना कीजिए।

The Company's total assets turnover ratio is 3.0, its fixed operating costs are Rs. 2,00,000 and its variable operating costs ratio is 40%. The income tax rate is 30%.

Calculate of the company, all the three types of leverages.

Solution :

Income Statement of Rajasthan Limited

	Rs.
Sales	12,00,000
Less : Variable Costs (being 40% of sales)	4,80,000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Contribution	7,20,000
Less : Fixed Costs	2,00,000
EBIT	5,20,000
Less : Interest Cost	16,000
EBT	5,04,000
Less : Taxes @ 30%	1,51,200
Earning After Taxes (EAT)	3,52,800

Degree of Operating Leverage (DOL) :

$$DOL = \frac{Sale - VariableCosts}{EBIT}$$

$$= \frac{12,00,000 - 4,80,000}{5,20,000} = \frac{7,20,000}{5,20,000} = 1.385 approximately$$

(ii) Degree of Financial Leverage (DFL) :

$$DOL = \frac{EBIT}{EBIT - Fixed\ Interest\ Charges\ or 1}$$

$$= \frac{5,20,000}{5,20,000 - 16,000} = \frac{5,20,000}{5,04,000} = 1.032 approximately$$

(iii) Degree of Combined Leverage ratio = (DCL) :

DCL = DOL X DFL = 1.385 X 1.032 = 1.429 approximately

Working Note :

$$\text{Total Assets turnover ratio} = \frac{Sales}{TotalAsseis}$$

$$3 = \frac{Sales}{4,00,000}$$

sales = 3 X 4,00,000 = Rs. 12,00,000.

Illustration :

एक कम्पनी का विक्रय 1 लाख रुपये है। परिवर्तनशील लागतें विक्रय का 40: है जबक स्थायी लागतें 30,000 रुपयें है। दीर्घकालीन ऋण पर ब्याज 10,000 रुपये है।

आप संयुक्त उत्तोलक की गणना कीजिये तथा इसका प्रभाव प्रदशित कीजिये यदि विक्रय 5% बढ़ जाय।

A Company has sales of Rs. 1 lakh. The variable costs are 40% of the sales while the fixed operating costs amounts to Rs. 30,000. The amount of interest on long-term debt is Rs. 10,000.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

You are required to calculate the composite leverage and illustrate its impact if sales increase by 5 %.

Solution :

Statement Showing Computation of Composite Leverage

sales	Rs.
Less : Variable Costs (40% of sales)	1,00,000
Contribution (C)	40,000
Less : Fixed Operating Costs	60,000
Earning Before Interest and Tax (EBIT) or	30,000
Operating Profit (OP)	
Less : Interest	30,000
Taxable Income (PBT)	10,000
Composite Leverage = $\frac{C}{PBT} = \frac{Rs.60000}{Rs.20000} = 3$	20,000

संयुक्त उत्तोलक '3' यह दर्शाता है कि विक्रय में प्रत्येक 1% वृद्धि से कर पूर्व अर्जन (EBT) में 3% की वृद्धि होगी। इसको निम्न गणना की सहायता से प्रमाणित किया जा सकता है, जबकि विक्रय 5: बढ़ता है।

	Rs.
Sales	1,05,000
Less : Variable costs	42,000
Contribution (C)	63,000
Less : Fixed Operating costs	30,000
Earning before interest and tax (EBIT)	33,000
or operating profit (OP)	10,000
Less : Interest	
Taxable Income (EBT)	23,000

उपर्युक्त गणनाओं से स्पष्ट है कि विक्रय में 5% वृद्धि होने से कर पूर्व अर्जनों (EBT) में 15% वृद्धि हुई। इसकी गणना निम्नानुसार होगी–

$$\text{Increase in EBT} = \frac{Increase\ in\ EBT}{Base\ EBT} \times 100$$

$$= \frac{23{,}000 - 20{,}000}{20{,}000} \times 100$$

$$= 15\%$$

Illustration :

निम्न समंक राम एण्ड कम्पनी लिमिटेड से सम्बन्धित है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

The following data relate to Ram & Co. Limited :

	Rs.
Sales	2,00,000
Less : Variable expenses (30%)	60,000
Contribution	1,40,000
Fixed Operating expenses	1,00,000
EBIT	40,000
Less : Interest	5,000
Taxable incoem (EBT)	35,000

1. संयुक्त उत्तोलक की अवधारणा को प्रयुक्त करते हुए बताइये कि विक्रय में 6% वृद्धि होने पर कर योग्य आय कितने प्रतिशत बढ़ेगी।
2. परिचालन उत्तोलक अवधारणा प्रयुक्त करते हुए बताइये कि विक्रय में 10% वृद्धि होने पर कर योग्य में कितनी : वृद्धि होगी?
3. वित्तीय उत्तोलक अवधारणा प्रयुक्त करते हुए बताइये कि म्ठप्ज में 6% वृद्धि होने पर कर योग्य आय कितनी % बढ़ेगी।

1. Using the concept of combined leverage, by what percentage will taxable income increase if sales increase by 6 percent ?

2. Using the concept of operating leverage, by what percentage will EBIT increase if there is a 10 percent increase in sales ?

3. Using the concept of financial leverage, by what percentage will taxable income increase if EBIT increase by 6 percent ?

Solution :

Degree pf Composite leverage on sales level of Rs. 2,00,000.

$$\frac{Contribution}{EBT} = \frac{Rs.140000}{Rs.\ 35000} = 4$$

If the sales increase by 6 percent, taxable income will increase by 4 X 6 = 24 percent :

Working :

	Rs.
Sales	2,12,000
Less : Variable expenses (30%)	63,000
Contribution	1,48,400
Less : Fixed Expenses	1,00,000
EBIT	48,400
Less : Interest	5,000
Taxable income or EBIT	43,400

Increase in Taxable Income = 43,400 - 35,000 = $\frac{8400\,x100}{35000}$ = 24 %

(2) Degree of operating leverage on sales level of Rs. 2,00,000 :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$\frac{Contribution}{EBIT\ or\ Operating\ Income} = \frac{140000}{40000} = 3.5$$

If sales increase by 10% EBIT will increase by 3.5 X 10 = 35 percent :

Working :

Sales	Rs.
Less : Variable Expenses	2,20,000
Contribution	66,000
Less : Fixed Expenses	1,54,000
EBIT	1,00,000
	54,000

Increas in EBIT Rs. 54,000- Rs. 40,000 or $\frac{14000\,x100}{40000} = 35\%$

(3) Degree of financial leverage $\frac{EBIT}{EBT} = \frac{40000}{35000} = 1.143$

If EBIT increases by 6 percent, taxable income will increase by 1.143 X 6 = 6.86 percent.

Working :

	Rs.
EBIT	40,000
Add : 6%	2,400
	42,400
Less : Interest	5,000
Taxable income or EBT	37,400
Increase in taxable income Rs. 37,400 – Rs. 35,000 or $\frac{24,00X100}{35,000}$ = 6.86%	

Illustration :

अभिताभ लिमिटेड के 31 मार्च, 2011 को समाप्त होने वाले वर्ष के विवरण नीचे दिये गये है–

The following details of Amitabh Ltd. for the year ended 31st March, 2011 are furnished below :

Operating leverage	3
Financial leverage	2
Interest charges per annum	Rs. 20 lakhs
Corporate tax rate	30%

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

Variable cost as percentage of sales 60%

Prepare the Income statement of the company

Solution :

$$\text{Financial Leverage} = \frac{EBIT}{EBT} = 2$$

$$\left(\frac{\text{EBIT}}{\text{EBIT} - \text{Interest}}\right) = 2$$

$$\left(\frac{\text{EBIT}}{\text{EBIT} - 20}\right) = 2$$

EBIT = 2 (EBIT – 2)

EBIT = 2EBIT – 40

2EBIT- EBIT = 40

EBIT = 40

Operating Leverage :

$$\left(\frac{Contribution}{EBIT}\right) = 3$$

$$\left(\frac{Contribution}{40}\right) = 3$$

Contribution = 3x40 = Rs. 120 lakhs

Calculation of Fixed Cost

(Rs lakhs)

Contribution	120
Less : EBIT	10
Fixed Cost	80

variable Cost = 60 % of Sales

Contribution is 40% of Sales

If 40% is Rs. 120 lakhs

$$100\% = \left(\frac{100}{40} x 120\right) = Rs.300\, lakhs\, Sales$$

Income Statement of Amitabh Ltd. for the Year ended 31-3-2011 (Rs. lakhs)

Sales	300
Less : Variable Cost	180
Contribution	120
Less : Fixed Cost	80

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

EBIT Less : Interest	40 20
EBT Less : Tax @ 30 %	20 6
PAT	14

Illustration :

एक कम्पनी का परिचालन उत्तोलक पिछले वर्ष के 1.25 की तुलना में 1.2 है। यदि वर्तमान स्थायी लागत पिछले वर्ष की तुलना में 25% अधिक हो तो बताइये कि कम्पनी द्वारा कमाये गये अंशदान में पिछले वर्ष की तुलना में कितना परिवर्तन हुआ?

A company has an operating leverage of 1.2 as against 1.25 during the previous year. If the current fixed cost is 25% more than that of the previous year, to what extent has the contribution earned by the firm changed over the previous year ?

Solution :

$$\text{Operating Leverage} = \frac{Contribution}{Contribution - Fixed\ cost}$$

Last year

$$1.25 = \frac{C}{C-F}$$

1.25 (C-F) = C

1.25C – 1.25F = C

1.25C-C = 1.25F

0.25C = 1.25F

C = 5F

Current year

$$1 = \frac{C}{C-1.25F}$$

1.20 (C-1.25F) = C

1.20C – 1.5F = C

1.20C-C = 1.5F

0.20C = 1.5F

C = 7.5F

Increase in contribution in current year over last year

$$= \frac{Current year contribution - Last year contribution}{Last year contribution}$$

$$= \frac{7.5F - 5F}{5F} x100 = \frac{2.5F}{5F} x100 = 50\%$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

50% increase in contribution over last year.

Illustration :

यदि संयुक्त उत्तोलक एवं परिचालन उत्तोलक क्रमशः 2.5 और 1.25 हो तो वित्तीय उत्तोलक एवं लाभ मात्रा अनुपात ज्ञात कीजिए। समता लाभांश प्रति अंश 2रु. प्रति वर्ष देय ब्याज एक लाख रु., कुल स्थायी लागत 0.5 लाख रु. तथा विक्रय 10 लाख रु. है।

If the combined leverage and operating leverage figures of a company are 2.5 and 1.25 respectively, find the financial leverage and P/V ratio given that the equity divided per share is 2, interest payable per year is Rs. 1 lakh total fixed cost Rs, 0.5 lakh and sales Rs. 10 lakhs.

Solution :

Calculation of Financial Leverage :

Combined leverage = Operating leverage X Financial leverage

= 1.25 X Financial leverage

$$\text{Financial leverage} = \frac{2.5}{1.25} = 2$$

Calculation of P/V ratio :

$$\text{P/V ratio} = \frac{Contribution}{Sales}$$

$$\text{Operating Leverage} = \frac{Contribution}{Contribution - FixedCost}$$

$$1.25 = \frac{X}{X - 50{,}000}$$

1.25 (X-50,000) = X

1.25x – 62,500=X

1.25X-X = 62,500

0.25X- X = 62,500

$$X = \frac{62{,}500}{0.25}$$

X = 2,50,000

∴ Contribution = Rs. 2,50,000

$$\text{P/V ratio} = \frac{2{,}50{,}00}{10{,}00{,}000} X 100 = 25\%$$

Illustration :

31 मार्च, 2011 को समाप्त वर्ष के लिए सुजानगढ लि. का चिट्ठा निम्नानुसार है–

Sujangarth Ltd. had the following Balance Sheet for the year ended 31st March, 2011.

(Rs. lakhs)

Liabilities	Rs.	Assets	Rs.
Equity Capital		Fixed Assent (net)	25

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(One lakh shares of Rs. 10 each)	10	Current Assets	15
Reserves and Surplus	2		
15% Debentures	20		
Current Liabilities	8		
	40		40

अतिरिक्त सूचनाएँ (Additional information):

Fixed costs per annum (excluding interest) : Rs. 8 lakhs

Variable Operating Cost Ratio : 80%

Total Asset Turnover : 3

Income-tax : 30%

Required (i) Earning per share (ii) Operating Leverage (iii) Financial leverage (iv) Combined Leverage.

Solution :

(i) Total Assets : Rs. 40 lakhs

Taotal Asset Turnover ; 3

Hence Total Sales = Rs. 40 Lakhs x 3 : Rs. 120 lakhs

Caclulation of Profit after tax (PAT) (Rs. Lakhs)

Sales	120.00
Vaviable Cost (@ 80%)	96.00
Contribution	24.00
Less : Fixed Costs	8.00
Net Profit (EBIT)	16.00
Less : Interest on debentures	3.00
Profit before tax (PBT)	13.00
Tax @ 30%	3.90
PAT	9.10

Hence Earnings per share = $\frac{9{,}10{,}000}{1{,}00{,}000} = 9.10\, pershare$

(ii) Operating Leverage = $\frac{Contribution}{EBIT} = \frac{24}{16} = 15$

(iii) Financial Leverage = $\frac{EBIT}{PBT} = \frac{16}{13} = 1.23$

(iv) Combined Leverage = $\frac{Contribution}{EBIT} X \frac{EBIT}{PBT} = 1.5X1.23 = 1.23 = 1.85$

Illustration :

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दो कम्पनियों से संबंधित आँकड़े निम्नलिखित है –

The following figures relate to two companies : (Rs. lakhs)

Particulars	A Ltd.	B Ltd.
Sales	1500	1,000
Variable costs	600	300
Contribution	900	700
Fixed Cost	450	400
Earning Before Interest & Tax	450	300
Interest	150	100
Profit before Tax	300	200

आपको (i) दोनों कम्पनियों का परिचालन, वित्तीय एवं संयुक्त उत्तोलक ज्ञात करना है तथा (ii) उनकी सापेक्षिक जोखिम स्थिति पर टिप्पणी करनी है।

You are required to : (i) Calculate the operating financial and combined Leverage for the two companies; and (ii) Comment on the relative risk position of them.

Solution :

Calculation of Leverage

(a) Operating Leverage = $\frac{Contribution}{Earningsbefore\,\text{int}\,eres\,\tan\,dtax}$

A Ltd. = Rs. 900 lakhs / Rs. 450 lakhs = 2

B Ltd. = Rs. 700 lakhs / Rs. 300 lakhs = 2.33

(b) Financal Leverage = $\frac{Earningsbefore\,\text{int}\,eres\,\tan\,dtax}{Earningsbeforetax}$

A Ltd. = Rs. 450 lakhs / Rs. 300 lakhs = 1.5

B Ltd. = Rs. 300 lakhs / Rs. 200 lakhs = 1.5

(c) Cobined Leverage = $\frac{Contribution}{Earningsbeforetax}$

A Ltd. = Rs. 900 lakhs / Rs. 300 lakhs = 3

B Ltd. = Rs. 700 lakhs / Rs. 200 lakhs = 3.5

Combined Leverage is also calculated as follows :

Combined Leverage = Operating Leverage x Financial Leverage

A ltd. = 2x1.5 = 3

B ltd. = 2.33x1.5 = 3.5

जोखिम स्थिति पर टिप्पणी :

(i) A लिमिटेड व B लिमिटैड की सापेक्षिक जोखिम स्थिति –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(अ) परिचालन उत्तोलक रू B लिमिटेड का परिचालन उत्तोलक । लिमिटेड से ज्यादा है अतः B लिमिटेड की व्यावसायिक जोखिम । लिमिटैड से अधिक है।

(ब) वित्तीय उत्तोलक : दोनों कम्पनियों का वित्तीय उत्तोलक एक समान है।

(स) संयुक्त उत्तोलक : यदि दोनों कम्पनियों की सम्पूर्ण जोखिम को देखा जाए तो B लिमिटेड की जोखिम। लिमिटेड से अत्यधिक है।

Illustration :

स्थिति I व II तथा वित्तीय योजना । व **B** के अन्तर्गत निम्नलिखित समंकों से परिचालन उत्तोलक वित्तीय उत्तोलक एवं संयुक्त उत्तोलक की गणना कीजिये–

Calculate the operating leverage ; financial leverage and combined leverage from the following data under Situation I and II and Financial Plans A and B.

Installed Capicity	4,000 units	Fixed Cost :	
Actual Production		Under Situation I	Rs. 15,000
and Sales	75% of the Capaticy	Under Situation II	Rs. 20,000
Selling Price	Rs. 30 per Unit		
Variable Cost	Rs. 15 Per Unit		

Capital Structure :

Particulars	Financial Plan	
	A	B
Equity	10,000	15,000
Debt (Rate of Interest at 20%)	10,000	5,000
	20,000	20,000

Solution :

(i) Operating Leverage = $\frac{\text{Contribution}}{\text{Operating Profit or EBIT}}$

Particulars	Situation I	Situation II
Sales (3,000 units @ Rs. 30 per unit)	90,000	90,000
Less : Variable Cost (3,000 units @ 15 per unit)	45,000	45,000
Contribution	45,000	45,000
Less : Fixed Costs	15,000	20,000
Operationg Profit (EBIT)	30,000	25,00
Operation Leverage	$\frac{45,000}{30,000}=1.5$	$\frac{45,000}{25,000}=1.8$

(ii) Financial Leverage = $\frac{\text{Operating Profit or EBIT}}{\text{Earnings before Tax or EBT}}$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Particulars	Financial Plan	
	A	B
Operating Profit in Situation II	25,000	25,000
Less : Interest on debt	2,000	1,000
Earnings before tax (EBT)	23,000	24,000
Financial Leverage	$\frac{25,000}{23,000}=1.09$	$\frac{25,000}{24,000}=1.04$

Calculation of Combined Leverage :

Combined leverage = Operating Leverage x Financial Leverage

Particulars	Financial Plan	
	A	B
Situation I	(1.5 x 1.09) = 1.635	(1.5 x 1.04) = 1.56
Situation II	(1.8) x (1.09) = 1.96	(1.8 x 1.04) = 1.87

Illustration : एक फर्म की बिक्री 75,00,000 रु. परिवर्तनशील लागत 42,00,000 रु. स्थायी लागत 6,00,000 रु., 9% ब्याज पर ऋण 45,00,000 रु. तथा समता पूँजी 55,00,000 रु. है। परिचालन, वित्तीय एवं संयुक्त उत्तोलक की गणना कीजिए।

A firm has sales of Rs. 75 lakh, variable cost Rs. 42 lakh, fixed cost of Rs. 6 lakhs, debt of Rs. 45 lakh at 9% and equity capital Rs. 55 lakh. Calculate Operationg financial and Combined leverage.

Solution : Calculationg of operationg financial and combined leverage.

(a) Operating Leverage = $\frac{Contribution}{EBIT}=\frac{33,00,000}{27,00,000}=1.22$

(b) Financial Leverage = $\frac{EBIT}{PBT}=\frac{27,00,000}{22,95,000}=1.18$

(c) Combined Leverage = $\frac{Contribution}{EBT}=\frac{33,00,000}{22,95,000}=1.44$

Working Notes :

Calculation of EBIT and EBT

	Rs.
Sales	75,00,000
Less : Variable Cost	42,00,000
Contribution	33,00,000
Less : Fixed costs	6,00,000
EBIT	27,00,000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Less : Interest on debt @ 9% on Rs. lakhs)	4,05,000
EBT	22,95,000

Illustration :

श्रीनाथ लिमिटेड का सरलीकृत आय विवरण नीचे दिया गया है। परिचालन उत्तोलक की मात्रा, वित्तीय उत्तोलक की मात्राा तथा संयुक्त उत्तोलक की मात्रा की गणना कीजिये –

A simplified income statement of Srinath Ltd is given below. Calculate and interpret indegree of operating leverage, degree of financial leverage and degree of combined leverage

SRINATH LTD.

Income Statement for the year to 31st March, 2011

	Rs.
Sales	10,50,000
Less : Variable Cost	7,67,000
Contribution	2,83,000
Less : Fixed Cost	75,000
EBIT	2,08,000
Less : Interes	1,10,000
EBT	98,000
Less : Taxes @ 30 %	29,400
Net Income	68,600

Solution :

(i) Operationg Leverage :

$$= \frac{\text{Contribution}}{\text{Earnings before interst and tax (EBIT)}}$$

Contribution = Sales – Variable Cost

= Rs. 10,50,000 – Rs. 7,67,000= Rs. 2,83,000

EBIT = Sales – Variable cost – Fixed cost

= Rs. 10,50,000 – Rs. 7,67,000- Rs. 75,000= Rs. 2,08,000

$$\text{Operating leverage} = \frac{2,83,000}{2,08,000} = 1.36$$

Degree of Operating Leverage

विक्रय में 1% परिवर्तन से EBIT में 1.36% परिवर्तन होगा।

(ii) Financial Leverage :

$$= \frac{\text{Earning before interest and Tax}}{\text{Earnings before tax}}$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Earning before Tax = Net Income + Tax = Rs. 68,000+29,400 = Rs. 98,000

$$\text{Financial Leverage} = \frac{2,08,000}{98,000} = 2.12$$

Degree of Financial leverage EBIT में 1: परिवर्तन से EBT में 2.12% परिवर्तन होगा।

(iii) Combined Leverage :

= Operating leverage x Financial Leverage

= 1.36 x 2.12 = 2.88

Degree of Combined Leverage

विक्रय में 1% परिवर्तन से EBT में 2.88% परिवर्तन होगा।

प्ससनेजतंजपवद रू

जसवन्तगढ़ लिमिटेड़ की पूँजी सरंचना में 10रु.वाले, 12,000 समता अंश तथा 1,60,000 रु. के 10: ऋण–पत्र हैं। जबकि कम्पनी की कुल सम्पत्तियाँ 4,00,000 रु. है। कम्पनी का कुल सम्पत्ति आवर्त 3 है। इसकी स्थिर परिचालन लागतें 2,00,000 रु. तथा परिवर्तनशील परिचालन परिचालन लागतों का बिक्री से अनुपात 40% है। आयकर की दर 30% है।

कम्पनी के लिए तीनों प्रकार के उत्तोलकों की गणना कीजिये।

The Jaswantgarh Leimited's capital strcture consists 12,000 equity shares of Rs. 10 each and 10% debentures of Rs. 1,60,000 whereas the total assets of the Company are Rs. 4,00,000. The Company total asset turnover ratio is 3. Its Its fixed operating costs are Rs. 2,00,000 and its variable operating costs ratio to sales is 40%. The income tax rate is 30%

Calculate for the Company all the three types of leverage

Solution :

Income Statement of Jaswantgarh Limited.

	Rs.
Sales	12,00,000
Less : Variable Costs (40% of sales)	4,80,000
Contribution (C)	7,20,000
Less : Fixed Costs	2,00,000
Operationg Profit (EBIT)	5,20,000
Less : Interest	16,000
Earning bofore Tax (PBT)	5,04,000
Less : Tax @ 30 %	1,51,200
Net Profit	3,52,800

$$\text{(i) Operating Leverage} = \frac{\text{Contribution}}{\text{EBIT}}$$

$$= \frac{7,20,000}{5,20,000} = 1.385$$

$$\text{(ii) Financial Leverage} = \frac{\text{EBIT}}{\text{EBT}} \text{ or } \frac{\text{EBIT}}{\text{EBIT} - \text{Interest}}$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$= \frac{5,20,000}{5,20,000 - 16,000}$$

$$= \frac{5,20,000}{5,04,000} = 1.032$$

(iii) Combined Laverage = Operating laverage X Financial Leverage

= 1.385 X 1.032 = 1.429

fVIi.kh & (i) Calculation of Sales :

$$\text{Total Asset Turnover Ratio} = \frac{\text{Sales}}{\text{Total Assets}}$$

$$3 = \frac{\text{Sales}}{4,00,000}$$

$\therefore$ Sales = 3x4,00,000 = 12,00,000

Illustration :

निम्नलिखित वित्तीय समंक 'अ' लिमिटेड व 'ब' लिमिटेड द्वारा 31 मार्च 2011 को समाप्त वर्ष हेतु प्रदत्त किये गये हैं –

The following financial data have been furnished by A Ltd. and B Ltd. for the year ended 31-3-2011

	A Ltd.	B Ltd
Operating leverage	3:1	4:1
Financial leverage	2:1	3:1
Interest charges per annum	Rs. 12 lakhs	Rs. 10 lakhs
Corporate tax rate	30%	30%
Variable cost as % of sales	60%	50%

दोनों कम्पनियों का आय विवरण तैयार कीजिए। वित्तीय स्थिति एवं संरचना पर भी टिप्पणी कीजिए।

Prepare income statement of two companies. Also comment on the financial position and structure of the two companies.

A Ltd.	B Ltd.
(i) Financial leverage =2	(i) Financial leverage =3
$\therefore \frac{EBIT}{EBIT - Interest} = 2$	$\frac{EBIT}{EBIT - Interest} = 3$
$\therefore \frac{EBIT}{EBIT - 12} = 2$	$\frac{EBIT}{EBIT - 10} = 3$
2EBIT – 24 = EBIT	3EBIT – 30 = EBIT
EBIT = Rs. 24 lakhs	2EBIT = 30
(ii) Operating leverage =3	

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$\therefore \frac{\text{Contribution}}{\text{EBIT}} = 3$$

$$\frac{\text{Contribution}}{24} = 3$$

Contribution = Rs. 72 lakhs

Again :

(iii) Operating leverage =3

$$\therefore \frac{\text{Contribution}}{\text{Contribution - FC}} = 3$$

$$\frac{\text{Contribution}}{\text{Sales}} = 40\%$$

$$\frac{72}{(72 - FC)} = 3$$

$$216\text{-}3FC = 72$$

$$3FC = 144$$

$$FC = 48$$

$$72 \text{ Sales} = 0.4$$

Sales = Rs. 180 lakhs

$$\text{EBIT} = \frac{30}{2} = 15\text{lakhs}$$

(ii) Operating leverage =4

$$\therefore \frac{\text{Contribution}}{\text{EBIT}} = 4$$

$$\frac{\text{Contribution}}{15} = 4$$

Contribution = Rs. 60 Lakhs

(iii) Operating leverage =4

$$\therefore \frac{\text{Contribution}}{\text{Contribution - FC}} = 4$$

$$\frac{\text{Contribution}}{\text{Sales}} = 50$$

$$\frac{60}{(60 - FC)} = 4$$

$$60 = 4x60 - 4FC$$

$$4FC = 240 - 60$$

$$FC = \frac{180}{4} = 45\text{lakh}$$

Sales = Contribution $x \frac{100}{50}$

= Rs. 60 Lakhs $x \frac{100}{50}$

= Rs. 120 Lakhs

Income statement of A Ltd.	Rs. in Lakhs	Income statement of E Led.	Rs. in Lakhs
Sales	180	Sales	120
Less : Variable cost C 60%	108	Less : Variable cost C 50 %	60
Contribution (@ 40%)	72	Contribution (& 50%)	60
Less : Fixed Cost	48	Less : Fixed cost	45
EBIT	24	EBIT	15
Less : Interest	12	Interest	10
Profit Before Tax (PBT)	12	PBT	5
Tax @ 30%	3.60	Tax @ 30%	15
Profit After Tax	8.40	Profit After Tax	35

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लाभांश नीति
(Dividend Policy)

परिचय
(Introduction)

एक संस्था द्वारा अपनी आय में से समस्त व्ययों एवं आयोजनों को कम करने के पश्चात् शेष राशि, जो इसके अंशधारियों में बाँटी जाती है, लाभांश कहलाती है। लाभांश का वितरण करते समय संचालकों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि न केवल उचित लाभांश का वितरण कर अंशधारियों को सन्तुष्ट रखना चाहिए वरन् कम्पनी अपने भावी विकास एवं विस्तार हेतु कोषों की व्यवस्था भी उचित एवं पर्याप्त मात्रा में कर सकें।

संयुक्त प्रमण्डल या कम्पनी एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सदस्यों से पूँजी प्राप्त करके संस्था का वित्त–पोषण किया जाता है। सदस्य कम्पनी में पूँजी का विनियोग निरन्तर आय प्राप्त करने के उद्देश्य से करते हैं। यह आय उन्हें लाभांश के रूप में प्राप्त होती है। यदि सदस्यों को लाभांश वितरित न किया जाये या प्रचलित दर से कम दर पर लाभांश दिया जाये तो उनमें निराशा होगी तथा वे बचत व विनियोग के प्रति हतोत्साहित होंगे। यदि कम्पनियों अंशधारियों को इतना लाभांश नहीं दे सकतीं जितना वे सामान्यतः विनियोजित राशि पर ब्याज प्राप्त कर सकते हें तो फिर ऐसी कम्पनियों के लिए अतिरिक्त पूँजी की व्यवस्था करना कठिन होगा तथा नयी कम्पनियों के लिए पूँजी जुटाना और भी अधिक कठिन हो जायेगा। अतः लाभांश केवल कम्पनी व उससे सम्बद्ध सदस्यों के लिए ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय बचत को गति प्रदान करने तथा विनियोग को प्रोत्साहित करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। **लाभांश नीति का समुचित अर्थ समझने के लिए लाभांश का अर्थ समझना आवश्यक है।**

लाभांश का अर्थ
(Meaning of Dividend)

विभाजन योगय लाभ (Divisible Profits) का वह भाग जो कम्पनी के प्रत्येक सदस्य को उसके द्वारा धारित अंशों के अनुपात में प्राप्त होता है, 'लाभांश' कहलाता है। विभाजन योग्य लाभ से अवश्य कम्पनी के उन लाभों से है, जो वैधानिक तौर पर अंशधारियों में लाभांश के रूप में बाँटे जा सकते है। इस आशय के लिए शुद्ध लाभ का अभिप्राय उस लाभ से होता है जो कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 394 की व्यवस्थाओं के अनुसार है तथा इसमें आयकर की राशि घटा दी गई है व कम्पनी अधिनिमय की धाना 205 के अनुसार ह्रास घटा दिया गया है। कम्पनी द्वारा लाभांश की घोषणा तब तक नहीं की जा सकती है जब तक कि कम्पनी के पास पर्याप्त लाभ न हो, संचालक मण्डल सिफारिश न करें एवं वार्षिक साधारण सभा में अंशधारियों द्वारा अनुमोदन न हो।

एस.एम. शाह के अनुसार, "लाभांश एक व्यावसायिक कम्पनी के लाभ हैं जो उसके सदस्यों में अंशों के अनुपात में बाँटे जाते हें।"

सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार, "लाभांश कम्पनी के लाभों का वह भाग है जो अंशधारियों में बाँटने के लिए नियम कर दिया गया है।"

इन्स्टिट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउण्टेन्ट्स ऑफ इंडिया के अनुसार "उपलब्ध लाभों एवं रिजर्व में से अंशधारियों को किया गया वितरण ही लाभांश है।"

उपरोक्त से स्पष्ट है कि लाभांश क आशय कम्पनी की अर्जनों के उस भाग से है जो कम्पनी के अंशधारियों में बाँटा जाता है। लाभांश वस्तुतः कुल अर्जनों में से समस्त व्ययों के घटाने एवं विभिन्न प्रकार के कोषों व करों के लिए उचित प्रावधान करने के पश्चात् बचे आधिक्य (Surplus) का ही एक भाग होता है। इस आधिक्य पर सामान्य अंशधारियों का ही अधिकार हेाता है यद्यपि वे इसके तत्काल वितरण के लिए कम्पनी को बाध्य नही कर सकते हैं। यदि कम्पनी को अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता है तो ऐसी स्थिति में संचालकगण चाहे तो कम्पनी का समस्त अर्जित लाभ व्यवसाय में धारित (Retain) कर सकते हें। ऐसी स्थिति में लाभांश की घोषणा नहीं की जावेगी तथा समस्त अर्जनों को विभिन्न कोषों अथवा अधिकोषों के रूप में ही रहने दिया जाएगा। लाभांश का घोषणा करते समय कम्पनी के संचालक मण्डल को निम्न दो बातों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(अ) कम्पनी की आवश्यकताएँ (Need of the Company)- लाभांश की घोषणा करने से पूर्व कम्पनी की वित्तीय आवश्यकताओं को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए। यदि कम्पनी की निकट भविष्य में विस्तार व विकास की योजना हो तो उसके लिए कम्पनी को वित्त की आवश्यकता होगी। ऐसी स्थिति में लाभांश कम घोषित किया जा सकता है तथा अधिक आवश्यक हो तो लाभांश घोषित ही नहीं जाये। इस प्रकार कम्पनी की वित्तीय सुदृढ़ता बनाए रखना अधिक आवश्यक है चाहे इसके लिए अंशधारियों को कम लाभांश ही क्यों न देना पड़े।

(ब) अंशधारियों को उचित प्रतिफल (Reasonable Return to Shareholders)- अंशधारी अंशो में विनियोग प्रत्याय करने की आशा से करते हैं है। अतः संचालकों को इस बात का अनुमान होना चाहिए कि अंशधारियों को उचित प्रतिफल दे सकें। यदि ऐसा नहीं किया जाए तो अंशधारियों में असन्तोष होगा जिससे कम्पनी के अंशों के बाजार मूल्य एवं कम्पनी की साख पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

लाभांश घोषणा एवं वितरण के सम्बन्ध में भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के प्रावधान

(Provisions of the Indian Companies Act, 1956 in Respect of Dividend)

भारत में लाभांश की घोषणा एवं वितरण के सम्बन्ध में कम्पनी को अपने अन्तर्नियमों, कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 205 तथा 206 एवं सारणी 'अ' के नियमों का पालन करना अनिवार्य है। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित व्यवस्थाएँ उल्लेखनीय हैं–

(1) पूँजी में से लाभांश न बाँटा जाये (Restricting Payment of Dividend from capital)– कम्पनी किसी भी अवस्था में पूँजी में से लाभांश नही बाँट सकती है। लाभांश वर्ष के लाभों या अन्य किन्हीं अवितरित लाभों में से ही दिया जाना चाहिए।

(2) पार्षद सीमानियम तथा अन्तर्नियमों का पालन (As per Memorandum and Articles) – संस्था के पार्षद सीमानियमों तथा अन्तर्नियमों में विभाजन–योग्य लाभ के सम्बन्ध में कुछ निर्देश दिये हैं तो उनका पालन किया जाना चाहिए। लाभांश घोषित करने व उनको भुगतान करने की रीति का उल्लेखीनय वर्णन संस्था के अन्तर्नियमों में दिया जाता है। ये अन्तर्नियम कम्पनी अधिनियम की व्यवस्थाओं के विरुद्ध नहीं हो सकते।

सारणी 'अ' के अधिनियम 85–94 के अधीन लाभांश के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियम है–

(i) कम्पनी अपनी साधारण सभा में लाभांश घोषित कर सकती है। लाभांश उस धनराशि से अधिक नहीं हो सकते जिसके लिए संचालक मण्डल ने स्वीकृति दी है।

(ii) संचालक मण्डल समय–समय पर ऐसे लाभांशों का भुंगतान कर सकता है। जो कि कम्पनी लाभों को देखते हुए उसे उचित प्रतीत होते है।

(iii) संचालक मण्डल कम्पनी मे लाभांश की स्वीकृति देने से पहले एक निश्चित धनराशि सुरक्षित कोष अथवा कोषों के लिए नियोजित कर सकता है और ऐसे कोषों का प्रयोग ऐसे कार्यों के लिए कर सकता है जिनके लिए कम्पनी के लाभ उचित रूप से प्रयोग किये जा सकते हैं। संचालक मण्डल कम्पनी के किन्हीं लाभों को उक्त कोषों से नियोजित न करके वर्ष के लिए हस्तान्तरित कर सकता है।

(iv) ऐसे व्यक्तियों को, जिन्हें अपने अशों के लिए लाभांश के विशेष अधिकार हैं, लाभांश घोषणा तथा भुगतान प्रदत्त धनराशि के आधार पर किया जाएगा। पूर्व प्राप्त माँगों की धनराशि इस आशय के लिए प्रदत्त राशि नहीं मानी जाएगी।

(v) संचालक मण्डल किसी सदस्य को देय लाभांश में से ऐसी धनराशि रोक सकता है जो कि उस सदस्य द्वारा कम्पनी को लाभों के लिए अथवा कम्पनी के अंशों के सम्बन्ध में अन्य किसी रूप में उस समय देय हो।

(vi) नकदी में देय लाभांश अंशधारियों के रजिस्टर्ड पते पर चैक अथवा अधिपत्र भेज कर भुगतान किया जा सकता है। ऐसा प्रत्येक चैक अथवा अधिपत्र आदेशित चैक होगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(vii) संयुक्त अंशधारियों की दशा में कोई भी अंशधारी लाभांश प्राप्त कर सकता है।

(viii) घोषित किये गये लाभांश की सूचना सदस्यों को देना आवश्यक है।

(ix) किसी भी लाभांश पर कम्पनी द्वारा ब्याज देय नहीं होगा।

(3) लाभांश का भुगतान केवल लाभों में से (Payment of dividend only from Profit)– लाभांश का भुगतान केवल लाभों में से किया जा सकता है, पूँजी में से नहीं। कम्पनी अधिनियम के अधीन, कम्पनी द्वारा किसी लेखा–वर्ष के लाभांश की घोषणा अथवा भुगतान– (i) ह्रास की व्यवस्था करने के पश्चात् कम्पनी के उस लेखा वर्ष के लाभों में से किया जा सकता है, अथवा (ii) जहाँ केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकार ने लाभांश की प्रतिभूति दी है वहाँ उसके फलस्वरूप प्राप्त होने वाली धनराशि में से किया जा सकता है। यह भी व्यवस्था है कि केन्द्रीय सरकार ऐसी आज्ञा (बिना मूल्य ह्रास की व्यवस्था किये लाभांश वितरण की) दे सकती है, यदि ऐसा करना जनता के हित में हो।

(4) लाभांश का भुगतान केवल नकदी में (Payment of Divident only in Cash) – अधिनियम की धारा 205(3) के अनुसार केवल निमनिलिखित परिस्थितियों को छोड़कर लाभांश का भुगतान नकद में किया जाना चाहिए।

(i) लाभों का पूँजीकरण करना, (ii) कम्पनी के संचय को पूर्णदत्त अधिलाभांश अंशों के निर्गमन के लिए प्रयोग करना, (iii) सदस्यों को पूर्व निर्गमित अंशों के अदत्त भाग का भुगतान करना।

(5) लाभांश का भुगतान केवल निर्दिष्ट व्यक्तियों (Payment of Divident only to Specified Persons)– लाभांश का भुगतान (i) रजिस्टर्ड अंशधारियों को अथवा उसके बैंकर को , अथवा (ii) यदि अंश अधिपत्र निर्गमित किया जा चुका है तो ऐसे अधिपत्र के वाहक को अथवा उसके बैंकर को किया जा सकता है, अन्य किसी व्यक्ति को नहीं किया जा सकता।

(6) लाभांश का भुगतान 30 दिन में (Payment of divident within 30 days) – यदि कम्पनी द्वारा लाभांश घोषित कर दिया गया है तो घोषणा की तिथि से 30 दिन के अन्दर उसका भुगतान भी कर दिया जाना चाहिए। त्रुटि के लिए दायी व्यक्ति को तीन वर्ष तक का साधारण कारावास और 1,000 रुपये प्रति दिन का जुर्माना दोष जारी रहने तक किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दोष जारी रहने के अवधि के लिए कम्पनी 18% की दर से ब्याज चुकाने हेतु उत्तरदीय होगी ख्कम्पनी (संशोधन) अधिनियम, 2000 द्वारा संशोधित धारा 2007,।

लाभांश के प्रकार

(Forms of Dividend)

लाभांश विभिन्न रूपें में वितरीत किया जा सकता है। साधारणतया यह नकद के रूप में ही वितरित किया जाता है, किन्तु यह बोनस अंशों के रूप में भी वितरित किया जा सकता है। लाभांश नकद या बोनस अंशों के अतिरिक्त अन्य रूपों में वितरित किया जा सकता है। यहाँ लाभांश के प्रमुख रूपों का विस्तार से वर्णन किया गया है। ये रूप निम्नलिखित हैं–

(1) नकद लाभांश (Cash Dividend) . लाभांश का यह सबसे प्रचलित एवं लोकप्रिय रूप है। साधारणतया अंशधारी इस रूप में लाभांश लेना सबसे अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि लाभांश प्राप्ति का यह एक सुविधाजनक तरीका है। जिन कम्पनियों की तरल स्थिति ठीक होती है वे कम्पनीयाँ लाभांश नकद में ही वितरित करना पसन्द करती हैं। भारतीय कम्पनी अधिनियम की धारा 205 के अनुसार भारतीय कम्पनियाँ नकद व स्कन्ध लाभांश के अलावा अन्य किसी प्रकार से लाभांश नहीं बाँट सकती हैं।

(2) स्कन्ध लाभांश (Stock Dividend)- स्कन्ध लाभांश को "बोनस अंशों" के रूप में लाभांश के नाम से जाना जाता है तथा ऐसा संचित कोषों या लाभों का पूँजीकरण करके किया जाता है। जिन कम्पनियों की तरल स्थिति ठीक नहीं होती, वे साधारणतया अपने लाभों का पूँजीकरण करके स्कन्ध लाभांश वितरित करती है। इसके अन्तर्गत कम्पनी नकद लाभांश नहीं देती है। ऐसे अंशों को बोनस अंश (Bonus Shares) के नाम से जाना जाता है। ऐसा करने से लाभ का समुचित उपयोग व्यवसाय में ही हो जाता है तथा लांभाश का वितरण भी सम्भव हो जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

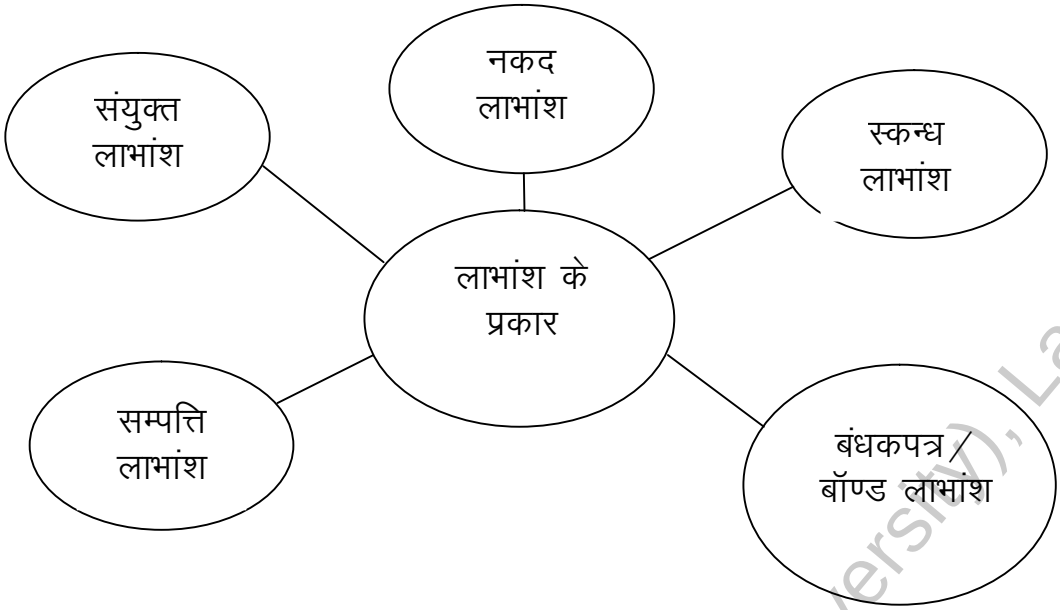

(3) बन्ध–पत्रों के रूप में लाभांश (Bond Dividend)– कम्पनी नकद लाभांश न देकर बन्ध–पत्रों या ऋण–पत्रों के रूप में भी लाभांश वितरित करती है। बन्ध–पत्र या ऋण–पत्र दीर्घकालीन हो सकते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि कम्पनी लाभांश का वितरण तत्काल न करके भविष्य की किसी तिथि को करना चाहती है। इस प्रकार का लाभांश तभी वितरित किया जाता है जब कम्पनी ब्याज सम्बन्धी बढ़े हुए दायित्वों का सम्पूर्ण भार उठाने में अपने आपको असमर्थ पाये। **कभी–कभी लाभांश के लिए प्रतिज्ञा–पत्र भी दिये जाते हैं जिन पर ब्याज भी दिया जा सकता है। इसे स्क्रिप लाभांश** (Scrip Dividend) **कहा जाता है।** स्क्रिप्ट लाभांश की अवधि अल्पकालीन होती है।

(4) सम्पत्ति लाभांश (Property Dividend) – नगद के अतिरिक्त लाभांश सम्पत्ति के रूप में भी वितरित किया जा सकता है। अन्य कम्पनियों की तथा सरकार की प्रतिभूतियों (Govt. Securities) को लाभांश के रूप वितरित किया जा सकता है। इसी प्रकार कम्पनी की अन्य किसी विभाजन योगय सम्पत्ति को भी लाभांश के रूप में वितरित किया जा सकता है। लाभांश वितरण का यह रूप बहुत ही कम संस्थाओ द्वारा अपनाया जाता है, क्योंकि यह अंशधारियों को असुविधाजनक होता है। पश्चिमी देशों में कुछ मदिरा उत्पादक कम्पनियाँ मदिरा की बोतलें निर्धारित मूल्यों पर लाभांश के बदले वितरित करती हैं। इसे **"वस्तुओं के रूप में लाभांश"** (Dividend in Kind) के नाम से जाना जा सकता है। भारतीय कम्पनियों में लाभांश वितरण कायह तरीका अभी प्रचलित नहीं है।

(5) संयुक्त लाभांश (Composite Dividend) – जब लाभांश का कुछ हिस्सा नकद में तथा शेष सम्पत्ति के रूप में दिया जाता है, तो यह संयुक्त लाभांश कहलाता है।

भुगतान के अनुसार लाभांश **को निम्न तीन वर्गों में बाँटा जाता है–**

(i) **अन्तरिम लाभांश** (Interim Dividend)– साधारणतया लाभांश की घोषणा कम्पनी के वित्तीय वर्ष के अन्त में की जाती है। ऐसी स्थिति में इसे 'नियमित लाभांश' ;त्मेहनसंत क्पअपकमदकद्ध कहा जाता है, किन्तु कभी जब कम्पनी यह महसूस करे कि व्यवसाय में लाभ पर्याप्त मात्रा में अर्जित कर लिये गये हैं, ऐसी स्थिति में वर्ष की समाप्ति के पूर्व ही कुछ लाभांश घोषित कर देती है तो इसे अन्तरिम लाभांश के नाम से जाना जाता है। कम्पनी इस अन्तरिम लाभांश के बाद अन्तिम लाभांश ;थ्पदंस कपअपकमदकद्ध भी घोषित करती है।

(ii) **अतिरिक्त अथवा विशिष्ट लाभांश** (Extra or Special Dividend)– एक सुदृढ़ लाभांश नीति के लिए यह आवश्यक है कि लाभांश की दर में अत्यधिक परिवर्तन न किया जाये। नियमित लाभांश दर वह दर होती । जिसके अनुसार पिछले कई वर्षों से लाभांश का भुंगतान किया जा रहा है। यह कोई निश्चित या स्थायी दर नहीं होती है तथा इसमें थोड़ा–बहुत परिवर्तन लाभों की मात्रानुसार किया जा सकता है। अतिरिक्त लाभांश का प्रश्न तभी उठता है जब संस्था किसी वर्ष अप्रत्याशित या अत्यधिक मात्रा में लाभांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अर्जित करती है। ऐसी स्थिति में कम्पनी नियमित लाभांश के अलावा कुछ अतिरिक्त या विशिष्ट लाभ भी दे देती है। अतिरिक्त लाभांश देने का उद्देश्य अंशधारियों को यह जानकारी देना होता है कि अतिरिक्त लाभांश की राशि अस्थायी है।

(iii) **नियमित लभांश (Regular Dividend)–** एक कम्पनी द्वारा वित्त वर्ष की समाप्ति के बाद संचालक मण्डल द्वारा प्रस्तावित तथा साधारण वार्षिक सभा द्वारा पारित लाभांश भुगतान को नियमित लाभांश के नाम से पुकारा जाता है।

भारतीय कम्पनी अधिनिमय, 1956 की धारा 205(3) के अनुसार नकद के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से लाभांश का भुगतान नहीं किया जा सकता है, लेकिन लाभों का पूँजीकरण करके बोनस अंशों के रूप में लाभांश का वितरण इसका अपवाद है। इसी प्रकार अंशधारियों द्वारा लिये गये अंशों पर अदत्त राशि को चुकता करके भी लाभांश का भुगतान किया जा सकता है। भारतीय कम्पनियाँ अन्तरिम एवं अतिरिक्त लाभांश का वितरण भी कर सकती है, लेकिन सम्पत्ति या बन्ध–पत्र के रूप में लाभांश का भुगतान नहीं कर सकती हैं।

बोनस अंश या स्कन्ध लाभांश

(Bonus Share or Stock Dividend)

बोनस अंश या स्कन्ध लाभांश का अभिप्राय लाभांश के रूप में कम्पनी के अंशों के वितरण से होता है। ऐसी स्थिति में कम्पनी नकद में लाभांश वितरित न करके अंशें में लाभांश वितरित करती है। ऐसे निर्गमित अंशों को **'अधिलाभांश अंश'** भी कहा जाता है। बोनस अंश साधारणतया कम्पनी अपनी नकद स्थिति अच्छी न होने पर या नकद कोषों की कम्पनी में आवश्यकता होने पर निर्गमित करती है। इससे एक ओर कम्पनी की नकद स्थिति पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता है, दूसरी ओर अंशधारी भी अंशों के रूप में लाभांश पाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। बोनस अंश निर्गमित करने के लिए संचित कोषों में से बोनस अंशों के बराबर राशि अंश पूँजी खाते में हस्तान्तरित कर दी जाती है तथा बोनस अंशके हकदार अंशधारियेां को बदले मे आनुपातिक रूप में अंश प्रमाण–पत्र निर्गमित कर दिये जाते हैं। इस प्रक्रिया को लाभों का पूँजीकरण **(Capitalisation of Profits)** भी कहते हें, क्योंकि बोनस अंश निर्गमन में लाभों को पूँजी मे परिवर्तित कर दिया जाता है। बोनस अंश निर्गमन के निम्न तीन प्रभाव होंगे–

(1) निर्गमित अंशों की संख्यचा में वृद्धि हो जाती है। उदाहरण के लिए, माना कि पहले कम्पनी में 5,000 अंश थे और अब कम्पनी 5:1 के अनुपात में बोनस अंश निर्गमित करती है, अतः बोनस अंश निर्गमन के पश्चात् अंशों की कुल संख्या 5,000 . 1,000 = 6,000 हो जायेगी।

(2) स्वामी–पूँजी[1] (Equity) की राशि पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसकी राशि वही रहती हे जो निर्गमन से पहले थी। माना कि कम्पनी के पास 5,000 अंश 100–100 रुपये वाले हैं तथा 2,00,000 रु. का संचित कोष है, अतः स्वामी पूँजी का राशि 5,00,0002,00,000 = 7,00,000 रु. हुई। 5,000 अंशो पर 1,000 नये अंश निर्गमित किये गये, अतः नये अंश भी 1,000 ग 100 = 1,00,000 रु. के निर्गमित किये गये। ये 1,00,000 रु. संचित कोषों से अंश पूँजी खाते में हस्तान्तरित हो जायेंगे। इस प्रकार अंश पूँजी 6,00,000 रु. की तथा संचित कोष 1,00,000 के रह जायेंगे। अतः स्वामी पूँजी की राशि 6,00,000 . 1,00,000 = 7,00,000 रु. ही रहेगी।

(3) प्रति अंश आय (Earnings per Share) **बोनस अंश निर्गमन के अनुपात मे गिर जाती है।** उदाहरणार्थ, पहले यदि प्रति अंश आय 10 रु. होती थी तो अब रुपये की ही प्रति अंश रह जायेगी, क्योंकि 10 रु. प्रति अंश के हिसाब से पहले 5,000 अंशों पर कुल लाभ 50,000 रुपये का होता था अब इस 50,000 रुपये के लाभ का विभाजन 6,000 अंशों में होगा, अतः प्रति अंश आय $\frac{50,000}{6,000} = 8.33$ रुपये प्रति अंश ही होगी। बोनस अंश निर्गमन से प्रति अंश लाभांश (Dividend per Share) व अंशों के बाजार मूल्य मे गिरावट की सम्भावना रहती है। यह आवश्यक नहीं है कि 'प्रति अंश आय' (EPS)] 'प्रति अंश लाभांश' (DPS) तथा अंशों के बाजार मूल्य में समान अनुपात में कमी हो।

अधिलाभ अंश निर्गमन या स्कन्ध के लाभ (Advantages of Bonus Shares or Stock Dividend)- स्कन्ध लाभांश एक तरफ कम्पनी की लाभांश नीति को प्रभावित करता है। तथा दूसरी तरफ अंशधारियों को।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्कन्ध लाभांश के महत्त्व का अध्ययन अंशधारियों व कम्पनी के दृष्टिकोण से अलग–अलग किया जा सकता है।

(अ) कमपनी को लाभ (Advantages to Company) – स्कन्ध लाभांश से कम्पनी को निम्न वर्णित लाभ होते हैं।

(1) उचित तरल स्थिति बनाये रखने में सहायक (Helpful in Maintaining Proper Liquid Position)– यदि किसी संस्था की तरल अथवा नकद स्थिति डावाँडोल है तो उसे नकद लाभांश नहीं देना चाहिए, बल्कि स्कन्ध लाभांश देकर वह नकद स्थिति को बिगड़ने से बचा सकती है। तथा अपने अंशधारियों को भी सन्तुष्ट कर सकती है।

(2) अपने लाभांश की दर को कम करने के लिए (To Reduce Dividend Rate)– संस्था द्वारा बहुत ऊँची दर से दिया गया लाभांश सबकी नजरों मे ंआता है। श्रमिक उपभोक्ता एवं सरकार तीनों ही ऐसी लाभदायक संस्था से बहुत अधिक आशाएँ करने लगते हैं। समय–समय पर बोनस अंश देकर संस्था अपने नकद लाभांश की दर उचित सीमा के अन्दर रख सकती है तथा अल्प–पूँजीकरण के दोष से छुटकारा पा सकती है।

(3) स्वामित्व का विकेन्द्रीकरण (Diffusion in Ownership) – संस्था में कई सदस्य जिन्हें रुपयों की आवश्यकता होती है, वे अपने बोनस अंशों को बेच सकते है। इससे कम्पनी के स्वामित्व के ढाँचे में धीरे–धीरे परिवर्तन होता रहता है तथा अधिक से अधिक लोगों को सदस्य बनने का अवसर मिलता रहता है।

(4) अंश–पूँजी का मितव्ययी निर्गमन (Economical Issue of Securities)– स्कन्ध लाभांश के रूप में अंश वितरित कर देने से पूँजी निर्गमन के विभिन्न व्यय नहीं करने पड़ते। स्कन्ध लाभांश के निर्गमन मे विद्यमान अंशधारियों को उनकी अंश पूँजी के अनुपात में अंश निर्गमित कर दिये जाते हैं। ऐसा करने पर कम्पनी अभिगोपन व्यय तथा अन्य व्ययों की बचत कर देती है।

(5) अन्य लाभ– (Other Bebefits) अधिलाभांश के माध्यम से संस्था लाभों का पूँजीकरण कर लेती है जो वित्त–पोषण के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है। अधिलाभांश निर्गमन से संस्था की अंश–पूँजी भी बढ़ जाती और साथ ही समता अंश पूँजी के माध्यम से किया जाने वाला नियन्त्रण भी पूर्ववत् बना रहता है।

(ब) अंशधारियों को लाभ (Advantages to Shareholders)–स्कन्ध लाभांश से अंशधारियों को निम्नांकित लाभ प्राप्त होते है–

(1) कर में बचत (Tax Saving)–नकद लाभांश की अपेक्षाकृत स्कन्ध लाभांश की स्थिति से अंश–धारियों को आयकर में छूट मिलती है। इस प्रकार अंशधारी स्कन्ध लाभांश के माध्यम से करों म ें बचत का लाभ प्राप्त कर लेते हैं।

(2) अन्य लाभ (Other Benefits) – स्कन्ध लाभांश से सदस्यों को भी लाभ होता है। कम्पनी की अंशपूँजी में उनका हिस्सा बढ़ जाता है यद्यपि उसका अनुपात पहले जैसा ही बना रहता है। उन्हें आने वाले वर्षों मे अधिक अंशो ंपर अधिक आय मिलने की आशा बँधती है। जो संस्थाएँ अधिलाभांश अंश (Bonus Share) निर्गमन करती हैं उनके अंशों का बाजार मूल्य भी बढ़ जाता है। इस प्रकार अंशधारियों को पूँजीगत लाभ प्राप्त होता है।

अधिलाभों या स्कन्ध लाभांश की हानियाँ (Disadvantages of Bonus Shares or Stock Dividend)– स्कन्ध लाभांश से संस्था को अग्रलिखित हानियाँ होती हैं–

(1) सभी प्रकार के अंशधारी इन्हे लेना पसन्द नहीं करते। कुछ अंशधारी जो अपनी आय के लिए केवल औद्योगिक प्रगति में किये गये विनियोग पर मिलने वाले प्रतिफल पर ही निर्भर करते हैं, वे स्कन्ध लाभांश लेना पसंद न करके नकद लाभांश लेना पसन्द करते हैं।

(2) संस्था के लिए भी भविष्य में लाभांश सम्बन्धी दायित्व बढ़ जाता है। यदि संस्था की आय इतनी बढ़ी है कि वह बढ़ी हुई अंश–पूँजी पर लाभांश समुचित दर से बाँटने में समर्थ हो सके तब जो ठीक है अन्यथा उसकी ख्याति व अशों का बाजार मूल्य दोनों ही गिर सकते हैं। परिणामस्वरूप नये अंशों को जारी कर पूँजी उपलब्ध करने मे प्रबन्ध को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है। अतः स्कन्ध लाभांश उन्हीं संस्थाओं द्वारा वितरित किया जाना चाहिए जो भविष्य में अधिक आय की आशा रखती है,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अन्यथा बढ़ी हुई अंश–पूँजी पर लाभांश की दर गिर जाने से अंशधारियों को मनावैज्ञानिक असन्तोष हो सकता है।

(3) प्रायः असन्तुष्ट अंशधारी इन अतिरिक्त अंशों को बाजार में बेचकर नकद धन प्राप्त कर सकते हैं लेकिन इसमे दो कमियाँ है।– पहली, अधिलाभांश अंशों के निर्गमन की घोषणा तथा बोनस कूपनों को जारी करने मे काफी समय का अन्तर हो जाता है। दूसरी, यदि कोई अंशधारी अपने ऐसे अंशों का विक्रय कर देता है तो इससे कम्पनी मे उसके हित अनुपात तथा कम्पनी के स्वामित्व ढाँचे में परिवर्तन हो जाता है।

(4) यदि पूँजी संरचना पर ध्यान करके स्कन्ध लाभांश वितरित नहीं किया गया है तो कम्पनी अति–पूँजीकृत भी हो सकती है।

बोनस अंश निर्गमन के सम्बन्ध में सेबी (SEBI) के दिशा–निर्देश
(Guidelines of SEBI regarding Issue of Bonus Shares) :

सन् 2000 में सेबी द्वारा बोनस अंशें के निर्गमन के सम्बन्ध में निम्न संशोधित दिशा–निर्देश जारी किये गये हैं–

(1) ये दिशा–निर्देश विद्यमान सूचीबद्ध कम्पनियों पर ही लागू होंगे।

(2) बोनस अंशों का निर्गमन कम्पनी द्वारा सार्वजनिक/अधिकार निर्गमन से 12 माह की अवधि में नहीं किया जा सकता है।

(3) बोनस अंशो का निर्गमन कम्पनी द्वारा निर्मित स्वतन्त्र संचयों ;थ्तमम त्मेमतअमेद्ध में से किया जा सकता है। संचय का निर्माण लाभ या अंश प्रीमियम की राशि में से किया जा सकता है। स्थायी सम्पत्तियों के पुनर्मूल्यांकन द्वारा इनका निर्माण नहीं किया जा सकता।

(4) लाभांश के प्रतिस्थापन के रूप में बोनस अंशों का निर्गमन नहीं किया जा सकता।

(5) अंशतः प्रदत्त अंशों को पूर्णदत्त बनाये बिना बोनस अंशों का निर्गमन नहीं किया जा सकता।

(6) संचालक मण्डल की अनुमति के 6 माह के अन्दर बोनस अंशों का निर्गमन कर दिया जाना चाहिए।

(7) बोनस अंश निर्गमन के सम्बन्ध में कम्पनी के अन्तर्नियमों में प्रावधान होना चाहिए।

(8) बोनस अशं निर्गमन का प्रस्ताव सामान्य सभा द्वारा पास होना चाहिए।

(9) बोनस अंश निर्गमन से ऋणपत्रधारियों के अधिकार प्रभावित नहीं होने चाहिए।

(10) एक सूचीबद्ध कम्पनी को सेबी के द्वारा जारी दिशा–निर्देशों के अन्तर्गत शर्तों के पालन के सम्बन्ध में एक प्रमाण पत्र, जो कि वैधानिक सलाहकार/वैधानिक अंकेक्षक/पूर्णकालिक पेशेवर सचिव द्वार प्रमाणित हो, सेबी को भेजना होगा।

लाभांश नीति का अर्थ
(Meaning of Dividend Policy)

लाभांश नीति एक बहुत ही लोचपूर्ण एवं व्यापक शब्द है। लाभांश नीति दो शब्दों **लाभांश** नीति से मिलकर बना है। लाभांश से अभिप्राय कम्पनी की आय में से अंशधारियो को मिलने वाले हिस्से से नीति से अभिप्राय 'व्यवहार के तरीके' या 'कार्य करने के सिद्धान्तों' से होता है। अतः लाभांश नीति का अर्थ लाभांश वितरित करने के सिद्धान्तों व योजना से होता है। लाभांश वितरण के सम्बन्ध में योजना संचालकों द्वारा बनाई जाती है। लाभांश नीति या योजना बनाते समय पिछले वर्षों में बाँटा गया लाभांश, वर्तमान वर्ष के लाभ उद्योग की स्थिति इत्यादि तत्वों को ध्यान में रखा जाता है। **वैस्टन एवं ब्रिघम** ने लाभांश नीति के विषय में मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "प्रबन्धकों के सामने यह विकल्प नहीं होता है कि लाभांश बाँटे अथवा न बाँटै, हाँ यह प्रश्न अवश्य होता है कि कितना बाँटें?" इस प्रश्न का उत्तर लाभांश नीति से मिलता है। लाभांश नीति को परिभाषित करते हुए **वैस्टन एवं ब्रिघम** ने लिखा है, "लाभांश नीति अर्जनों का अंशधारियों को भुगतान एवं प्रतिधारित अर्जनों मे विभाजन निश्चित करती है।"[1] अतः लाभांश वितरण के सम्बन्ध में कर्यकारी योजना को लाभांश नीति कहा जाता है। प्रत्येक प्रबन्धक यह चाहता है कि वह एक आदर्श या समुचित लाभांश नीति का अनुसरण करे। लाभांश नीति समता अंश पूँजी से सम्बन्धित नीति है। पूर्वाधिकार अंश पूँजी पर लाभांश की घोषणा एवं दर पूर्व निर्धारित होने के कारण ये अंश लाभांश नीति से सम्बन्धित नहीं होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

एक सुदृढ़ लाभांश नीति के आवश्यक तत्त्व
(Essentials of a Sound Dividend Policy)

एक सुदृढ़ लाभांश नीति के आवश्यक तत्त्व निम्नलिखित हैं–

(1) स्थायित्व (Stability)- स्थिरता का आशय लाभांश के वितरण में नियमितता बनाये रखने से है। यदि कोई संस्था एक वर्ष तो बहुत अच्छा लाभांश घोषित कर देती है लेकिन अगले ही वर्ष लाभांश नहीं बाँट पाती तो इसे अच्छा नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत यदि कोई संस्था मध्यम दर से ही प्रतिवर्ष लाभांश देती रहती है तो उससे अंशधारी सन्तुष्ट रहते हैं और अंशों के मूल्यों में सट्ठा नहीं होता हे।

(2) लाभांश दरों में क्रमशः वृद्धि (Gradually Rising Dividend Rates)– संस्था को हमेश इस बात पर प्रयत्नशील रहना चाहिए कि उसकी लाभांश दरों में वृद्धि हो। मूल्य–स्तर बढ़ने व कम्पनी की आय अधिक होने पर अंशधारी भी यही चाहते हैं कि उनकी आय में भी वृद्धि हो। अतः संस्था को अपनी लाभांश दरों को भी थोड़ा–थोड़ा बढ़ाते रहना चाहिए। यह वृद्धि संस्था की आय में वृद्धि पर निर्भर करेगी। यदि किसी वर्ष अत्यधिक लाभ हो तो अतिरिक्त लाभांश भी वितरित किये जाने चाहिए।

(3) लाभांश का नकद में वितरण (Distribution of Dividend in Cash)– लाभांश का वितरण अधिकतर नकदी के रूप में ही किया जाना चाहिए, परन्तु जब संस्था में संचित कोषों की राशि बहुत अधिक हो जाए तो स्कन्ध लाभांश भी घोषित किया जा सकता। स्कन्ध लाभांश का वितरण उचित सीमा के अन्दर ही रखा जाना चाहिए, नहीं तो संस्था अति–पूँजीकरण का शिकार हो सकती है।

(4) प्रारम्भ में कम लाभांश (Moderate Start)– संस्था को प्रारम्भ के वर्षों मे कुछ समय तक कम दर पर ही लाभांश घोषित करना चाहिए जिससे संस्था की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ हो जाती है। बाद में संस्था की प्रगति के साथ–साथ लाभांश में भी धीरे–धीरे वृद्धि कर देनी चाहिए।

(5) अन्य बातें (Other Factors)– लाभांश का भुगतान केवल अर्जित लाभों में से ही किया जाना चाहिए। यदि लाभ–हानि खाते में कोई हानि पिछले वर्षों से चली आ रही है तो पहले उसे अपलिखित करना चाहिए, उसके बाद लाभांश की घोषणा करनी चाहिए। लाभांश अधिकांशतः वर्ष में एक बार ही दिया जाता है लेकिन अंशधारियों के उत्साह में वृद्धि के लिए अन्तरिम लाभांश भी वितरित किये जा सकते हैं।

लाभांश नीति का निर्धारण एवं प्रकार

(Determination of Dividend Policy and Its Types)

लाभांश नीति के निर्धारण के लिए कोई सामान्य या सर्वमान्य सूत्र नहीं दिया जा सकता है जो प्रत्येक स्थिति में लागू होता हो। लाभांश नीति प्रबन्धकीय नीति एवं कम्पनी की परिस्थितियों पर निर्भर करती है। प्रबन्धकों द्वारा प्रायः निम्न वर्णित तीन प्रकार की लाभांश नीतियाँ अपनायी जा सकती है–

लाभांश नीति के प्रकार		
कठोर लाभांश	उदार लाभांश नीति	सुस्थिर लाभांश नीति

(अ) कठोर लाभांश नीति (Conservative Dividend Policy)

कठोर या अनुदार लाभांश नीति अपनाने पर प्रबन्धकगण कम्पनी की वित्तीय सुदृढ़ता एव व्यवसाय को सर्वोपरि रखते हैं तथा अंशधारियों की वर्तमान आशाओ को गौण स्थान देते हैं। इस नीति में प्रबन्धक लाभ का अधिकांश भाग व्यवसाय में पुनर्विनियोजित करना चाहते हैं तथा सदस्यों को लाभांश कम से कम देते हैं। इसलिए इस नीति को अनुदार या कठोर लाभांश नीति के नाम से जाना जाता है। इस नीति में भुगतान अनुपात[1] (Payout Ratio) बहुत कम या कभी–कभी शून्य होता है। एक विकासशील कम्पनी जिसको सुधार एवं विस्तार के लिए पर्याप्त अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता हो, इस प्रकार की लाभांश नीति बुद्धिमतापूर्ण मानी जाती है' क्योंकि दीर्घकाल में अंशधारियों को इससे लाभ होता है। किन्तु ऐसी नीति अपनाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यह नीति कहीं अंशधारियों की धैर्य–सीमा को पार न कर जाये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ब) उदार लाभांश नीति (Liberal Dividend Policy)

लाभांश की इस नीति मे ंप्रबन्धक लाभ के अधिकांश भाग का वितरण सदस्यों मे ंलाभांश के रूप में कर देते हैं। कम्पनी द्वारा लाभ का केवल उतना ही भाग प्रतिधारित किया जाता है जितना अत्यन्त आवश्यक समझा जाये। इस नीति में भुगतान अनुपात (Payout Ratio) उच्च होता है जैसे 90 प्रतिशत या 95 प्रतिशत – अर्थात् प्रति सौ रुपये की आय में 90 या 95 रुपये लाभांश के रूप में वितरित कर दिये जाते हैं तथा व्यवसाय में केवल 10 या 5 रुपये ही रखे जाते हैं। इस नीति में सदस्यों के दीर्घकालीन हितों की अपेक्षा वर्तमान हितों को अधिक महत्व दिया जाता है। इस नीति का पालन करने पर कम्पनी में विकास व प्रतिस्थापना के लिए कोषों की कमी आ सकती है तथा अंशों के मूल्य में सट्टा बढ़ जाता है जिससे कम्पनी की वित्तीय सुदृढ़ता को हानि पहुँच सकती है। कभी–कभी प्रबन्धक अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए या प्रबन्ध–दक्षता प्रदर्शित करने के लिए अधिक लाभांश बाँटने के जोश में अनुचित तरीकों का भी प्रयोग करते हैं। अतः उदार लाभांश नीति अपनाते समय प्रबन्धकों को कम्पनी के हितों तथ सदस्यों की अपेक्षाओ ंमें ताल–मेल बैठाना चाहिए।

(स) सुस्थिर लाभांश नीति (Stable Dividend Policy)

लाभांश भुगतान की यह नीति दीर्घकालीन होती है तथा इसमें साधारणतया लम्बी अवधि तक कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किये जाते है। इस नीति में कम्पनी की भावी आवश्यकताओं व सदस्यों की वर्तमान अपेक्षाओं को समान महत्व दिया जाता है। साधारणतया जितना लाभ लाभांश के रूप में वितरित किया जाता है, लगभग उतना ही लाभ व्यवसाय में पुनर्विनियोजित भी किया जता है। सम्पन्न वर्षों में भी साधारणतया उतना ही लाभांश दिया जाता है जितना कि सामान्य अथवा प्रतिकूल वर्षों में । सम्पन्नता या अधिक लाभ वाले वर्षों में पर्याप्त कोषों का निर्माण कर लिया जाता है जिनका प्रयोग कम लाभ वाले वर्षों में लाभांश दर को स्थिर बनाये रखने मे किया जाता है। अतः यह एक मध्यमार्गी नीति है। निश्चित एवं अनिश्चत सभी सम्भावनाओं के लिए पर्याप्त आयोजन कर लिये जाते हैं। अतः यह नीति कम्पनी को साख एवं प्रतिष्ठा बनाये रखने में सहायक होती है।

$$1.\ \text{Payout Ratio} = \frac{\text{Dividend per Share}}{\text{Earnings per Share}} \text{X100}$$

सुस्थिर लाभांश नीति (Stable Dividend Policy) में प्रबन्धकों द्वारा यह प्रयत्न किया जाता है कि सदस्यों को दिये जाने वाले लाभांश की दर में यथासम्भव परिवर्तन नहीं हो। इसके लिए विभिन्न वर्षों में आय तथा कर रहित लाभों ;च्तवपिज ंजिमत ज्ंगद्ध में उतार–चढ़ाव होते रहने पर भी लाभांश दर मे परिवर्तन नहीं किया जाता है। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि कम्पनी के संचालक मण्डल को सुरक्षित भुगतान अनुपात (Stable Payout Ratio) की अपेक्षा सुस्थिर लाभांश दर (Stable Dividend Rate) की नीति अपनानी चाहिए। इसका प्रमुख कारण यह है कि अंशधारी नियमित एवं स्थायी रूप से मिलने वाले लाभांश को अधिक अच्छा समझते है। सुस्थिर भुगतान अनुपात एवं सुस्थिर लाभांश दर में अन्तर निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है–

Illustration :

विश्व भारती लिमिटेड की प्रदत पूँजी 1,00,000 रुपया है। कम्पनी ने पाँच वर्षो। में 24,00,000 रु.' 30,00,000 रु.' 20,00,000 रु.' 10,00,000रु.' तथा 20,00,000 रु. क्रमशः अर्जित किये हैं। क्या स्थिति होगी यदि (i) कम्पनी 50% का स्थिर भुगतान अुनपात की नीति अपनाती है, तथा (ii) कम्पनी 15% स्थिर लाभांश की नीति अपनाती है।

Vishwa Bharati Limited have a paid up capital of Rs. 1,00,000. The Company during five years earned Rs. 24,00,000, Rs. 30,00,000, Rs. 20,00,000, Rs. 10,00,000 and Rs. 20,00,000 respectively. What will be the position if, (i) the company follows a Policy of Stable Pay-out Ratio of 50 percent; and (ii) the company follows a Policy of Stable Dividend Rate of 15 per cent?

(i) If the company follows a Stable Pay-out Ratio of 50 per cent :

वर्ष	आय	भुगतान	लाभांश	लाभांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

	(लाख रु. में)	(अनुपात)	(लाख रु. में)	(प्रतिशत में)
1	24	50%	12	12%
2	30	50%	15	15%
3	20	50%	10	10%
4	10	50%	5	5%
5	20	50%	10	10%

(ii) If the company Stable Divided Rate of 15 per cent :

वर्ष	आय (लाख रु. में)	लाभांश दर	लाभांश के लिए आवश्यक धन राशि (लाख रु. में)	भुगतान अनुपात
1	24	15:	15	62ण्5:
2	30	15:	15	50ण्0:
3	20	15:	15	75ण्0:
4	10	15:	15 (संचयों में से 5 लाख रु. के नियोजन सहित)	100ण्0:
5	20	15:	15	75ण्0:

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि एक सुस्थिर भुगतान अनुपात (Stable Pay- out Ratio) की नीति अपनाने पर लाभों की राशि में कमी–वृद्धि से लाभांश दर प्रभावित होती है, अतः इन अंशों के बाजार मूल्य में भी उच्चावचन होंगे। इसके विपरीत 15% की स्थिर लाभांश दर (Stable Dividend Rate) की नीति अपनाने पर भुगतान अनुपात बदलता रहता है। भुगतान अनुपात में परिवर्तन कम्पनी की आन्तरिक वित्त व्यवस्था को प्रभावित करता है, अतः अंशो का बाजार मूल्य अप्रभावित रहेगा।

सुस्थिर लाभांश नीति के लाभ

(Advantages of Stable Dividend Policy)

सुस्थिर लाभांश नीति की प्रमुख विशेषताएँ लाभांश की स्थिरता एवं नियमितता है। यदि लाभांश नीति में स्थायित्व का अभाव होता है तो इससे संस्था की स्थायी साख नहीं बन पाती तथा अंशधारियों की स्थिति भी संदिग्ध हो जाती है। जब अंशों के बाजार मूल्यों में उतार–चढ़ाव होता रहता है तो इससे संस्था व अंशधानियों दोनों पर ही बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति का सटोरिये लाभ उठा लेते हैं और यह स्थिति संस्था के अस्तित्व को भी चुनौति दे सकती है। सुस्थिर लाभांश नीति के निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं–

(1) अंशधारियों के मन में विश्वास (Confidence among Shareholders)– नियमित एवं स्थायी लाभांश मिलते रहने से अंशधारियों के मन में अंशों के प्रति विश्वास जम जाता है। किसी वर्ष लाभ कम होने पर भी संस्था लाभांश में कटौती नहीं करती और कोषों में से नियोजन करके लाभांश वितरित कर देती है तो पूँजी बाजार में इन अंशों की साख अच्छी रहती हे।

(2) अंशधारियों में सन्तोष (Satisfaction among Shareholders)- कुछ अंशधारी आय के प्रति बहुत ही सतर्क एवं जागरूक होते हैं और वे नियमित दर से प्रति वर्ष मिलने वाले लाभों को अधिक महत्व देते है। अतः एक नियमित लाभांश नीति अपना कर अंशधारियों को सन्तुष्ट रखा जा सकता है।

(3) अंशों के बाजार मूल्यों में स्थिरता (Comparative Stability in Market Price of such Shares) – जिन अंशों पर नियमित दर से लाभांश मिलता है उनके बाजार मूल्यों में अपेक्षाकृत कम उतार–चढ़ाव आते हैं तथा ऐसे अंशों में सट्टेबाजी की सम्भावनाएँ कम रहती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(4) साख में वृद्धि (Strengthens Goodwill) – संस्था की साख बढ़ जाने से संस्था सफलतापूर्वक ऋण प्राप्त कर सकती है।

(5) दीर्घकालीन नियोजन में सहायक (Helpful in Long-term Planning) – संस्था के विकास के लिए दीर्घकालीन योजना बना सकते हैं, क्योंकि इस नीति के अन्तर्गत वित्तीय आवश्यकताओं तथा उनकी पूर्ति के साधनों का मूल्यांकन किया जा सकता है।

(6) राष्ट्रीय आय में स्थायित्व (Stability in National Income) – यदि राष्ट्र की अधिकांश संस्थाएँ सुस्थिर लाभांश नीति का पालन करती हैं तो इससे राष्ट्रीय आय में भी स्थायित्व आता है जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के स्थायित्व का सूचक है।

अतः उपर्युक्त लाभों को देखते हुए कुशल एवं अनुभवी प्रबन्धक सदैव इस बात का प्रयत्न करते है कि उकने द्वारा सुस्थिर लाभांश नीति का पालन किया जाए।

सुस्थिर लाभांश नीति का निर्माण

(Formulation of Stable Dividend Policy)

प्रत्येक संस्था के लिए एक सुस्थिर लाभांश नीति का निर्माण करना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है जिस पर प्रबन्धकों को सबसे ध्यान देना चाहिए। संस्था की भावी प्रगति तथा बाजार में उसकी साख एवं प्रतिष्ठा के लिए सुस्थिर लाभांश नीति अनिवार्य है। सुस्थिर लाभांश नीति का निर्माण करते है समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए–

(1) लाभांश की स्थिरता एवं नियमितता।
(2) कम्पनी की नकद स्थिति।
(3) केवल अर्जित लाभ अथवा अधिशेष (Surplus) में से ही लाभांश का भुगतान किया जाना चाहिए।
(4) अधिक लाभ के वर्षों मे नियमित लाभांश की दर में अचानक वृद्धि करने की अपेक्षा अतिरिक्त लाभांश दिया जाना चाहिए।
(5) स्कन्ध लाभांश का वितरण उचित सीमा के अन्दर ही रखा जाना चाहिए, अन्यथा आये दिन स्कन्ध लाभांश देने से अति–पूँजीकरण की स्थिति आ सकती है।
(6) प्रारम्भिक वर्षों में कुछ समय मामूली लाभांश दिया जा सकता है। बाद में संस्था की प्रगति के साथ–साथ इसमें वृद्धि की जा सकती है।
(7) यदि लाभ–हानि खाते में पहले से हानि की रकम चली आ रही है तो जब तक वह अपलिखित न हो जाए तब तक लाभांश की घोषणा नहीं करनी चाहिए।
(8) स्थायित्व को बनाये रखने के लिए लाभांश समानीकरण कोष (Dividend Equalisation Fund) की स्थापना की जानी चाहिए जिससे कम लाभ के वर्षों में उसमें से लाभांश दिया जा सके।

किसी संस्था द्वारा पिछले वर्षों में दिये लाभांश का लेख संस्था की सही स्थिति का मूल्यांकन करने का एक उचित आधार माना जाता है। लाभांश दर तथा संस्था के चिट्ठे के आधार पर संस्था की वित्तीय स्थिति एवं सफलता का सही अनुमान लगाया जा सकता है। सुस्थिर लाभांश की नीति को बनाये रखने के लिए कम्पनी के स्वामित्व के ढाँचे एवं प्रबन्ध में भी स्थायित्व रहना आवश्यक है। जिस संस्था में प्रबन्धक, आये दिन बदलते रहते हैं, उसमें स्थायी लाभांश नीति का पालन किया जाना सम्भव नहीं होता। ऐसी संस्था विनियोजकों का विश्वास खो देती है, जिसे पुनः प्राप्त करना कठिन होता है।

लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व
(Factors affecting Dividend Policy)

लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व निम्न वर्णित है–

(1) लाभों की स्थिति (Position of Profit). लाभांश का वितरण लाभों में से ही किया जाता है। अतः कम्पनी को यह देखना चाहिए कि उस वर्ष का लाभ पर्याप्त है या नहीं। लाभ की मात्रा पिछले वर्षों के लाभों की तुलना में कम है या ज्यादा, तथा वह लाभ उसी तरह की व्यावसायिक संस्थाओं की तुलना में कैसा है? साथ ही कम्पनी को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अगले वर्षों में लाभ की इस राशि के कम व अधिक होने की क्या सम्भावनाएँ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(2) व्यापार –चक्र की अवस्था (Position of Business Cycle)- यदि किसी संस्था में कारोबार कभी मन्द तथा कभी तेज हो जाता है तो यहाँ पर स्थिर लाभांश देने तथा संस्था की वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ रखने के लिए यह आवश्यक है कि अधिक लाभ के वर्षों में लाभ का अधिकांश भाग मन्दी के समय का सामना करने के लिए संचित (Retain) कर लिया जावे।

(3) अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता (Need for Additional Capital)& यदि संस्था अपना कारोबार वर्ष के दौरान बढ़ाने या अपनी पुरानी सम्पत्तियों को नयी तथा आधुनिक सम्पत्तियों में बदलने की योजना रखती है तो उसके लिए उसे अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता पड़ेगी, ऐसी स्थिति में संस्था उस वर्ष सम्पूर्ण लाभ व्यवसाय में ही प्रतिधारित कर सकती है या कम दर लाभांश वितरित कर सकती है।

(4) कोषों की तरलता (Liquidity in Capital Requirements)& लाभांश प्रायः नकदी के रूप में दिया जाता है और यह तभी सम्भव है जब कम्पनी के पास लाभांश की घोषणा के समय पर्याप्त नकद शेष उपलब्ध हों । यदि लाभांश का भुगतान बैकों आदि से ऋण लेकर करना पड़ता है तो यह वित्तीय दृष्टिकोण से अवांछनीय होगा, क्योंकि ऐसा करने पर कम्पनी की वित्तीय स्थिति नाजुक होने की सम्भावना रहती है।

(5) अंशधारियों के विचार एवं आवश्यकताएँ (Thought and Needs of Shareholders) – अंशधारी कम्पनी के स्वामी होते हैं। वे अंश क्रय करते समय लाभांश आदि के बारे में कुछ विचार व आशाएँ बना लेते हैं। कम्पनी इन विचारों व आशाओं को नहीं भुला सकती, वरना उसे पूँजी बाजार से नई पूँजी एकत्रित करने में कठिनाई हो सकती है। इस सम्बन्ध में प्रबन्ध को यह देखना चाहिए कि वेसी ही अन्य कम्पनियाँ अपने अंशधारियों को कितना लाभांश दे रही है। तेजी या वृद्धि के समय अंशधारी अधिक लाभांश प्राप्त करने की आशा करते हैं।

(6) वैधानिक व्यवस्थाएँ तथा समझौते (Legal and Contractual Obligations). कम्पनी के प्रबन्धकों को वैधानिक (कम्पनी अधिनियम, पार्षद सीमानियमों तथा अन्तर्नियमों) व्यवस्थाओं को धन में रखकर ही लाभांश सम्बन्धी निर्णय लेना चाहिए। कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 205 में इस बात की विशेष व्यवस्था की गई है कि लाभांश का भुगतान पूँजी में से न किया जाए। प्रबन्धकों द्वारा लाभांश की घोषणा करने के कम्पनी के अन्तर्नियमों में भी विस्तृत व्यवस्था होती है। अतः प्रबन्धकों को इन नियमों का पालन करना चाहिए। यदि कम्पनी ने अपने अंशधारियों से लाभांश के बारे में कोई समझौता किया है तो उसे भी पूरा करना चाहिए। उदाहरणर्थ, पूर्वाधिकारी अंशों पर लाभांश की दर निश्चित होती है और इन पर लाभांश समता अंशों के लाभांश से पहले दिया जाता है।

लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्त्व
1. लाभों की स्थिति
2. व्यापार–चक्र की अवस्था
3. अतिरिक्त पूँजी की आवश्यकता
4. कोषों की तरलता
5. अंशधारियों के विचार एवं आवश्यकताएँ
6. वैधानिक व्यवस्थाएँ एवं समझौते
7.पुरानी लाभांश नीतियाँ
8. सरकारी नियन्त्रण
9. कराधान नीति
10. स्वामित्व ढाँचा
11. ऋणों का भुगतान
12. आय में स्थायित्व
13. कम्पनी की आयु
14. लोकमत

(7) पुरानी लाभांश नीतियाँ (Past Dividend Policies)– लाभांश की घोषणा करते सम कम्पनी के प्रबन्ध को बात का ध्यान रखना चाहिए कि पिछले वर्षों में से वे कितना लाभांश घोषित करते रहे हैं। यदि लाभांश की दरें एकदम बढ़ा दी जाती हैं तो कम्पनी के अंशों में सट्टा शुरू हो जाता है जिससे कम्पनी की वित्तीय व आर्थिक स्थिति बिगड़ने का डर हो जाता है, अतः प्रबन्धकों को लाभांश दर को यथास्थिर रखने का ही प्रयत्न करना चाहिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(8) सरकारी नियन्त्रण (Governmental Control)– लाभांश की घोषणा विभिन्न वैधानिक नियन्त्रणों को मद्दे नजर रखते हुए की जारी चाहिए। इस सम्बन्ध में कम्पनी के आन्तरिक नियमों के अतिरिक्त कम्पनी अधिनियम व आयकर अधिनियम को ध्यान में रखना आवश्यक है। कम्पनी अधिनियम की धारा 205 में यह व्यवस्था की गयी है कि लाभांश का भुगतान पूँजी में से नहीं किया जा सकता है। आयकर अधिनियम की धारा 104–109 के अन्तर्गत लाभांश वितरण के सम्बन्ध में प्रावधानों का वर्णन किया गया है। इन प्रावधानों की अवहेलना करनेवालों से दण्ड के रूप में अतिरिक्त कर वसूल किया जा सकता है। 1974 में भारत सरकार ने कम्पनियों द्वारा शुद्ध लाभ के एक–तिहाई से अधिक अथवा सामान्य अंश पर 12 प्रतिशत लाभांश से अधिक इनमें से जो भी कम हो लाभांश वितरित करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। अतः विद्यमान वैधानिक व्यवस्था के अनुरूप लाभांश नीति में परिवर्तन करना आवश्यक होता है।

(9) कराधान नीति (Taxation Policy)- कभी–कभी सरकार पूँजी निर्माण की गति को बढ़ाने के लिए आय संचित करनेवाली संस्थाओं को आयकर की सुविधा देती है। ऊँची दर पर लाभांश वितरित करने वाली संस्थाओं पर अतिरिक्त कर लगाकर लाभों के प्रतिधारण को प्रोत्साहित किया जा सकता है। ऐसी दशा में कर बचत की सुविधा पाने के उद्देश्य से लाभों का अधिकाधिक भाग संचित करने की नीति अपना ली जाती है।

(10) स्वामित्व का ढाँचा (Composition of Ownership)- यदि कम्पनी की पूँजी कुछ ही व्यक्तियों के हाथ में हो तो वे इस बात के लिए सहमत हो सकते हैं कि कम्पनी के विकास के लिए पर्याप्त आन्तरिक साधन बनाये रखने हेतु कुछ वर्षों तक कठोर लाभांश नीति का पालन किया जाए, किन्तु यदि कम्पनी में अंशधारियों की संख्या बहुत अधिक है तथा वे विभिन्न विचार वाले हैं, तो ऐसी दशा में वे संस्था को उदार लाभांश नीति अपनाने के लिए बाध्य करते हैं।

(11) ऋणों का भुगतान (Payment of Borrowings)– पिछले वर्षों के लिये गये ऋणों के भुगतान के लिए संस्था के पास दो साधन होते हैं– (i) ऋणपत्र जारी करके व (ii) आय से व्यवस्था करके। यदि संस्था आये ऋणों का भुगतान करने की नीति अपनाती है तो ऐसी दशा में उसे कठोर लाभांश नीति का अनुसरण करना पड़ेगा।

(12) आय में स्थायित्व (Stability in Income)– कम्पनी रूप से आय अर्जित करने वाली संस्थाएँ, आय में उच्चावचन होने वाली संस्थाओं की अपेक्षा आय का अधिक भाग लाभांश के रूप में वितरित करती हैं। अस्थायी रूप से आय प्राप्त करने वाली संस्थाएँ, यह निश्चित रूप से नहीं जानती हैं कि उन्हें भविष्य में कितनी आय प्राप्त होगी। भविष्य में आय कम होने पर लाभांश बनाये रखने के उद्देश्य से ये संस्थाएँ आय का अधिकांश हिस्सा संचित कोषों में जमा कर लेती हैं।

(13) कम्पनी की आयु (Age of the Company) – नयी कम्पनियाँ प्रारम्भ में इस स्थिति में नहीं होती हैं कि वे कुछ वर्षों तक उचित लाभांश अपने सदस्यों को दे सकें। शुरू में सभी संस्थाओं को विकास के लिए पूँजी पर्याप्त आवश्यकता पड़ती है जिसे वे सरलता से बाजार से प्राप्त नहीं कर सकतीं। अतः उन्हें अपने आन्तरिक साधनों पर निर्भर होना पड़ता है। इस कारण इन संस्थाओं को कठोर लाभांश नीति अपनानी पड़ती है। इसके विपरीत पुरानी संस्थाओं में उदार नीति अपनायी जाती है क्योंकि उन्हें अपेक्षाकृत कम पूँजी की आवश्यकता होती है और यदि होती भी है तो उसकी पूर्ति के लिए बाह्य स्रोतों से पूँजी जुटाने में उन्हें उतनी कठिनाई अनुभव नहीं होती जितनी कि एक नयी संस्था को होती है।

(14) लोक मत (Public Opinion)–संस्थाओं की लाभांश नीति पर जनमत तथा सार्वजनिक प्रतिक्रियाओं का भी प्रभाव पड़ता है। प्रायः बहुत अधिक लाभांश वितरित करने वाली संस्थाओं की आलोचना सभी क्षेत्रों में होने लगती है जिससे कर्मचारी अपने वेतनों में वृद्धि की माँग करते लगती हैं और उपभोक्ता माल की कीमतों में कमी चाहते हैं तथा संस्था के अधिकारी भी उस लाभ में से अधिक बोनस दिये जाने की माँग करते हैं।

लाभांश की प्रासंगिकता एवं लाभांश प्रमेय

(Relevance of Dividend and Dividend Models)

अनेक बार यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या किसी कम्पनी अथवा फर्म के लिए लाभांश वितरित करना अंशधारियों के सम्पत्ति मूल्य को अधिकतम करने के उद्देश्य की दृष्टि से प्रासंगिक है अथवा नहीं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इसके सम्बन्ध में दो तरह के विचार दिखायी देते हैं। प्रथम वर्ग में उन विचारों को शामिल किया जाता है, जिनके अनुसार लाभांश का वितरण कम्पनी की सम्पत्ति मूल्य को प्रभावित करता है, अतः लाभांश नीति अंशधारियों तथा कम्पनी के लिए प्रासंगिक है। इसमें वाल्टर तथा गोर्डन के विचार महत्त्वपूर्ण हैं तथा उन्होंने अपने प्रमेय भी बताये हैं।

दूसरी तरफ मोदी–गिलयानी व मिलर जैसे विचारक हैं जिनका कहना है कि लाभांश का वितरण तथा प्रतिधारित अर्जनों का कम्पनी के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

1. लाभांश की प्रासंगिकता के प्रमेय (Models Based on Relevance of Dividend)

इसमें हम निम्न दो प्रमेयों का अध्ययन कर सकते हैं :

1. वाल्टर फार्मूला या प्रमेय

(Walter Formula or Model)

लाभांश नीति के निर्धारण के लिए प्रोफेसर जेम्स ई. वाल्टर ने एक बीजगणितीय सूत्र का प्रतिपादन किया, जिसे वाल्टर फार्मूला के नाम से जाना जाता है। इस फार्मूले की सहायता से कम्पनी के प्रबन्धक लाभांश नीति का निर्धारण इस प्रकार कर सकते हैं जिससे कि कम्पनी के अंशधारियों द्वार किये गये पूँजी विनियोग के मूल्य में पर्याप्त अभिवृद्धि हो सके। यह सूत्र निम्न मान्यताओं पर आधारित है–

(अ) अंशों के बाजार मूल्य भविष्य में सम्भावित लाभांश के वर्तमान मूल्यों (Present Values) से प्रभावित होते हैं' तथा

(ब) व्यवसाय की प्रतिधारित अर्जनें (Retained Earnings) भविष्य में प्राप्त होने वाले लाभांश को प्रभावित करती हैं तथा इस प्रकार अंशों के बाजार मूल्य पर इनका भी प्रभाव पड़ता है।

अतः वाल्टर के फार्मूले को निम्न प्रकार सारांशित किया जा सकता है–

1. विकासशील संस्थाएँ जहाँ आन्तरिक अर्जन दर पूँजी लागत से अधिक हो के पास लाभार्जन के साधन अधिक होते हैं। इन संस्थाओं में आय का अधिकांश भाग पुनर्विनियोजित कर दिए जाने से लाभांश भुगतान कम होता है। इस कारण इन संस्थाओं के अंशों का बाजार मूल्य अधिकतम होता है।

2. सामान्य संस्थाएँ जहाँ आन्तरिक अर्जन दर पूँजी लागत के समान हो, की लाभांश नीति से अंशों के बाजार मूल्य अप्रभावित रहते हैं, क्योंकि अंशधारियों को केवल सामान्य लाभों की ही प्राप्ति होती है। अतः इस प्रकार की लाभांश नीति समान रूप से अनुकूलतम होगी।

3. अविकासशील संस्थाएँ जहाँ आन्तरिक अर्जन दर पूँजी की लागत से कम होती है, को अपनी आय का पुनर्विनियोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनकी आय पूँजी लागत से कम होती है। अतः इस प्रकार की संस्थाओं द्वारा अपनी आय को अंशधारियों में लाभांश के रूप में वितरित कर दिया जाना चाहिए।

वाल्टर ने कम्पनी अथवा फर्म के अंशों के सैद्धान्तिक मूल्य को ज्ञात करने के लिए एक फार्मूला दिया है जो सरलीकृत रूप से निम्न प्रकार लिखा जा सकता है–

$$P = \frac{D}{K_e} + \frac{r(E-D)/K_e}{K_e}$$

इसे इस तरह भी लिखा जा सकता है ।

$$P = \frac{D}{K_e} + \frac{(r/K_e)(E-D)}{K_e}$$

Where P= Price of a share; D= Dividend per share; E=Earnings per share

r = Rate of Return on investment of the firm

Kc= Cost of equity capital of the firm or capitalization rate

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Illustration :

तीन कम्पनियों के बारे में विस्तृत सूचना नीचे दी गई है –

The details regarding three companies are given below :

A Limited	B Limited	C Lmited
r= 12%	r=6%	r=8%
Kc=8%	Kc=8%	Kc=8%
E=Rs. 10	E= Rs. 10	E=Rs. 10

वाल्टर के फार्मूले का प्रयोग करते हुए इन कम्पनियों के एक अंश का मूल्य ज्ञात कीजिए जब लाभांश भुगतान अनुपात (a) 20% (b) 60% (c) 0% तथा (d) 100% है । निष्कर्षो पर टिप्पणी कीजिए ।

Compute the value of an equity share if each of these companies applying Walter's formula when dividend pay-out ratio is (a) 20% (b) 60% (c) 0% (d) 100%. Comment on the conclusion drawn.

Solution :

$$P = \frac{D}{K_e} + \frac{r(E-D)/K_e}{K_e}$$

वाल्टर के उपरोक्त फार्मले का प्रयोग करते हुए एक अंश का मूल्य निम्न प्रकार ज्ञात किया जा सकता है :

A Limited	B Limited	C Limited
(a)When dividend pay-out is 20% (जब लाभांश वितरण अनुपात 20% है)		
$\frac{2}{.08} + \frac{.12(10-2)/.08}{.08}$	$\frac{2}{.08} + \frac{.06(10-2)/.08}{.08}$	$\frac{2}{.08} + \frac{.08(10-2)/.08}{.08}$
= 25 + 150 = Rs. 175	= 25 + 75 = Rs. 100	= 25 + 100 = Rs. 125
(b)When dividend pay-out is 60% (जब लाभांश वितरण अनुपात 60% है)		
$\frac{6}{.08} + \frac{.12(10-6)/.08}{.08}$	$\frac{6}{.08} + \frac{.06(10-6)/.08}{.08}$	$\frac{6}{.08} + \frac{.08(10-6)/.08}{.08}$
= 75 + 75 = Rs. 150	= 75 + 37.5 = Rs. 112.5	=75 + 50 = Rs. 125
(c)When dividend pay-out is 0% (जब लाभांश वितरण अनुपात 0% है)		
$\frac{0}{.08} + \frac{.12(10-0)/.08}{.08}$	$\frac{0}{.08} + \frac{.06(10-0)/.08}{.08}$	$\frac{0}{.08} + \frac{.08(10-0)/.08}{.08}$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

= 0 + 187.5 = Rs. 187.5 = 0 + 93.75 = Rs. 93.75 = 0 + 125 = Rs. 125

(d)When dividend pay-out is 100% (जब लाभांश वितरण अनुपात 100% है)

$$\frac{10}{.08}+\frac{.12(10-10)/.08}{.08} \qquad \frac{10}{.08}+\frac{.06(10-10)/.08}{.08} \qquad \frac{10}{.08}+\frac{.08(10-10)/.08}{.08}$$

= 125 + 0 = Rs. 125 = 125 + 0 = Rs. 125 = 125 + 0 = Rs. 125

टिप्पणिया :

ए लिमिटेड एक ऐसी फर्म है जिसकी विनियोग पर प्रत्याय दर त फर्म की समता पूंजी की लागत ज्ञम की तुलना में अधिक है अर्थात r=12% है जबकि Ke=8% है अतः यह एक विकासमान फर्म है और ऐसी फर्म में फर्म के समता अंश का मूल्य अधिकतम करने हेतु रोपण अनुपात (Retention ration) अधिकतम (100%) रखा जाए अथवा भुगतान अनुपात कम से कम (0%) रखा जाए। ए लिमिटेड में भुगतान अनुपात शून्य होने पर कम्पनी के अंश का मूल्य सर्वाधिक 187.5 रूपये है जबकि भुगतान अनुपात 100ः रखने पर अंश का मूल्य सबसे कम 125 रूपये है। इसलिए अनुकूलतम भुगतान अनुपात 0ः है।

बी लिमिटेड में विनियोग पर प्रत्याय की दर त तथा उसकी समता अंश पूंजी की लागत ज्ञम से कम है अतः इसे ह्रासमान फर्म का नाम दिया जा सकता है। ऐसी फर्म में अनुकूलतम भुगतान अनुपात 100%ः होता है, क्योंकि फर्म में समता अंश का मूल्य 100% भुगतान अनुपात की स्थिति में ही अधिकतम होता है। उपरोक्त उदाहरण में यह 125 रूपया (भुगतान अनुपात 100 होने पर) है, जबकि भुगतान अुनपात 0% होने पर यह मूल्य सबसे कम 93.75 रूपया है।

सी लिमिटेड में विनियोग पर प्रत्याय की दर त तथा उसकी समता अंश पूंजी की लागत ज्ञम दोनो समान है। यह एक सामान्य फर्म मानी जा सकती है। ऐसी फर्म में भुगतान अनुपात कुछ भी रखा जाए, फर्म समता मूल्य पर इसका कोई प्रभाव नही होगा। उपरोक्त उदाहरण में शून्य भुगतान अनुपात होने अथवा 100% भुगतान अनुपात होने या अन्य भुगतान अनुपात होने पर फर्म के अंश मूल्य 125रूपया ही रहता है।

Illustration :

जेड लिमिटेड की प्रति अंश अर्जनें 10 रूपये है तथा इसके लिए पूंजीकरण की दर 10% है। कम्पनी के सम्मुख 20% अथवा 40% अथवा 80% भुगतान अनुपात का विकल्प है। वाल्टर के फार्मूले का प्रयोग करते हुए कम्पनी के अंश का मूल्य ज्ञात कीजिए। यदि प्रतिधारित अर्जनों की उत्पादकता (i) 20% (ii) 10% अथवा (8%) है ।

The earnings per share of Z Limited is Rs. 10 and rate of capitalization applicable to it is 10%. The company has before it the options of adopting a pay-out ratio of 20% or 40% or 80%. Using Walter's formula, compute the market value of the company's share if the productivity of retained earnings is (i) 20% (ii) 10% or (8%).

वाल्टर का फार्मूला –

$$P=\frac{D}{K_e}+\frac{r(E-D)/K_e}{K_e}$$

इसे इस तरह भी लिखा जा सकता है –

$$P=\frac{D}{K_e}+\frac{(r/K_e)(E-D)}{K_e}$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

उपरोक्त उदाहरण के अनुसार प्रति अंश अर्जने 10 रूपये है, अतः भुगतान अुनपात 20% अथवा 40% अथवा 80% रखने पर प्रति अंश लाभांश निम्न प्रकार होगा –

लाभांश भुगतान अनुपात	प्रति अंश लाभांश (रूपये)
20%	20% of Rs. 10 = Rs. 2
40%	40% of Rs. 10 = Rs. 4
80%	80% of Rs. 10 = Rs. 8

Situation I	Situation II	Situation III
D is 2	Rs. 4	and Rs. 8
E is 10	Rs. 10	and Rs. 10
r is 20%	10%	and 8 %

Market Price per share if the productivity of retained earnings (r) is :
(i) 20% (ii) 10% (iii) 8%

(a) when pay-out ratio is 20%

$\frac{2}{.1}+\frac{(.2/.10)(10-2)}{.10}$ $\frac{2}{.1}+\frac{(.1/.1)(10-2)}{.10}$ $\frac{2}{.1}+\frac{(.8/.10)(10-2)}{.1}$

= 20 + 160 = Rs. 180 = 20 + 80 = Rs. 100 = 20 + 64 = Rs. 84

(b) when pay-out ratio is 40%

$\frac{4}{.1}+\frac{(.2/.1)(10-4)}{.1}$ $\frac{4}{.1}+\frac{.(.1/.1)(10-4)}{.1}$ $\frac{4}{.1}+\frac{(.08/.1)(10-1)}{.1}$

= 40 + 120 = Rs. 160 = 40 + 60 = Rs. 100 = 40 + 48 = Rs. 88

(c) when pay-out ratio is 80%

$\frac{8}{.1}+\frac{(.2/.1)(10-8)}{.1}$ $\frac{8}{.1}$ +++ ++++++ $\frac{.(.1/.1)(10-8)}{.1}$ $\frac{8}{.1}+\frac{(.8/.1)(10-8)}{.1}$

= 80 + 40 = Rs. 120 = 80 + 20 = Rs. 100 = 80 + 16 = Rs. 96

Summary :

Thus Pay-out Ratio	Market Price per share when Productivity is		
%	20%	10%	8%
20	Rs. 180	Rs. 100	Rs. 84
40	Rs. 160	Rs. 100	Rs. 88
80	Rs. 120	Rs. 100	Rs. 96

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

टिप्पणी – उपरोक्त से स्पष्ट है कि – (i) जब प्रतिधारित अर्जनों पर आन्तरिक प्रत्याय की दर पूंजीकरण की दर (वर्तमान उदाहरण में 10%) से अधिक है तो अनुकूलतम भुगतान अनुपात तीनो विकल्पो में से प्रथम 20% भुगतान अनुपात वाला है, क्योंकि प्रति अंश मूल्य इसी पर सर्वाधिक 180 रूपया है ।

(ii) जब प्रतिधारित अर्जनों पर आन्तरकि प्रत्याय व पूंजीकरण की दर दोनों समान या बराबर होने पर भुगतान कुछ भी रखा जाये तो प्रति अंश मूल्य अपरिवर्तित रहता है, जो वर्तमान उदाहरण में 100 रूपया है ।

(iii) जब प्रतिधारित अर्जनो पर आन्तरिक प्रत्याय दर पूंजीकरण की दर से नीची हो तो अनुकुलतम भुगतान अनुपात 100% होता है परन्तु वर्तमान तीन विकल्पो में तृतीय विकल्प 80% भुगतान अनुपात सर्वोतम है, क्योंकि इसी पर कम्पनी के अंश का मूल्य सर्वाधिक होता है जो वर्तमान उदाहरण में 96 रूपये है ।

Illustration :

एपेक्स लिमिटेड के समता अंश के बाजार मूल्य का निर्धारण निम्न सूचनाओं के आधार कीजिए :
Determine the market price of equity shares of APEX Limited from following information :

Earning or the Company	Rs. 10,00,000
Dividend Paid	Rs. 6,00,000
Number of Shares Outstanding	2,00,000
Price earning ratio	8
Rate of Return on Investment	15%

क्या आप कम्पनी की वर्तमान लाभांश नीति से संतुष्ट है? यदि नही, तो अनुकूलतम भुगतान अनुपात क्या होना चाहिए ? वाल्टर प्रमेय का प्रयोग कीजिए ।
Are you satisfied with the current dividend policy of the firm? If Not, what should be the optimal dividend pay-out ratio? Use Walter's Model.

Solution :

$$\text{Price Earning Ratio} = \frac{Marketprice}{EPS}$$

$$8 = \frac{Marketprice}{5}$$

$$\text{Market Price} = 8 \times 5 = \text{Rs. } 40$$

$$\text{EPS} = \frac{Earnings}{Numberofoutsandingshares} = \frac{10,00,000}{2,00,000} = \text{Rs. } 5$$

$$\text{DPS} = \frac{Dividendpaid}{No.ofshares} = \frac{6,00,000}{2,00,000} = \text{Rs. } 3$$

$$\text{Dividend Paid -Out Ratio} = \frac{DPS}{EPS} \times 100 = \frac{3}{5} \times 100 = 60\%$$

Ke is defined as reciprocal of P/E ratio

$$\text{Therefore Ke} = \frac{1}{8} \text{ or } .125$$

इस फर्म में विनियोग पर प्रत्याय दर 15% है तथा पूंजी की लागत .125 अथवा 12.5% है, अतः फर्म विकासमान फर्म है । कम्पनी के अंश का मूल्य अधिकतम करने हेतु कम्पनी की रोकड अनुपात (Retention ratio) 100% रखना चाहिए, अर्थात भुगतान अनुपात शून्य रखने पर प्रति अंश मूल्य अधिकतम होगा –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$P = \frac{\frac{D}{K_e} \quad \frac{(r/K_e)(E-D)}{K_e}}{}$$

$$= \frac{0}{.125} \quad \frac{(.15/.125)(5-0)}{.125} = [0] + [6 + .125] = \text{Rs. } 48$$

निष्कर्ष – फर्म के अंश का वर्तमान मूल्य 40 रूपया है, जबकि भुगतान अुनपात शून्य रखने पर यह बढ कर 48 रूपया हो जाता है । अतः वर्तमान लाभांश नीति (60ः भुगतान अनुपात) ठीक नही है । कम्पनी को इसे बदल कर 0ः भुगतान अनुपात कर देना चाहिए ।

वाल्टर प्रतिमान की आलोचनाएँ (Critlcism of Walter's Formula) :

अन्त में हम यहां यह बताना चाहेगें कि वाल्टर का फार्मूला प्रमेय केवल एक सैद्धान्तिक दृष्टिकोण ही प्रस्तुत करता है । यह लाभांश नीति के सम्बन्ध मे केवल आधार प्रस्तुत करता है, लेकिन बाजार मूल्य सैद्धान्तिक मूल्य के अनुरूप ही परिवर्तित हो, यह आवश्यक नही है। बाजार में अंशो के मूल्य प्रतिधारित आय एवं लाभांश दर के अतिरिक्त अनेक तत्वों से प्रभावित होते रहते है। जैसे लाभांश पर कर (Tax)] लाभांश वितरण पर वैधानिक प्रतिबन्ध, बोनस अंशो के निर्गमन पर सरकार की नीति, कम्पनी की तरल (Liquid) स्थिति, इत्यादि । संक्षेप में इसकी प्रमुख आलोचनाएँ इस प्रकार है।

1. बाहय वितीय स्त्रोतो की अवहेलना (Ignores External Financing) – प्रो. वाल्टर की आन्तरिक वित पोषण कल्पना वास्तविकता से परे है । अधिकांश उपक्रमो द्वारा अपनी वित व्यवस्था नए अंशो अथवा ऋण पत्रो के द्वारा की जाती है ।
2. आन्तरिक अर्जन दरो की स्थिरता कल्पनीय (Stable Internal Rate of Returns Imaginary) – उपक्रमों की अर्जन दर अस्थिर होती है विनियोग में परिवर्तन के साथ साथ लाभो की दरों मे भी परिर्वतन होते रहते है अतः स्थिर दर की कल्पना एक मिथ्या धारणा है ।
3. पूंजी लागत अस्थिर (Unstable Cost of Capital) – पूंजी लागत की स्थिरता की मान्यता भी अवास्तविक है, क्योंकि उपक्रमो की जोखिम का स्वरूप परिवर्तनीय है अतः पूंजी लागत दर भी परिवर्तनशील हेाती है ।

2. गार्डन का फार्मूला अथवा प्रमेय (Gordon's Formula or Model)

गॉर्डन ने भी एक प्रमेय अथवा मॉडल का निर्माण किया है जो वाल्टर से मिलता जुलता है । गॉर्डन के अनुसार कम्पनी की लाभांश नीति का कम्पनी के अंशों के बाजार मूल्यों पर सीधा प्रभाव पडता है । गॉर्डन के मॉडल में जो प्रमुख अन्तर देखने को मिलता है वह यह है कि अंश का बाजार मूल्य अंश पर अनन्त समय तक प्राप्त होने वाले लाभांश के वर्तमान मूल्य के बराबर होता है ।

गॉर्डन के मॉडल की मान्यताएँ (Assumptions) – गॉर्डन ने अपने लांभांश मॉडल का निर्माण निम्न मान्यताओं के आधार पर किया है –

1. वाल्टर की तरह से ही गॉर्डन का मॉडल यह स्पष्ट करता है कि विनियोग निर्णयों के लिए लाभांश निर्णय महत्वपूर्ण होते है ।
2. फर्म के विनियोग पर प्रत्याय स्थिर होता है ।
3. फर्म अपनी विनियोग क्रियाएँ केवल समता अंश पूजी द्वारा करती है ।
4. गॉर्डन का मॉडल विनियोग में निहित जोखिम की उपेक्षा करता है तथा मानता है कि फर्म की बटटा दर (Discount Rate) स्थिर होती है ।
5. निगम कर नही होते है ।
6. रोपण अनुपात (Retention ratio) एक बार निर्धारित करने के बाद स्थिर रहता है।
7. फर्म का निरन्तर अस्तित्व रहता है ।

गार्डन का फार्मूला अथवा सूत्र (Gordon's Formula) – गॉर्डन का सूत्र निम्न प्रकार है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

$$P = \frac{E(1-b)}{K_e - b_r} \text{ or } p = \frac{D}{K_e - g}$$

Where P = Market Price of an Equity share
E = Earnings per share
D = Dividend per share
b = Retained earnings (1 - pay-out ratio)
r = Rate of return on investment of the firm
Ke= Cost of equity capital or capitalisation rate
br or g = Growth rate or b x r

लाभांश नीति के फर्म या इसके अंशो के मूल्यों पर पडने वाले प्रभावों को नीचे तालिका में विकासमान फर्म (Growth Firm)] सामान्य फर्म (Normal Firm) तथा पतन की फर्म (Declining Firm) पर प्रभावों का अध्ययन उदाहरण के आधार पर किया जा सकता है।

Illustration :

तीन कम्पनियों के बारे में विस्तृत सूचना नीचे दी गई है –
The details regarding three companies are given below :

Growth Limited	**Normal Limited**	**Declining Limited**
r > Ke	r = Ke	r < Ke
r = 0.15	r = 0.10	r = 0.08
Ke = 0.10	Ke = 0.10	Ke = 0.10
E = Rs. 10	E = Rs. 10	E = Rs. 10

Find out market price of an equity share of each of these companies applying Gordon's formula when dividend pay-out ratio is (i) 40% (ii) 60% and 90% Comment on the conclusions drawn.

गॉर्डन के फार्मूले का प्रयोग करते हुए प्रत्येक कम्पनी का बाजार मूल्य ज्ञात कीजिए जब भुगतान अनुपात (i) 40% (ii) 60% तथा 90% हो।

Solution :

इसका हल निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है ।

गॉर्डन मॉडल का फर्मा के अंश मूल्य पर प्रभाव

विकासमान फर्म त झ झम	**सामान्य फर्म** r = Ke	**पतन की ओर फर्म** r <Ke
आधारभूत समंक :		
r = 0.15	r = 0.10	r = 0.08
Ke = 0.10	Ke = 0.10	Ke = 0.10
E = Rs. 10	E = Rs. 10	E =Rs. 10
(i) Pay-out Ratio = (1 - b) = 40%		
Retention Ratio (b) = 60%		
g = br = 0.6 x 0.15 = 0.09	g = br = 0.6 x 0.10 = 0.06	g = br = 0.6 x 0.08 = 0.048
$P = \frac{10(1-0.6)}{0.10-0.09}$	$P = \frac{10(1-0.6)}{0.10-0.06}$	$P = \frac{10(1-0.6)}{0.10-0.048}$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

$= \frac{4}{0.01} = \text{Rs. } 400$ $= \frac{4}{0.04} = \text{Rs. } 100$ $= \frac{4}{0.052} = \text{Rs. } 77$

(ii) Pay-out Ratio = (1 - b) = 60%
Retention Ratio (b) = 40%

$g = br = 0.4 \times 0.15 = 0.06$ $g = br = 0.4 \times 0.10 = 0.04$ $g = br = 0.4 \times 0.08 = 0.032$

$P = \frac{10(1-0.4)}{0.10-0.06}$ $P = \frac{10(1-0.4)}{0.10-0.04}$ $P = \frac{10(1-0.4)}{0.10-0.032}$

$= \frac{6}{0.04} = \text{Rs. } 150$ $= \frac{6}{0.06} = \text{Rs. } 100$ $= \frac{6}{0.068} = \text{Rs. } 88$

(iii) Pay-out Ratio = (1 - b) = 90%
Retention Ratio (b) = 10%

$g = br = 0.10 \times 0.15 = 0.015$ $g = br = 0.10 \times 0.10 = 0.01$ $g = br = 0.10 \times 0.08 = 0.008$

$P = \frac{10(1-0.1)}{0.10-0.015}$ $P = \frac{10(1-0.1)}{0.10-0.01}$ $P = \frac{10(1-0.1)}{0.10-0.008}$

$= \frac{9}{0.085} = \text{Rs. } 106$ $= \frac{9}{0.09} = \text{Rs. } 100$ $= \frac{9}{0.092} = \text{Rs. } 98$

टिप्पणीयॉ – उपरोक्त अध्ययन से निम्न निष्कर्ष निकलते है –

(i) विकासमान फर्म के अंशो का बाजार मुल्य ऊँचे रोपण अनुपात (Retention Ratio) से बढता है ।
(ii) पतन की ओर अग्रसर फर्म के अंशो का बाजार मूल्य उँचे लाभांश भुगतान अनुपात (Pay-out Ratio) से बढता है ।
(iii) एक सामान्य फर्म के बाजार मूल्यो में उस समय तक भुगतान अनुपात में परिवर्तन का प्रभाव नही पडेगा, जब तक इसके विनियोग की लाभदायकता तथा पूंजी की लागत समान रहती है ।

II. लाभांश की अप्रासांगिकता के सिद्धान्त (Models Based on Irrelevance of Dividend)

मोदी–गिलयानी तथा मिलर का अप्रासंगिकता सिद्धान्त
(Modi-Gliani and Miller Irrelevance Theory)

मोदी–गिलयानी तथा मिलर का तर्क है कि फर्म की लाभांश नीति का फर्म की सम्पतियों के मूल्य पर कोई प्रभाव नही पडता है । उदाहरण के लिए यदि कम्पनी के लाभांश की घोषितदर नीची रखी है। तो इससे इसकी प्रतिधारित अर्जनें तथा कम्पनी का शुद्ध मूल्य (Net Worth) बढ जायेगा और यदि कम्पनी उँची लाभांश दर घोषित करेगी तो प्रतिधारित अर्जने तथा शुद्ध मूल्य कम हो जायेगा । उनका कहना है कि फर्म का मूल्य लाभांश नीति से अप्रभावित रहता है, अतः अंशधारियों की सम्पदा के लिए लाभांश अप्रासंगिक होते है। मोदी–गिलयानी तथा मिलर का तर्क निम्न मान्यताओं पर आधारित है –

(i) व्यक्तिगत तथा निगम कर अनुपस्थित होते है
(ii) स्कंध निर्गमन अथवा सौदा लागतें नही होती है ।
(iii) लाभांश नीति का फर्म की पूंजी लागत पर कोई प्रभाव नही होता है ।
(iv) फर्म की विनियोग नीति फर्म की लाभांश नीति से स्वतंत्र होती है ।
(v) भावी अवसरों के बारे में विनियोक्ताओं तथा प्रबन्धकों के पास समान सूचनाएँ उपलब्ध होती है ।

एम.एम. सिद्धान्त के अनुसार फर्म का मूल्य इसकी आधारभूत अर्जन शक्ति तथा इसकी जोखिम श्रेणी पर निर्भर करती है, इसलिए फर्म का मूल्य इसकी सम्पति विनियोग नीति पर निर्भर करता है न कि अर्जनो को लाभांश तथा प्रतिधारित अर्जनो मे विभाजित करने पर। एम. एम. सिद्धान्त उपरोक्त मान्यताओं के अन्तर्गत स्पष्ट करता है कि यदि एक फर्म अधिक लाभांश वितरित करती है तो इसे अधिक स्टॉक नये विनियोक्ताओं को बेचना होता है तथा नये विनियोक्ताओं को यह दिया गया कम्पनी के मूल्य का हिस्सा भुगतान किये गये

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

लाभांश के बराबर होता है । फर्म का मूल्य लाभांश भुगतान से निर्धारित नही होता है, बल्कि परियोजना की आय अर्जन शक्ति पर निर्भर होता है जिसमें फर्म ने अपनी मुद्रा विनियोजित की है ।

एम.एम. सिद्धान्त द्वारा उपरोक्त मान्यता के लिए जिस तर्क का प्रयोग किया जाता है, उसे 'ग्राहक प्रभाव' (Clientile Effect) के नाम से पुकारते है। ग्राहक प्रभाव बताता है कि फर्म उन अंशधारियों को अपनी ओर आकृर्षित करेगी। जिनका लाभांश पैटर्न तथा स्थायित्व की पसन्द फर्म के भुगतान पैर्टन तथा स्थायित्व के अनुरूप होगा। चूँकि फर्म के अंशधारी अथवा ग्राहक वर्ग जो आशा करते है वे ही प्राप्त करते है, अतः फर्म के स्टॉक का मूल्य लाभांश नीति से अप्रभावित रहता है।

एम.एम. मॉडल के अनुसार अंश का बाजार मूल्य लाभांश घोषित करने के बाद निम्न सूत्र की सहायता से ज्ञात किया जा सकता है :

$$\text{lw= \%Po} = \frac{P_1 + D_1}{1 + Ke}$$

जहॉ पर

P0 = अंश का प्रचलित बाजार मूल्य (Prevailling market price of the share)
Ke = समता पूंजी की लागत (Cost of Equity Capital)
D1 = लाभांश जो पहली अवधि के अन्त में प्राप्त होगा (Dividend to be received at the end of period one)
P1 = पहली अवधि के अन्त में अंश का बाजार मूल्य (Market price of a share at the end of period one)

नई परियोजना को लागू करने के लिए निर्गमित किये जाने वाले अंशो की संख्या निम्न सूत्र से ज्ञात की जा सकती है :

$$\square \text{ छत्र } \frac{1-(E-nD_1)}{P_1}$$

Where n = Number of shares outstanding at the beginning of the period
N = No. of New shares to be issued
I = Total investment amount needed for the project.
E = Earnings or net income of the firm during the period.

Illustration :

यंर्ग ऐज लिमिटेड जिस जोखिम समूह से सम्बन्धित है उसमें पूंजीकरण की दर 10 प्रतिशत हे । वर्तमान में इसके 1,00,000 अंश है जो प्रति अंश 100 रूपये पर बिक रहे है । संस्था चालू वर्ष के अन्त में 6 रूपये प्रति अंश लाभांश वितरण के बारे में सोच रही है । एम.एम. प्रतिमान के आधार पर निगम कर की अनुपस्थिति में निम्न प्रश्नो का उत्तर दीजिये :
(i) वर्ष के अन्त में अंश का मूल्य क्या होगा यदि लाभांश वितरित नही किया जाता है?
(ii) बाजार मूल्य क्या होगा, यदि लाभांश वितरित किया जाता है ।
(iii) यह मानते हुए कि फर्म लाभांश का भुगतान करती है, शुद्ध आय 10 लाख रूपये है तथा 20 लाख रूपये का नया विनियोग करती है, कितने नये अंश निर्गमित किये जाने चाहिए?
Young Age Limited, belongs to a risk class of which the appropriate capitalisation rate is 10% . It currently has 1,00,000 share selling at Rs. 100 each. The firm is contemplating declaring of a dividend of Rs. 6 per share at the end of current fiscal year which has just began. Answer the following question based on Modi-Gliani and Miller Model and assumptions of no corporate taxes.

(i) What will be the market price of a share at the end of the year if a dividend is not declared ?
(ii) What will be the market price if dividend is declared ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(iii) Assuming that the firm pays dividend, has net income of Rs. 10 lakhs and makes new investment of Rs. 20 lakhs during the period, how many new shares must be issued?

Solution :

इस प्रश्न का हल M.M. Model के लाभांश अप्रसांगिता के आधार पर किया जा सकता है । इसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जायेगा

$$Po = \frac{P_1 + D_1}{1 + Ke}$$

जहाँ % P_1= Rs. 100 ; P_1 = To be found
D_1 = Rs. 6 ; K_e = 10% or 0.10

(i) लाभांश का भुगतान करने पर

$$Po = \frac{P_1 + D_1}{1 + Ke}$$

Putting the values ;

$$100 = \frac{P_1 + 6}{1 + .10}$$

or $$100 = \frac{P_1 + 6}{1 + .10}$$

or $$100 = \frac{P_1 + 6}{1.10}$$

or $$110 = P_1 + 6$$
$$P_1 = 110\text{-}6$$
$$P_1 = \text{Rs. } 104$$

(ii) लाभांश का भुगतान नही करने पर

$$P_o = \frac{P_1 + D_1}{1 + Ke}$$

Putting the values :

$$100 = \frac{P_1 + 0}{1 + .1}$$
$$110 = P_1$$
$$P_1 = 110$$

(iii) नये निर्गमित किये जाने वाले अंशो की गणना :

Particular	Dividend declared Rs.	Dividend Not declared Rs.
Net Income	10,00,000	10,00,000
Less : Dividend Paid	6,00,000	--
Retained earnings	4,00,000	10,00,000
New Investment	20,00,000	20,00,000
Amount to be raised by issued of new shares (A)	16,00,000	10,00,000
Market Price per share (B)	Rs. 104	Rs. 110
New shares to be issued (A/B) (C)	15,385	9,091

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वैकल्पिक रूप से इनकी गणन निम्न सूत्र से की जा सकती है :

$$\square \text{ N} = \frac{1-(E-nD_1)}{P_1}$$

n = Number of share outstanding at the beginning of the period of 1,00,000 shares
AN = New share to be issued
P = Total investment required for the project i.e. Rs. 20,00,000
E = Earnings of the firm during the period after payment of dividend

(i) If dividend is declared Rs. 10,00,000 - Rs. 6,00,000 = Rs. 4,00,000.
(ii) If dividend is declared Rs. 10,00,000.

अब हम नये अंशों की संख्या ज्ञात कर सकते है :

(i) यदि लाभांश घोषित किया जाता है :

$$\square \text{ N} = \frac{20,00,000-4,00,000}{Rs.104} = 15,385 \text{ shares}$$

(ii) यदि लाभांश का भुगतान नही किया जाता है :

$$\square \text{ N} = \frac{20,00,000-10,00,000}{Rs.110} = 9,091 \text{ shares}$$

आलोचनाएँ (Criticism) :

1. **कर विभेदक (Tax Differentiation)** – M.M. मान्यता में करो का न होना अवास्तविकता है । अंशधारियो को लाभांश एवं पूंजीगत लाभो पर विभिन्न दरों से करो का भुगतान करना पडता है । अतः लाभांश के भुगतान की अपेक्षा अर्जनो के प्रतिधारण की नीति को प्राथमिकता दी जाती है ।
2. **निर्गमन लागतों की विद्यमानता (Existance of Issue Cost)** – संस्था द्वारा नये अंशो अथवा ऋण पत्रो के निर्गमन से वित्त व्यवस्था किए जाने पर निर्गमन व्यय, यथा – अभिगोपन कमीशन, दलाली आदि के रूप में करने पडते है। अतः आन्तरिक वित्त पोषण की तुलना में बाहय वित्तपोषण महंगा पडता है। अतः लाभांशो के स्थान पर प्रतिधारित अर्जनें लाभदायक होती है ।
3. **निश्चितता का अभाव (Lack of Certainty)** – भावी स्थितियों के पूर्वानुमान के अभाव में अनिश्चितता बनी रहती है ।
4. **विभिन्न उपक्रमों में विनियोग (Investment in Different Concerns)** – ग्राहको के द्वारा अपने विनियोग पर अर्जनों को प्राथमिकता देने का मूल कारण यह है कि वे अपने इस आय को अन्य विनियोजित कर लाभों में वृद्वि कर सकते है ।
5. **चालू आय की आशा (Expectation of Current Income)** – प्रत्येक विनियोजक लाभांश प्राप्ति की आकांक्षा रखता है । इस उद्देश्य की पूर्ति न होने पर वह अपने अंशो का विक्रय करता है जिस पर दलाली, कमीशन आदि व्ययो का भुगतान करना पडता है । अतः वह चालू आय को अधिक पसन्द करता है ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

खण्ड–द

(Section-D)

प्रबन्ध लेखांकन

(Management Accounting

कार्यशील पूँजी का प्रबन्ध (Management of Working Capital)

व्यवसाय में सामान्यतया दो प्रकार की पूँजी की आवश्यकता होती है, प्रथम, स्थायी पूँजी जो कि व्यवसय की स्थाई वित्तीय आवश्यकताओं, जैसे–भूमि, भवन, संयंत्र इत्यादि की व्यवस्था हेतु प्रयुक्त की जाती है तथा द्वितीय, अस्थायी या अल्पकालीन पूँजी जो व्यवसाय की सामयिक आवश्यकताओं, जैसे–कच्चे माल का क्रय एवं न्यूनतम स्कन्ध, भावी माँगों की पूर्ति हेतु निर्मित माल का न्यूनतम स्कन्ध, मजदूरी, कर्मचारियों का वेतन,दैनिक व्यय आदि की पूर्ति हेतु आवश्यक होती है। व्यावसायिक गतिविधियों के सूचारू रूप से संचालन हेतु स्थाई पूँजी का अनुमान लगाने एवं उसकी व्यवस्था करने के पश्चात सामयिक आवश्यकताओं हेतु अस्थायी पूँजी की व्यवस्था करनी होती है। अस्थायी पूँजी की आवश्यकता अल्पकालीन होती है। उसे कार्यशील पूँजी (Working Capital), अल्पकालीन पूँजी (Short –term Capital), तरल पूँजी (Liquid Capital), या चक्रीय पूँजी (Circulating Capital) इत्यादि नामों से जाना जाता है।

कार्यशील पूँजी की अवधारणा (Nature or Concept of Working Capital)

कार्यशील पूंजी को निम्न प्रमुख प्रकृति के अनुसार विभाजित किया गया है जिसका विवरण इस प्रकार है–

1. परिणात्मक कार्यशील पूँजी (Quantitative Working Capital)
2. गुणात्मक कार्यशील पूँजी (Qualitative Concept)

1- **परिणात्मक कार्यशील पूँजी**–कार्यशील पूँजी की परिणात्मक अवधारणा पूँजी के परिमाण या मात्रा पर अधिक बल देती है तथा गुणात्मक पहलू परकम। इस अवधारण के अनुसार सम्पूर्ण चालू सम्पत्तियों का योग कार्यशील पूँजी का प्रतिनिधित्व करता है। इस विचारधार के प्रमुख समर्थक मीड, मैलट, बेकर फील्ड, बोलविले, जे.एस. मिल तथा एडम स्मिथ है।

कार्यशील पूँजी की इस अवधारणा के समर्थक अपने विचारों के समर्थन से निम्न तर्क देते हैं–

(i) चालू सम्पत्तियों की व्यवस्था चाहे दीर्घकालीन आधार पर (अंश पूँजी दीर्घकालीन ऋणों से) की जाय अथवा चालू देनदारियों के द्वारा (अल्पकालीन ऋण व लेनदारों से) की जाये–इससे उनकी उपयोगिता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ii) चूँकि ये समस्त चालू सम्पत्तियाँ व्यवसाय में प्रयुक्त होती हैं तथा लाभ अर्जन क्षमता में वृद्धि करती हैं, अतः समस्त चालू सम्पत्तियों को कार्यशील पूँजी माना जाना चाहिए।

(iii) इस अवधारणा के समर्थन में एक तर्क यह भी दिया जाता है कि चूँकि स्थायी सम्पत्तियों को स्थायी पूँजी (Fixed Capital) का प्रतीक माना जाता हैए अतः चालू सम्पत्तियों को कार्यशील पूंजी (Working Capital) का प्रतीक माना जाना चाहिए। इस अवधारणा के अनुसार प्रत्येक अल्पकालीन नवीन देनदारी या ऋण के माध्यम से चालू सम्पत्तियों में वृद्धि होगी, अतः कार्यशील पूँजी में भी उसी अनुपात में वृद्धि होगी।

(ii) **गुणात्मक अवधारणा अथवा शुद्ध कार्यशील पूँजी (Qualitative Concept or Net Working Capital)-** इस अवधारणा के "चालू सम्पत्तियों के चालू दायित्वों पर आधिक्य को कार्यशील पूँजी कहते हैं। गुणात्मक अवधारणा के अनुसार कार्यशील पूँजी के लिए चालू सम्पत्तियों का चालू दायित्वों पर आधिक्य आवश्यक है। यदि चालू सम्पत्तियाँ तथा चालू दायित्वों की समान राशि हो तो संस्था में कार्यशील पूंजी की अनुपस्थिति मानी जाती है। इसके विपरीत यदि चालू दायित्व चालू सम्पत्तियों में अधिक हैं तो यह स्थिति कार्यशील पूँजी के घाटे (Deficit of Working Capital) का प्रतिनिधित्व करती हे जो वित्तीय संकट का द्योतक है। इस अवधारण के अनुसार यदि चालू देनदारियों (अल्पकालीन ऋण इत्यादि) में वृद्धि होती है तो इससे कार्यशील पूंजी में कोई वृद्धि नहीं होगी, क्योंकि उतनी ही मात्रा से चालू सम्पत्तियों भी बढ़ जायेगी, अतः चालू सम्पत्तियों व चालू दायित्वों में अन्तर वही रहेगा जो पहले था। इस अवधारणा के पक्षधर इसके पक्ष में निम्न तक देते हैं–

(i) चालू सम्पत्तियों का चालू दायित्वों पर आधिक्य संस्था की सुदृढ़ वित्तीय स्थिति का परिचायक है तथा संस्था मंदीकाल व विपरीत परिस्थितियों में भी अपने दायित्वों का भुगतान कर सकने में समर्थ होती है।

(ii) चालू सम्पत्तियों व चालू दायित्वों की तुलना से ही वास्तविक स्थिति ज्ञात होती है तथा चालू सम्पत्तियां मात्रा में अधिक होने पर ही यदि चालू दायित्वोंसे कम हैं तो वह संस्था की कमजोर शोधन क्षमता का परिचायक होती है। अतः शुद्ध कार्यशील पूँजी की अवधारणा अधिक महत्वपूर्ण है।

(iii) यदि अल्पकालीन ऋणदाताओं एवं विनियोगताओं की दृष्टि से विचार किया जाय तो शुद्ध कार्यशील पूंजी की अवधारणा अधिक उपयुक्त है तथा शुद्ध कार्यशील पूंजी की उपलब्धता में सुरक्षा प्रदान करती है।

कार्यशील पूँजी के घटक (Component of Working Capital)

कार्यशील पूँजी के दो घटक चालू सम्पत्तियाँ तथा चालू दायित्व हैं। इन दोनों शब्दों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चालू सम्पत्तियों (Current Assets) से तात्पर्य उन समस्त सम्पत्तियों से होता है जो व्यवसाय के एक सामान्य व्यापार चक्र या लेखा अवधि (जो साधारणतया एक वर्ष की होती है) में अपना स्वरूप परिवर्तित कर लेती हैं। जैसे स्टॉक का स्वरूप देनदानारों में तथा देनदारों का स्वरूप प्राप्त बिलों या नकद में तथा नकद का स्वरूप कच्चे माल या उत्पादन में परिवर्तित हो सकता है। इस प्रकार ये सम्पत्तियां व्यवसाय में निरन्तर अपना स्वरूप बदलती रहती हैं तथा इन्हें अधिक समय तक एक ही रूप में नहीं रखा जाता है। इसी कारण इन सम्पत्तियों को व्यवसाय की कार्यशील सम्पत्तियों (Working Assets) के नाम से जाना जाता है। चालू सम्पत्तियां व्यवसाय में चक्र की भाँति घूमती रहती हैं। चालू सम्पत्तियों में प्रमुख रूप से स्कन्ध, देनदार, प्राप्य बिल, बैंक शेष, रोकड़, अल्पकालीन विनियोग, पूर्वदत्त व्यय आदि सम्मिलित होते हैं।

चालू दायित्व (Current Liabilities) से तात्पर्य वे दायित्व या देनदारियां होती हैं जिन्हें एक साधारण व्यापार चक्र या लेखा अवधि के दौरान चुकाना होता है। इनके अन्तर्गत लेनदार, देय बिल, बैंक अधिविकर्ष, अल्ककालीन ऋण, देय आयकर, कर के लिए आयोजन, प्रस्तावित लाभांश, न माँगा गया लाभांश (Unclaimed Dividend) व अदत्त व्यय (OUtstanding Expenses), दीर्घकालीन ऋणों की चालू वर्ष में देय राशि आदि को सम्मिलित किया जाता है।

कार्यशील पूँजी के प्रकार (Types of Working Capital)

1. अवधारणाओं के आधार पर (On the Basis of Concepts)

2. आवश्यकताओं के आधार पर (On the Basis of Necessities)

1. अवधारणाओं के आधार पर (On the Basis of Concepts)- कार्यशील पूंजी अवधारणाओं के आधार पर दो प्रकार की हो सकती है–

(अ) सकल कार्यशील पूंजी (Gross Working Capital) – सकल कार्यशील पूंजी का आशय सम्पूर्ण चालू सम्पत्तियों के योग से होता है। चालू सम्पत्तियों में नकद, बैंक शेष, देनदार, स्टाक तथा पूर्वदत्त भुगतान आदि सम्मिलित होते हैं। कुछ विद्वान इसे चक्रीय पूंजी (Circulating Capital) की संज्ञा देना अधिक उपयुक्त समझते हैं।

(ब) शुद्ध कार्यशील पूंजी (Net Working Capital) – चालू सम्पत्तियों के चालू दायित्वों पर आधिक्य की राशि को शुद्ध कार्यशील पूंजी के नाम से जाना जाता है। आधुनिक विद्धान इस अवधारणा को उपयुक्त मानते हैं।

2. आवश्यकताओं के आधार पर (On the Basis of Necessities) - आवश्यकताओं के आधार पर कार्यशील पूंजी निम्न दो प्रकार का हो सकती है–

(अ) स्थायी अथवा नियमित कार्यशील पूँजी (Fixed or Regular Working Capital) –कार्यशील पूंजी की वह राशि जो व्यवसाय के सामान्य संचालन के लिए नियमित रूप से चालू सम्पत्तियों में विनियोजित रखी जाती है वह हिनयमित या स्थायी कार्यशील पूंजी कहलाती है। यह कार्यशील पूंजी संस्था में स्थायी तौर पर रखी जाती है, जैसे –कच्चे माल का न्यूनतम स्तर, स्टॉक में न्यूनतम तैयार माल, न्यूनतम बैंक या नकद शेष आदि।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ब) परिवर्तनशील या मौसमी कार्यशील पूंजी (Variable or Seasonal Working Capital) –नियमित कार्यशील पूंजी के अतिरिक्त व्यवसाय के सुविधापूर्वक संचालन के लिए वर्ष के दौरान मौसमी कार्यशील पूंजी की भी आवश्यकता पड़ती हैं यह पूंजी की राशि व्यवसाय के कुछ समय विशेष पर व्यापार की अधिकता या समय विशेष पर कच्चे माल की उपलब्धता के कारण हो सकती है, जैसे–सूती वस्त्र उद्योग में कपास की फसल पर वर्ष भर की कपास खरीद कर रखना होता है।

कार्यशील पूँजी का महत्व (Significance of Working Capital)

व्यवसाय के दिन प्रतिदिन के कार्यकलापों में कार्यशील पूंजी की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उचित मात्रा में स्थायी सम्पत्तियों का प्रबन्ध कर लेने मात्र से ही व्यवसाय का संचालन नहीं किया जा सकता है बल्कि इन सम्पत्तियों का पूर्ण उपयोग करके ही व्यवसाय में लाभ कमाया जा सकता है। स्थायी सम्पत्तियों का पूर्ण उपयोग कार्यशील पूंजी के उचित प्रबन्ध पर निर्भर करता है। व्यवसाय की सामान्य कार्यवाही का व्यवस्थित ढंग से संचालन करने के लिए कच्चा माल खरीदने उसे निर्मित माल में बदलने माल की बिक्री व्यवस्था करने तथा ग्राहकों को उधार माल बेचने आदि की आवश्यकता होती है। इन सबके लिए कार्यशील पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। व्यवसाय में कार्यशील पूंजी का महत्व मनुष्य शरीर में रक्त प्रवाह की भांति है जिस प्रकार मनुष्य का स्वास्थ्य रक्त अधिक होने व कम होने से विगड़ जाता है ठीक उसी प्रकार कार्यशील पूंजी की व्यवस्था छिन्न भिन्न होने व्यवसाय की स्थिति बिगड़ जाती है तथा प्रगति की बजाय पतन की ओर जाने लगता है। कार्यशील पूंजी पमुखतः व्यवसाय की निम्न आवश्यकताओं की पूर्ति करता है–

1. कच्चा माल खरीदने के लिए आवश्यक वित्त पोषक की व्यवस्था करना।
2. कच्चे माल को निर्मित माल में परिवर्तित करने के लिए आवश्यक मजदूरी व उपरि व्ययों का भुगतान करना।
3. उचित विक्रय व्यवस्था का संस्था को आत्म निर्भर बनाना।

कार्यशील पूंजी का प्रयोग विभिन्न प्रत्यक्ष व्ययों के तत्काल भुगतान के लिए किया जाता है। साधारणतया इन व्ययों का भुगतान माल विक्रय से पूर्व ही किया जाता है। आधुनिक व्यवसाय में जहां प्रतिस्पर्धा अधिक होती है विक्रय की उचित मात्रा बनाये रखने के लिए उधार माल बेचना आवश्यक होता है। बेचे गये माल की वसूली कुछ समय पश्चात होती है लेकिन इस समय के दौरान वह इस समय से पूर्व विभिन्न प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष व्ययों जैसे सामग्री बिजली, पानी, मजदूरी, किराया आदि निरन्तर व्यय होते रहते हैं। आय तथा व्यय के समयों में होने वाले अन्तर के कारण संस्था को कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है यदि संस्था भूमि मशीन, औजार आदि स्थिर सम्पत्तियों की व्यवस्था कर लें लेकिन व्यवसाय सामान कार्यों के लिए कार्यशील पूंजी की व्यवस्था न कर सके तो संस्था सफल नहीं हो सकती है। अतः वित्तीय योजना बनाते समय स्थिर सम्पत्तियों की सुदृढ़ व्यवस्था के साथ–साथ पर्याप्त कार्यशील पूंजी की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

कम्पनी के सामान्य कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए तथा अल्पकालीन शोधन क्षमता को बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि प्रारम्भ से ही पर्याप्त कार्यशील पूंजी की व्यवस्था कर ली जाय। पर्याप्त

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कार्यशील पूंजी के अभाव में प्रबन्धकों को अनेक वित्तीय कठिनाईयों को सामना करता पड़ता है जबकि पर्याप्त कार्यशील पूंजी (Adequate Working Capital) से व्यवसाय को निम्न लाभ प्राप्त होते हैं।

1. **बिक्रेताओं को तत्काल भुगतान (Quick Payment to Suppliers) –** संस्था अपने विक्रेताओं को समय पर भुगतान कर सकती है जिससे उनसे नियमित रूप से कच्चे माल उचित मूल्य तथा तथा सही समय पर प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

2- **ऋण क्षमता एवं साख में वृद्धि (Increase in Debt Capacity and Goodwill) –**पर्याप्त कार्यशील पूंजी अच्छी शोधन क्षमता का प्रतीक होती है। आवश्यकता पड़ने पर संस्था को तत्काल ऋण प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती है। ऋण प्राप्त करने की क्षमता तथा अच्छी साख के कारण संस्था का उत्पादन एवं व्यापारिक कार्य निरन्तर बिना किसी रूकावट के चलता रहता है।

3- **नगद छूट (Cash Discount) –**संस्था अपने विक्रेताओं को खरीदे गये माल को नगद भुगतान करके उनसे नगद छूट प्राप्त कर सकती है। इस प्रकार निर्मित माल की लागत कम करके माल के मूल्य में कमी कर सकती है तथा अपने ग्राहकों को आकर्षक व्यापारिक छूट देकर बिक्री बढ़ा सकती है।

4- **पर्याप्त लाभों का वितरण (Distribution of Adquate Dividance)** –जिस संस्था में कार्यशील पूंजी की कमी ज्ञात अभाव रहता है उसमें अत्यधिक लाभ होने पर भी पर्याप्त लाभांभ वितरण नहीं किये जा सकते हैं क्योंकि संचालकों का उद्देश्य लाभ का व्यवसाय में पुर्नविनियोग (Ploughing back of profits) करके कार्यशील पूंजी में वृद्धि करना होता हैं। इसके विपरीत जिस संस्थाओं में पर्याप्त कार्यशील पूंजी होती है उनमें लाभ होने पर लाभांश सुविधापूर्वक बांटा जा सकता है जिससे कम्पनी के अंशाधारी संतुष्ट रहते हैं तथा कम्पनी की प्रतिभूतियों का बाज़ार मूल्य स्थिर रहता है।

5- **अनुकूल अवसरों का लाभ (Exploitation of Favourable Opportunity) –**पर्याप्त कार्यशील पूंजी पर होने पर संस्था किसी भी अनुकूल अवसर का आसानी से लाभ उठा सकती है। अचानक माल निर्माण का बड़ा प्राप्त होने पर या कच्चे माल की कीमतों में वृद्धि की संभावना होने पर संस्था उचित मात्रा में कार्यशील पूंजी होने इन अवसरों का लाभ प्राप्त कर सकती है।

6- **बैंकों से ऋण प्राप्ति में सुविधा (Easy Availability of Bank Loans) –**पर्याप्त कार्यशील पूंजी होने पर संस्था की अल्पकालीन शोधन क्षमता अच्छी होती है जिससे बैंकों से सुरक्षित ऋण प्राप्त हो सकते हैं । पर्याप्त कार्यशील पूंजी स्वयं में एक उत्तम प्रतिभूति मानी जा सकती है।

7- **कार्यकुशलता में वृद्धि (Improvement in Efficiency) –**पर्याप्त कार्यशील पूंजी उपलब्ध होने पर संचालकों व प्रबन्धकों को कार्य करने की प्रेरणा मिलती है तााि इस प्रेरणा का उन पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है जिससे संस्था के सामान्य कार्यों में बाधा उत्पन्न नहीं होती है। कर्मचारियों का वेतन समय पर वितरित किया जाता है। कर्मचारी तथा प्रबन्धक आत्मविश्वास के साथ सफलतापूर्वक कार्य करते हैं जिससे कार्यकुशलता में वृद्धि होती है तथा संस्था आगे बढ़ती है।

8- **स्थायी सम्पत्तियों की उत्पादकता में वृद्धि (Increase in the Productivity of Fixed Assets) –** स्थायी सम्पत्तियों की उत्पादकता कार्यशील पूँजी पर निर्भर करती है। पर्याप्त कार्यशील पूंजी स्थायी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सम्पत्तियों की उत्पादकता में वृद्धि कर सम्पत्ति आवर्त को बढ़ाती है। कार्यशील पूंजी के अभाव या कमी की स्थिति में स्थायी सम्पत्तियां ठीक उसी प्रकार बेकार सिद्ध होती है जैसे बिना कारतूस के बन्दूक। अतः यह कहा जाता है कि स्थायी सम्पत्तियों में किये गये भारी विनियोग का भाग्य कार्यशील पूंजी द्वारा ही निर्णीत होता है।

9- **आकस्मिकताओं का सफलतापूर्वक सामना (Meeting Unseen Contingencies)** –व्यवसाय को व्यावसायिक चक्रों का सामना करना होता है। पर्याप्त कार्यशील पूंजी होने पर व्यवसाय छोटे–छोटे आर्थिक संकटों, आकस्मिक घटनाओं या व्यापारिक संकटों का आसानी से सामना कर सकता है।

आवश्यकता से अधिक कार्यशील पूंजी के दोष (Disadvantage of Excessive Working Capital)– किसी संस्था को उपर्युक्त वर्णित लाभ तभी प्राप्त हो सकेंगे जब संस्था के पास पर्याप्त कार्यशील पूंजी उपलब्ध हो। पर्याप्त कार्यशील पूंजी का आशय आवश्यकताओं से अधिक पूंजी से नहीं लगाया जाना चाहिए। पर्याप्त पूंजी का अभिप्राय यहां उचित पूंजी से है। उचित या पर्याप्त कार्यशील पूंजी से अधिक कार्यशील पूंजी संस्था के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती है। कभी–कभी कम्पनियों में लाभों के आवश्यकता से अधिक पुनर्विनियोजन, अधिक पूंजीकरण, अनुदार लाभांश नीति एवं दोषपूर्ण स्कन्ध प्रबन्ध के कारण कार्यशील पूंजी आवश्यकताओं से अधिक हो जाती है। इससे कार्यशील पूंजी का एक भाग निरर्थक पड़ा रहता है तथा इससे अपव्यय को प्रोत्साहन मिलता है, अतः आवश्यकता से अधिक कार्यशील पूंजी भी हानिकारक होती हे। इसके प्रमुख दोष निम्न हैं–

1. **अनावश्यक सामग्री का संग्रह (Unncessary Accumulation of Inventories)** –अत्यधिक कार्यशील पूंजी की स्थिति में अनावश्यक सामग्री में अधिक विनियोग होता है जिससे सामग्री की चोरी, बर्बादी तथा क्षति की सम्भावना बढ़ती है।

2- **सट्टात्मक लाभ प्रवृत्ति (Speculative Profit Tendency)** –आवश्यकता से अधिक कार्यशील पूंजी सामग्री का अधिक स्टॉक जमा करके सट्टात्मक लाभ प्रवृत्ति को बढ़ाता है।

3- **दोषपूर्ण साख नीति (Defective Credit Policy)** –अधिक कार्यशील पूंजी से उदार साख नीति को बल मिलता है तथा वसूली से भी ढील दी जाती है जिससे डूबत ऋण (Bad Debt) बढ़ते हें तथा लाभों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

4- प्रबन्धकीय अकुशलता (Managerial Inefficiency) –अत्यधिक कार्यशील पूंजी प्रबन्धकीय अकुशलता का प्रतीक होती है, क्योंकि प्रबन्धक कोषों का प्रभावी उपयोग करने में असफल **होते हैं।**

5- **लाभों पर विपरीत प्रभाव (Adverse Impact on Profits)** –अत्यधिक कार्यशील पूंजी से एक तरफ कोषों का पर्याप्त उपयोग नहीं होता है तथाउनकी व्यवस्था बैंक साख द्वारा की जाती है तो उन पर ब्याज भी चुकान पड़ता है, अतः इससे लाभ विपरीत प्रभावित होते हैं।

6- **अंशधारियों में असन्तोष (Dissatisfaction amog Shareholders)** –जिस संस्थानों में अत्यधिक कार्यशील पूंजी की स्थिति होती है वहां लाभदायकता घटती जाती है जिससे अंशधारियों को नीची दर से लाभांश मिलता है और उनमें असन्तोष बढ़ता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कार्यशील पूँजी के स्रोत (Sources of Working Capital)

एक उपक्रम कार्यशील पूंजी प्रायः निम्न दो स्रोतों से प्राप्त कर सकता है–

1. दीर्घ कालीन स्रोत (Long-term Source), तथा

2. अल्पकालीन स्रोत (Short term Sources)

1. **दीर्घ कालीन स्रोत (Long-term Source)** –दीर्घकालीन स्रोतों से साधारतया कार्यशील पूंजी के केवल उसी भाग की पूर्ति की जानी चाहिए जिसके लिए यह विश्वास हो कि उसकी व्यवसाय में लम्बे समय तक निरन्तर आवश्यकता होगी। जो कार्यशील पूंजी व्यवसाय में लम्बे समय तक निरन्तर रखली जाती है उसे दीर्घकालीन कार्यशील पूंजी कर सकते हैं, अतः साधारणतया दीर्घकालीन कार्यशली पूंजी की पूर्ति ही दीर्घकालीन स्रोतों से करनी चाहिए।

   कार्यशील पूंजी में दीर्घकालीन स्रोतों को प्रमुखतः दो भाग– 1. स्वामीगत स्रोत (Owned Sources) 2. ऋणगत स्रो (Borrowed Sources)

2- **अल्पकालीन स्रोत (Short term Sources)** – अल्पकालीन स्रोतों को मुख्यतः दो भाग है– (अ) आन्तरिक स्रोत (Internal Sources), तथा (ब) बाह्य स्रोत (External Sources)

(अ) आन्तरिक स्रोत (Internal Sources)

1. **ह्रास कोष (Depreciation Funds)** –ह्रास कोष स्थायी सम्पत्तियों को पुनः खरीदने के उद्देश्य से प्रतिधारित लाभ (Retained Profit) होते हैं अतः जब तक इन कोषों का प्रयोग स्थायी सम्पत्ति खरीदने में नहीं किया जाता तब तक यह संस्था को कार्यशील पूँजी प्रदान करते हैं।

2- **अदत्त भुगतान (Outstanding Payments)** – व्यवसाय में स्थिति विवरण की तिथि को कुछ भुगतान अदत्त रह जाते हैं। इनमें प्रमुखतः अदत्त वेतन, अदत्त किराया आदि सम्मिलित किये जाते हैं। इन व्ययों का भुगतान स्थिति विवरण की तिथि केपश्चात् किया जाता है। अतः मध्यान्तर समय में अदत्त भुगतान कार्यशील पूँजी के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं।

3- **करों के लिए प्रावधान (Provison for Taxation)** – व्यवसाय में करों के लिए किये गये प्रावधान की राशि का कर चुकाने में प्रयोग साधारणतया कुछ मध्यान्तर से ही किया जाता है। अतः मध्यान्तर की अवधि में प्रावधान की राशि को कार्यशील पूँजी के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

(ब) बाह्य स्रोत (External Sources) –

1. **व्यापारिक साख (Trade Credit)** – प्रायः सभी व्यावसयिक संस्थाएं इस साधन काप्रयोग कार्यशील पूँजी के रूप में करती हैं इसके अन्तर्गत पूर्तिकर्ताओं से कच्चे माल का उधार क्रय तथा स्थगित भुगतानों के आधार पर की गई खरीद को भी सम्मिलित किया जाता है।

2- **व्यापारिक साख–पत्र (Letters of Credit)** – इसके अन्तर्गत देय बिल (Bills Payable) प्रतिज्ञा–पत्र (Promisory Notes), तथा अन्य विनिमय पत्र सम्मिलित किये जाते हैं। ये सभी कार्यशील पूंजी से स्रोत हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3- **बैंकों से साख (Bank Credit)** – प्रायः सभी बैंक अपने प्रतिष्ठित ग्राहकों को अधिविकर्ष (Overdraft), नकद साख (Cash Credit), बिलों की पुनर्कटौती (Rediscounting) व अल्पकालीन ऋणों की सुविधा देते हैं। इन सबसे संस्था को कार्यशील पूंजी प्राप्त होती है।

4- **ग्राहकों से अग्रिम (Advance from Customers)** – कई बार ग्राहकों से अग्रिम भुगतान प्राप्त हो जाता है। यह अग्रिम भुगतान अल्पकालीन कार्यशील पूंजी का एक साधन होता है।

5- **वित्त संस्थाएं (Finance Companies)** – विभिन्न वित्त संस्थाएं जैसे विनियोग कम्पनियों, बीमा कम्पनियां तथा औद्योगिक विकास निगम आदि उद्योगों को विभिन्न प्रकार के ऋण देती हैं जो कार्यशील पूंजी के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं।

6- **जन निक्षेप (Public Deposits)** – व्यावसायिक संस्थाएं जन निक्षेप के रूप में अल्पकालीन व मध्यमकालीन कोष प्राप्त करती हैं। कार्यशील पूंजी का यह स्रोत अधिक विश्वसनीय व नियमित नहीं है।

7- देशी साहूकार आदि (Native Moneylanders, etc.) – पुराने समय से ही देश में साहूकार ऋण लेने व देने का कार्य करते आ रहे हैं। एक उपक्रम इन साहूकारों से भी **ऋण लेकर अपनी कार्यशील पूंजी की पूर्ति कर सकता है।**

8- **सरकारी सहायता (Government Assistance)** – उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार विभिन्न प्रकार की सहायता प्रदान करती है। ऐसे उद्योग, जिनको सरकार प्राथमिकता देती है उन उद्योगों में यह सहायता की राशि कार्यशील पूंजी में एक महत्वपूर्ण भाग अदा करती है।

9- **प्रबन्धकों एवं संचालकों से ऋण (Loans from Executives and Directors)** – यह देखा गया है कि समय–समय पर अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की कुछ पूर्ति प्रबन्धक या संचालकगण कर देते हैं। इस प्रकार एक उपक्रम कुछ सीमा तक अपनी कार्यशील पूंजी की पूर्ति इस ऋण के माध्यम से कर सकते हैं।

10- **कर्मचारियों की प्रतिभूति (Securities of Employees)** – कुछ उपक्रम अपने कर्मचारियों से प्रतिभूति के रूप में एक निश्चित धनराशि अग्रिम जमा ले लेते हैं जो साधारणतया उनके पूरे सेवाकाल तक कम्पनी के पास जमा रहती है। यह धनराशि संस्था में कार्यशील पूंजी के लिए प्रयुक्त की जा सकती है।

कार्यशील पूंजी की गणना की विधि

I. परिचालन चक्र विधि (Operating Cycle Method)

कार्यशील पूंजी का अनुमान लगाने की विधियों में परिचान चक्र विधि एक अंतिमहत्वपूर्ण विधि है। इस विधि के अनुसार एक व्यवसाय की रोकड़ कार्यशील पूंजी (Cash Working Capital) का अनुमान लगाया जाता है। एक व्यवसाय की रोकड़ कार्यशील पूंजी की गणना किसी अवधि के कुल परिचालन व्ययों में सम्बन्धित अवधि के परिचालन चक्रों की संख्या का भाग देकर की जाती है। अतः इस विधि के अनुसार कार्यशील पूंजी की गणना के लिए कुल परिचालन व्यय, परिचालन चक्र अवधि एवं परिचालन चक्रों की संख्या की गणनाकरना आवश्यक है जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

1- परिचालन व्यय (Operating Expenses) – किसी अवधि विशेष के कुल परिचालन व्ययों में उस अवधि की प्रत्यक्ष सामग्री, प्रत्यक्ष श्रम, प्रत्यक्ष व्यय तथा अप्रत्यक्ष व्यय (उपरिव्यय) सम्मिलित होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इन विभिन्न व्ययों का अनुमान लागत लेखों से प्राप्त किया जाता है। इन व्ययों की गणना में ह्रास तथा अमूर्त सम्पत्तियों के अपलेखन इत्यादि गैर–रोकड़ व्ययों को शामिल नहीं किया जाता है। इसी तरह कर एवं लाभांश इत्यादि के लाभों का नियोजन होने के कारण शामिल नहीं किया जाता है। कुल परिचालन व्ययों का अनुमान लगाते समय नये उत्पादों के प्रारम्भ किये जाने अथवा पुराने उत्पादों को छोड़ने अथवा उत्पाद मिश्रणों में परिवर्तन किये जाने वाले तथ्यों पर ध्यान दिया जाता है तथा इनके अनुसार अनुमानों में समायोजन किया जाता है। इसी तरह सम्भावित मूल्य स्तर में परिवर्तनों को भी ध्यान में रख कर आवश्यक समायोजन किये जाते है।

2- परिचालन चक्र की अवधि (Duration of Operating Cycle)- परिचालन चक्र अवधि से तात्पर्य कच्ची सामग्री की प्राप्ति से लेकर निर्मित माल के विक्रय से नगद वसूली तक की विभिन्न परिचालन अवस्थाओं में लगने वाले औसत समय से है। यह सकल परिचालन चक्र अवधि कहलाती है। इसमें लेनदारों द्वारा स्वीकृत उधार अवधि को घटाकर शुद्ध परिचालन चक्र अवधि ज्ञात की जाती है। एक निर्माणी संस्था के सकल परिचालन चक्र में साम्री संग्रहण अवधि, रूपान्तरण अवधि, निर्मित माल संग्रहण अवधि, तथा देनदार संग्रहण अवधि को शामिल किया जाता है, जिसे अग्रांकित रेखाचित्र से देखा जा सकता है–

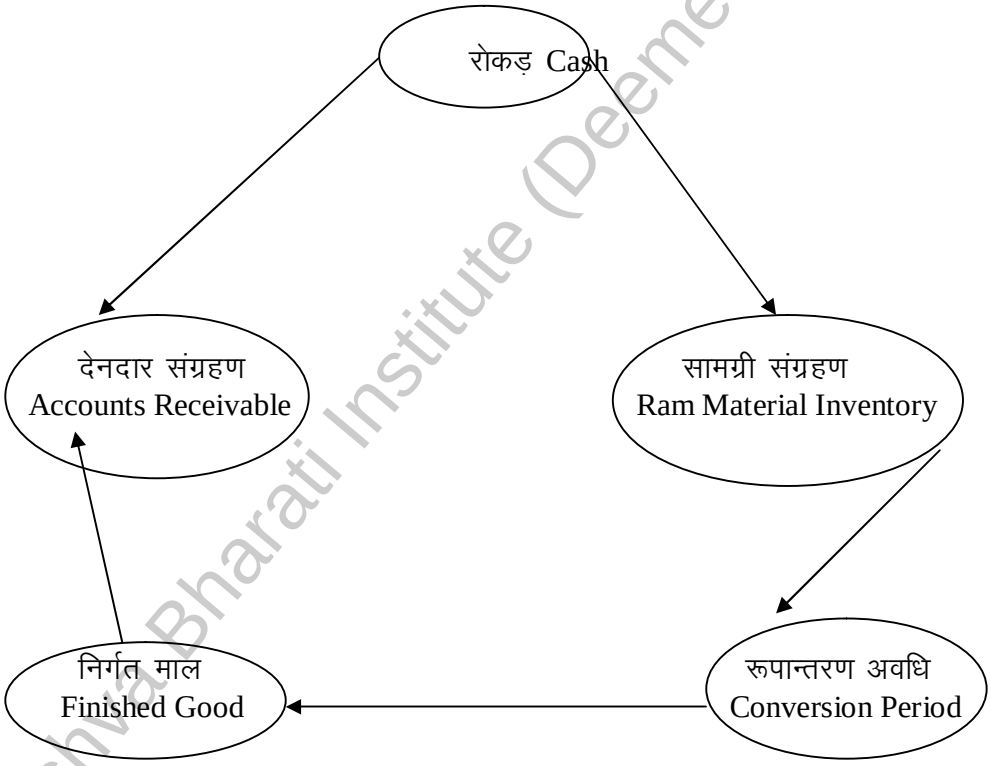

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि परिचालन चक्र अवधि परिचालन की विभिन्न अवस्थाओं में लगने वाले कुल समयका योग होती है जिसकी गणना निम्न प्रकार की जा सकती है–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(i) सामग्री संग्रहण अवधि (Material Storage Period)- यह वह अवधि होती है जिसमें सामग्री उत्पादन के लिए निर्गमन से पूर्व स्टोर अथवा गोदाम में रखी रहती है। इस अवधि की गणना के लिए औसत सामग्री स्टॉक में दैनिक औसत सामग्री उपभोग का भाग दिया जाता है। सूत्र रूप में:

$$\text{सामग्री संग्रहण अवधि (Material Storage Period)} = \frac{Average\,Stock\ of\ Raw\ Materials}{Daily\,Average Consumption}$$

OR

$$\frac{\text{Opening Stock + Closing Stock}}{2} \div \frac{\text{Material Consumption for the year}}{365}$$

OR

$$\frac{Average\,Stock\ of\ Raw\ Materials}{Material\,Consumption\ for\ the\ year} \times \text{No. of Days in a year}$$

(ii) रूपान्तरण अवधि (Conversion Period)- एक निर्माणी संस्था में कच्चे माल को निर्मित माल में बदलने में लगने वाला औसत समय रूपान्तरण अवधि होता है। इस अवधि की गणना के लिए अर्द्धनिर्मित माल के औसत स्कंध में दैनिक औसत कारखाना लागत का भाग दिया जाता है। इसे सूत्र रूप में निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

$$\text{रूपान्तरण अवधि (Conversion Period)} = \frac{Average\,Stock\ of\ Work-in-Progress}{Daily\,Average\,Factory\,Cost}$$

OR

$$\frac{\text{Opening WIP + Closing WIP}}{2} \div \frac{\text{Total Factory Cost of Production}}{365}$$

OR

$$\frac{Average\,Stock\ of\ Work-in-Progress}{Total\,Factory\ Cost\ of\ Production} \times \text{No. of Days in a year}$$

यहां पर विद्वान प्राध्यापक बन्धुओं एवं विद्यार्थियों को यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि Total Factory Cost में जो जो मदें शामिल होती हैं उन सबको हमें यहां शामिल करना है। सूत्र रूप में:

Factory Cost = Opening Stock of WIP + Material Consumed + Wages +Factory Expenses including Depreciation – Closing Stock of WIP

जब हम आग्र चलकर कार्यशील पूंजी की रोकड़ आधार पर गणना करेंगे तब कुल परिचालन व्ययों में से ह्रास (Depreciation) को घटायेंगे परन्तु यहां पर रूपान्तरण अवधि की गणना के लिए कारखाना लागत लेंगे तथा इसमें ह्रास को शामिल करेंगे।

(iii) निर्मित माल की संग्रहण अवधि (Finished Goods Storage Period)- यह वह अवधि होती है जिसमें निर्मित माल विक्रय के पूर्व गोदाम में पड़ा रहता है। इसकी गणना के लिए निर्मित माल के औसत स्कन्ध में विक्रय की दैनिक औसत लागत (Daily Average Cost of Sales) का भाग दिया जाता है। सूत्र रूप में:

निर्मित माल की संग्रहण अवधि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(Finished Goods Storage Period)= $\frac{Average\,Stock\ of\ Finished\,Goods}{Daily\,Average\,Cost\,of\ Sales}$

OR

$\frac{\text{Opening Stock of FG + Closing Stock of FG}}{2} \div \frac{\text{Cost of Sales}}{365}$

OR

$\frac{Average\,Stock\ of\ Finished\,Goods}{Cost\,of\ Sales}$ X No. of Days in a year

यहां पर बिक्री की लागत (Cost of Sales) लेना है जिसकी गणना निम्न प्रकार की जावेगी–

Cost of sales = Opening Stock of FG + Factory Cost of Production+
Administration Expenses + Selling and Distribution Expenses+
Excise Duty – Closing Stock of FG

यदि प्रश्न में वित्तीय व्यय (Financial Expernses) दिये हों तो वे भी जोड़े जावेंगे।

यहां पर पुनः विद्वान प्राध्यापक बन्धुओं एवं विद्यार्थियों को स्पष्ट करना चाहेंगे कि विक्रय एव ंवितरण व्यय विक्री की लागत का भग है अतः इन्हें जोड़ा जाना चाहिए।

(iv) देनदार संग्रहण अवधि (Debtor's Collection Period)- इसे देनदारों की औसत वसूली अवधि भी कहते हैं। यह वह अवधि होती है जिसमें उधार विक्रय की राशि वसूल कर ली जाती है। इसकी गणना के लिए औसत देनदारों की राशि में दैनिक औसत उधार विक्री का भाग देना हाता है। सूत्र रूप में –

देनदार संग्रहण अवधि

(Debtors' Collection Period)= $\frac{Average\,Debtorsor\,\text{Re}ceivable}{Daily\,Average\,Credit\,Sales}$

OR

$\frac{\text{Opening Debtors + Closing Debtors}}{2} \div \frac{\text{Total Credit Sales}}{365}$

OR

$\frac{Average\,\text{Re}ceivable}{Total\,Credit\,Sales}$ X No. of Days in a year

(v) लेनदार भुगतान अवधि (Creditors' Payment Period)- जब संस्था को सामग्री उधार या साख के आधार पर प्राप्त होती है तब लेनदार भुगतान अवधि की गणना की जाती है। इस अवधि से संस्था की परिचालन अवधि कम हो जाती है तथा संस्था को कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। इस अवधि की गणना के लिए औसत लेनदारों की राशि में दैनिक उधार क्रय का भाग देना होता है। सूत्र रूप में –

लेनदार भुगतान अवधि

(Creditors' Payment Period) = $\frac{Average\ Creditors}{Average\,Daily\,Credit\,Purchase}$

OR

$\frac{\text{Opening Creditors + Closing Creditors}}{2} \div \frac{\text{Total Credit Sales}}{365}$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

OR

$$\frac{Average\,Payables}{Total\,Credit\,Purchases} \text{ X No. of Days in a year}$$

जब हम उपरोक्त (i) से (v) तक की अवधियों की गणना कर लेतें हैं तब हमें परिचालन अवधि की गणना करनी होती है। इसके लिए हमें (i) से (v) तक की निर्धारित अवधियों के योग में से (v) में निर्धारित अवधि को घटा दिया जाता है तथा जो अवधि शेष बचती है वही परिचालन चक्र की अवधि होती है।

3. वर्ष के कुल परिचालन चक्रों की संख्या (No. of Completed Operating Cycles in the Year)- जब एक परिचालन चक्रक की अवधि ज्ञात कर ली जाती है तब उसके बाद हमें एक वर्ष में पूरे होने वाले चक्रों की संख्या ज्ञात करनी होती है। इसके लिए एक वर्ष के 365 दिनों में (अथवा दिनों की अन्य दी हुई संख्या जैसे 360 दिन) परिचालन अवधि का भाग दे दिया जाता है। सूत्र रूप में–

$$\text{No. of Operating Cycles in the Year} = \frac{365}{Period\,of\,Operating\,Cycle}$$

4. कार्यशील पूंजी की आवश्यकता का अनुमान (Estimation of Working Capital Requirement)- सामान्यतया कार्यशील पूंजी का अनुमान रोकड़ आधार पर किया जाता है। अतः ऐसा करने के लिए समस्त परिचालन व्ययों में से ह्रास की राशि घटा देनी चाहिए और इसके बाद बची परिचालन व्ययों की राशि में परिचालन चक्रों का भाग देकर कार्यशील पूंजी की आवश्यकता का निर्धारण किया जाता है। सूत्र रूप में

कार्यशील पूंजी की आवश्यकता

$$\text{(Working Capital Requirement)} = \frac{Total\,Operating\,Expenses\,Excluding\,Depreciation}{Number\,of\,Operating\,Cycle\,in\,a\,year}$$

OR

$$\frac{Operating\,Expenses}{365} \text{ X Operating Cytcle Period}$$

5. आकस्मिकताओं के लिए आयेाजन (Provison for Continencies)- इस प्रकार जो कार्यशील पूंजी निर्धारित होती है उसमें कुछ निश्चित प्रतिशत आकस्मिकताओं के लिए जोड़ दिया जाता हे। ऐसा इसलिए किया जाता है कि उपर्युक्त गणनाओं के अंक शुद्ध न होकर केवल अनुमान ही होते हैं। अतः अनुमानों की अशुद्धता को पूरा करने के लिए ऐसा किया जाता है।

उदाहरण–1: एक निर्माणी संस्था के लेखों से प्राप्त निम्न सूचना के आधार पर परिचालन चक्र अवधि की गणना दिनों में कीजिए:

From the followng information, Extracted from the books of a manufacturing company, compute the operating cycle period in days:

	Balance as at 31.4.2004 (Rs.)	Balance as at 31.4.2005 (Rs.)
Raw Material	110000	150000
Work-in-Progress	45000	60000
Finished Goods	90250	53750
Debtors	120000	150000
Creditors	40000	45000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Purchases of Material	-	770000
Wages	-	330000
Manufacturing Expenses	-	232500
Administration Expenses	-	136000
Selling and Distribution Expenses	-	83000
Sales	-	1642500

(i) सामग्री के क्रय में 149500 रू. की नगद क्रय शामिल है।

Purchase of material includes cash purchases of Rs. 149500.

(ii) समस्त माल उधार बेचा जाता है।

All goods are sold for credit.

Solution : Computation of Operating Cycle Period

(1) Raw Material Storage Period:

$$\frac{Average\,Stock\,of\,Raw\,Material}{Raw\,material\,consumption\,for\,the\,year} \text{ X } 365 = \frac{130000}{730000} \text{ X } 365 = 65 \text{ days}$$

Average Stock of Raw Material = $\frac{Rs.110000 + Rs.150000}{2}$ = Rs. 130000

Raw Material Consumption for the year=Opening Stock +Purchase-Closing Stock

=11000 + 77000 – 150000 = Rs. 730000

(2) Conversion or Processing Period:

$$\frac{Average\,Work-in-Progress}{Factory\,Cost} \text{ X } 365 = \frac{52500}{1277500} \text{ X } 365 = 15 \text{ days}$$

Average Work-in-Progress = $\frac{Rs.45000 + Rs.600000}{2}$ = Rs. 52500

Factory Cost = Openign WIP+Raw Material Consumed +Wages +Manufacturing Expenses-Closing WIP

= Rs.45000 + Rs. 730000 + Rs. 330000 + Rs. 232500 –Rs.60000=Rs. 1277500

(3) Finished Goods Storage Period:

$$\frac{Average\,Stock\,of\,Finished\,Goods}{Cost\,of\,Sales} \text{ X } 365 = \frac{72000}{1533000} \text{ X } 365 = 17.14 \text{ days}$$

Average Stock of Finished Goods = $\frac{Rs.90250 + Rs.53750}{2}$ = Rs. 72000

Cost of Sales = Openign Stock of FG +Factory Cost of Production +Administration Expenses +Selling and Distribution Expenses + Excise Duty – Closing Stock of FG

= Rs.90250 + Rs. 1277500 + Rs. 136000 + Rs. 83000 –Rs.53750=Rs. 1533000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(4) Debtors Collection Period:

$$\frac{Average\ Debtorss}{CreditSales} \text{ X } 365 = \frac{135000}{1642500} \text{ X } 365 = 30 \text{ days}$$

$$\text{Average Debtors} = \frac{Rs.120000 + Rs.150000}{2} = \text{Rs. } 135000$$

(5) Creditors Payment Period:

$$\frac{Average\ Creditors}{Credit\ Purchases} \text{ X } 365 = \frac{42500}{620500} \text{ X } 365 = 25 \text{days}$$

$$\text{Average Creditors} = \frac{Rs.40000 + Rs.45000}{2} = \text{Rs. } 42500$$

Credit Purchases = Rs.770000 + Rs. 149500 + Rs. 620500

Operating Cycle Period = 65 +15 +17 +30 -25 = 127 -25 = 102 days

Illustration 2 :

एक्स लि. से उपलब्ध सूचनाओं से कम्पनी की आवश्यक कार्यशील पूंजी की गणना परिचालन चक्र विधि से कीजिए–

(i) अनुमानित वार्षिक बिक्री 10000 इकाइयां 10 रू. प्रति इकाई की दर पर है।

(ii) उत्पादन एवं विक्रय मात्राएं एक समान हैं तथा वर्ष–पर्यन्त समान बनी रहती है। उत्पादन लागतें इस प्रकार हैं, सामग्री 5 रू., श्रम 2 रू. तथा उपरिव्यय 1.75 रू. प्रति इकाई।

(iii) ग्राहकों को 60 दिनों के लिए उधार दिया जाता है जबकि लेनदारों से 50 दिनों के उधार की सुविधा प्राप्त की जाती है।

(iv) कच्चे माल की 40 दिन की पूर्ति तथा निर्मित माल की 15 दिन की पूर्ति स्टॉक में रखी जाती है।

(v) उत्पादन चक्र 20 दिन का है तथा प्रत्येक उत्पादन चक्र के आरम्भ में ही सामग्री का निर्गमन कर दिया जाता है।

(vi) कार्यशील पूंजी का एक तिहाई भाग नकद के रूप में आकस्मिकताओं के लिए भी रखा जाता है।

From the following information taken from X Ltd. calculate the working capital required by the company by operating cycle methods-

(i) Annual Sales are estimated at 10000 units @ 10 per unit.

(ii) Production and sales quantities coincide and will be carried on evenly throughout the year and the production cost is material @ Rs. 500 Labour @ Rs. 2.00 adn overheads @ Rs. 1.75 per unit.

(iii) Customers are given 60 days credit and 50 days credit is taken from suppliers.

(iv) 40 days of supplies of raw material and 15 days supply of finished goods are kept in stock.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(v) The production cycle is 20 days and all materials are issued at the commencement of each production cycle.

(vi) A cash balance equal to one third of the working capital is also kept for contingencies.

Solution : Calculation of Operating Cycle

(1)	Operating Cycle Period	Days
	(i) Raw Material storage Period	40
	(ii) Finished Stock storage Period	15
	(iii) Processing Period	20
	(iv) Debtors Collection Period	60
		135
	Less : Creditors Payment Period	50
	Operating Cycle Period	85
(2)	Total Operating Expenses	Rs.
	Raw Material (10000 x 5)	50000
	Labour (10000 x 2)	20000
	Overhead (10000 x 1.75)	17500
		87500
(3)	Working Capital Required	
	= Total Operating Expenses X $\frac{Operating\ Cycle}{365}$	
	= 87500 X $\frac{85}{365}$	20376.71
	Add : 1/3 for Contingencies	6792.24
	Total Working Capital required	27168.95

Illustration :3

राधा मोहन एण्ड कमपनी की निम्न सूचना के आधार पर परिचालन चक्र अवधि तथा कार्यशील पूँजी की मात्रा की गणना कीजिए–

Calculate the duration of operating cycle and the amount of working capital required from the following information of Radha Mohan and Co.

	2005 (Rs. in Lakhs)
1. Opening Balance of	
(a) Raw Materials, Stores etc.	90
(b) Work-in-Process	50
(c) Finished Goods	220
(d) Book Debts	200
(e) Trade Coreditors	85
2. Closing Balance of	

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(a) Raw Materials, Stores etc.	110
(b) Work-in-Process	40
(c) Finished Goods	200
(d) Book Debts	250
(e) Trade Coreditors	100
3. Purchases of Raw Materials, Stores etc.	740
4. Consumption of Raw Materials, Stores etc	720
5. Manufacturing Expenses	350
6. Depreciation	60
7. Excise duty	100
8. Administration, Selling an Distribution Cost	270
9. Sales (Assume 360 days in a year)	1800

Solution : Computatin of Operating Cycle

(1) Material Storage Period :

$$= \frac{Average\,Stock\,of\ Raw\,Materials}{Consumption\,of\ Raw\,Materials} \text{ X } 360$$

$$= \frac{Rs.100\,lakhs}{Rs.720\,lakhs} \text{ X } 360 = 50\text{days}$$

(2) Work-in-Process Period :

$$= \frac{Average\,Work-in-process}{Factory\,Cost\,of\ \text{Pr}oduction} \text{ X } 360$$

$$= \frac{Rs.45\,lakhs}{Rs.1140\,lakhs} \text{ X } 14.2 \text{ days}$$

Total Factory Cost :	Rs. Lakhs
Opening WIP	50
Consumption of Materials	720
Manufacturing Expenses	350
Depreciation	60
	1180
Less : Closing Balance of WIP	40
	1140

(3) Finished Goods Storage Period :

$$= \frac{Average\,Stock\,of\ FinishedGoods}{Cost\,of\ Sales} \text{ X } 360$$

$$= \frac{Rs.210\,lakhs}{Rs.1590\,lakhs} \text{ X } 360 = 47.55 \text{ days}$$

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Average Stock of Finished Goods = $\frac{Rs.220\,lakhs + 200\,lakhs}{2}$ = Rs. 210 lakhs

Cost of Sales:	Rs. Lakhs
Opening Balance of Finished Goods	220
Factory Cost	1140
Excise Duty	160
Administration, Selling and Distribution Cost	270
	1790
Less : Closing Balance of Finished Goods	200
	1590

(4) Debtors Collection Period :

$= \frac{Average\,Debtors}{Credit\,Sales}$ X 360

$= \frac{Rs.225\,lakhs}{Rs.1800\,lakhs}$ X 360 = 45 days

$= \frac{Rs.210\,lakhs + 250\,lakhs}{2}$ = Rs. 225 lakhs

* It is assumed that all sales are credit sales.

(5) Creditors Payment Period :

$= \frac{Average Credibtors}{Credit\,Purchase}$ X 360

$= \frac{Rs.92.5\,lakhs}{Rs.740\,lakhs**}$ X 360 = 45 days

Average Creditors = $\frac{Rs.85\,lakhs + 100\,lakhs}{2}$ = Rs. 92.5 lakhs

** It is assumed that all purchases are credit purchases.

Operating Cycle in days = 50 + 14 + 48 + 45 = 112

Computation of No. of Operating Cycle in the year

$= \frac{Days\,in\,a\,year}{Length\,of\,Operating\,Cycle\,in\,dyas} = \frac{360}{122} = 3.21$

Computation of Working Capital Requirement

$= \frac{Total\,Operating\,Expenses\,Excluding\,Depreciation}{No.of\ Operating\,Cycles}$ + Desired Cash Balance

$= \frac{Rs.1530\,lakhs + 100\,lakhs}{3.21}$ = Rs. 476.63 lakhs

Total Cash Operating Expenses = Cost of Sales – Depreciation

= 1590 lakhs – 60 lakhs = Rs. 1530 lakhs

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

II. परम्परागत विधि अथवा पूर्वानुमान विधि (Traditional Method or Forecasting Method)

इस विधि को चालू सम्पत्ति एवं चालू दायित्व पूर्वानुमान विधि (Current Assets and Current Liabilities Forecasting Method) अथवा शुद्ध चालू सम्पत्ति (Net Current Assets Forecasting Method) के नाम से जाना जाता है। भारत में कार्यशील पूँजी काअनुमान लगाने के लिए सर्वाधिक प्रयोग परम्परागत विधि का होता है। इस विधि के अनुसार कार्यशील पूँजी का अनुमान लागने के लिए प्रत्येक चालू सम्पत्ति के लिए महीनों में आवश्यकता निर्धारित की जाती है तथा बाद में इस मासिक आवश्यकता को कुल अवधि से गुणा करके प्रत्येक चालू सम्पत्तियों के लिए कार्यशील पूँजी की गणना की जाती हे। प्रत्येक सम्पत्ति के लिए कुल अवधि का अनुमान विगत अनुभव, स्कन्ध नीति, भुगतान नीति तथा साख नीति आदि के आधार पर किया जाता है। समस्त चालू सम्पत्तियों की कुल राशि के योग में से संख्या को प्राप्त होने वाली सम्भावित व्यापारिक साख को घटा दिया जाता है तथा कुछ प्रतिशत आकस्मिकताओं के लिए जोड़ दिया जाता है जिससे अनुमानित कुल कार्यशील पूंजी ज्ञात हो जाती है। इस अनुमानित कुल कार्यशील पूँजी की राशि में बैंकों से प्राप्त होने वाली सुविधा घटाने के बाद वह राशि बचती है जिसकी व्यवस्था संस्था को स्वयं करनी होती है।

(अ) व्यापारिक संस्था की स्थिति में (For a Trading Concern) :

Statement of Working Capital Requirements

Items	Amount
(A) Current Assets :	
(i) Cash	x x x
(ii) Debtors of Receivables (For .....month's sales)	x x x
(iii) Stock (For .....months's sales)	x x x
(iv) Advance payments, if any	x x x
(v) Others	x x x
Total	x x x
B. Current Liabilities :	
(i) Creditors (For .....month's Purchases)	
(ii) Lag in Payment of Expenses x x x	
(Outstanding Expenses, if any) x x x	
Total of C.L.	x x x
C. Working Capital (-B)	
Add : Provional Margin for Contingencies	x x x
Net Working Capital Required	x x x
	x x x

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

टिप्पणियाँ **(Comments orNotes)**

(1) कार्यशील पूँजी का अनुमान करते समय लाभों को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि लाभों का उपयोग कार्यशील पूँजी के लिए किया भी जा सकता है और नहीं भी।

(2) स्कन्ध तथा देनदारों का मूल्य रोकड़ लागत पर ज्ञात किया जाना चाहिए जब तक कि प्रश्न में कोई अन्य बात न कहीं गई हो।

(ब) निर्माणी संस्था के सम्बन्ध में कार्यशील पूँजी की गणना (For a Manufaturing Concern)

Statement of Working Capital Requirements

Items		Amount
(A) Current Assets :		
(i) Stock of Raw materials (For .....month's consumption)		x x x
(ii) Work-in-Process (For .....month's)		
(a) Raw Material	x x x	
(b) Direct Labour	x x x	
(c) Overheads	x x x	x x x
(iii) Stock of Finished Goods (For .....months's sales) :		
(a) Raw Material	x x x	
(b) Direct Labour	x x x	
(c) Overheads	x x x	x x x
(iv) Sundry Debtors or Receivables (For....month's sales) :		
(a) Raw Material	x x x	
(b) Direct Labour	x x x	
(c) Overheads	x x x	x x x
(v) Payments in Advance (if any)		x x x
(vi) Balance of Cash (Required to meet day-to-day expenses)		x x x
(vii) Any other (if any)		x x x
Total of C.L. (A)		x x x
B. Current Liabilities :		
(i) Creditors (For .....month's Purchases of raw materials)		x x x
(ii) Lag in Payment of Expenses		x x x

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(Outstanding Expenses, if any)	x x x
(iii) Others (if any)	x x x
Total of C.L. (B)	x x x
C. Working Capital (A-B)	
Add : Provional Margin for Contingencies	x x x
Net Working Capital Required	x x x
	x x x

Illustration 4 :

निम्न विवरणों के आधार पर प्रतिवर्ष 12000 इकाईयों के उत्पादन स्तर की वित्तीय आवश्यकताओं के लिए कार्यशील पूँजी का विवरण बनाइये–

From the following particulars prepare a statement showing Working Capital needed to finance a level of activity of 1200 units of output per annum :

Analysis of selling price per unit:	Rs.
Raw Materials	5
Labour	3
Overhead	2
	10
Profit	2
Selling Price	12

अतिरिक्त सूचनाएं–

(i) कच्चा माल औसतन एक माह भण्डार में रहता है,

(ii) सामग्री औसतन दो मह उत्पादन प्रक्रिया में रहती है,

(iii) निर्मित माल औसतन तीन माह भण्डार में रहता है

(iv) देनदारां को चार माह की अवधि के लिए साख दी जाती है

(v) पूर्तिकर्ताओं द्वारा दो माह की साख दी जाती है

आप यह मान लें कि वर्ष भर उत्पादन तथा उपरिव्यय बराबर गति से चालू रहते हैं।

Additional Informtion:

(i) Raw materials are to remain in store on an average 1 month.

(ii) Materials are in process, on an average 2 months.

(iii) Finished Goods are in stock on an average 3 months.

(iv) Credit allowed to Debtors is 4 months.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(v) Credit allowed by Supliers is 2 months

It may be assumed that production and overheads accure evenly throughout the year.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Solution :

Statement showing the Working Capital Requirements

Items	Amount	
(A) Current Assets :	**Rs.**	**Rs.**
(i) Stock of Raw materials (1000 x Rs. 5 x 1)	5000	**5000**
(ii) Work-in-Process (For .....month's)		
(a) Raw Material (1000 x Rs. 5 x 2)	10000	
(b) Direct Labour (1000 x Rs. 3 x 2 x 1/2)	3000	
(c) Overheads (1000 x Rs. 2 x 2x 1/2)	2000	**15000**
(iii) Finished Goods		
(a) Raw Material (1000 x Rs. 5 x 3)	15000	
(b) Direct Labour (1000 x Rs. 3 x 3)	9000	
(c) Overheads (1000 x Rs. 2 x 3)	6000	**30000**
(iv) Sundry Debtors		
(a) Raw Material (1000 x Rs. 5 x 4)	20000	
(b) Direct Labour (1000 x Rs. 3 x 4)	12000	
(c) Overheads (1000 x Rs. 2 x 4)	8000	**40000**
Total Current Assets (A)		90000
B. Current Liabilities :		
(5) Creditors for Raw materials (1000 x Rs. 5 x 2)	10000	10000
Total of C.L. (B)		10000
C. Requirement Working Capital (A-B)		80000

गणनाएं

1. Average Monthly Production : $\frac{1200}{12\,Month}$ = Rs. 1000 Units

2. Debtors have been valued at cash cost of sales.

3. Work-in process valued at 100 per cent of raw materials and 50 per cent of labour and overheads.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Illustration 5 :

निम्न विवरण के आधार पर कार्यशील पूँजी की गणना कीजिए–

Calculate working capital from the following particulars-

(a)	Annual Expenses	Rs.
	Wages	52000
	Material & Stores	9600
	Office Salaries	12480
	Rent	2000
	Other Expenses	9600
(b)	Average amount of Stock to be maintained	
	Stock of Finished Goods	1000
	Stock of Material and Stores	1600
(c)	Expenses paid in advance	
	Quarterly advance	1600 p.a.
(d)	Annual Sales	
	Home Market	62400
	Foreign Market	15600
(e)	Lag in payment of all Expenses:	
	Wages	1.5 weeks
	Stores & Material	1.5 months
	Office Salaries	½ month
	Rent	6 months
	Other expenses	1.5 months
(f)	Credit allowed to customers:	
	Home Market	6 weeks
	Foreign Market	1.5 weeks

Solution:

Statement of Requirement of Working Capital

Items	Amount	
(A) Current Assets :	**Rs.**	**Rs.**
(i) Stock of Finished Goods		5000
(ii) Stock of Material & Stores		1600
(iii) Debtors-Home Market (Rs.62400 x $\frac{6}{52}$)	7200	
Debtors-Foreign (Rs.15600 x $\frac{1.5}{52}$)	450	**7650**
(iv) Prepaid Expenses (Rs.1600 x $\frac{1.5}{12}$)		**400**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Total Current Assets (A)		**10650**
B. Current Liabilities :		
(i) Creditors for Stores & materials		
(Rs.9600 x $\frac{1.5}{12}$)		1200
(ii) Creditors for Expenses :		
(a) Wages (Rs.52000 x $\frac{1.5}{12}$)	1500	
(b) Office Salaries (Rs.12480 x $\frac{1}{24}$)	520	
(c) Rent (Rs.2000 x $\frac{6}{12}$)	1000	
(d) Other expenses (Rs.9600 x $\frac{1.5}{12}$)	1200	4220
Total Current Liabilities (B)		5420
C. Requirement Working Capital (A-B)		**5230**

III. प्रक्षेपी चिट्ठा विधि (Projected Balance Sheet Method)

प्रक्षेपी चिट्ठा विधि - कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाने की एक अच्छी एवं सरल विधि है। इस विधि से किसी भावी अवधि के उत्पादन एवं विक्रय स्तर को ध्यान में रखकर संस्था की विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों तथा दायित्वों का अनुमान लगा कर एक चिट्ठा तैया किया जाता है। इसमें सम्पत्तियों में रोकड़ को छोड़ दिया जाता है। इस प्रक्षेपित चिट्ठे कुल सम्पत्तियों काा योग कुल दायित्वों के योग से अधिक है तो यह अन्तर अतिरिक्त साधनों की मात्रा को व्यक्त करता है जिनके लिए समझौते किये जाने चाहिए। यदि कुल दायित्वों का योग कुल सम्पत्तियों के योग से अधिक है तो यह अन्तर रोकड़ राशि को व्यक्त करता है जिसकी व्यवस्था संस्था को करनी है। इसके अतिरिक्त शुद्ध कार्यशील पूँजी की मात्रा रोकड़ सहित कुल चालू सम्पत्तियों के योग में से कुल चालू दायित्व घटा कर ज्ञात की जाती है।

Illustration 6:

निम्नलिखित सूचनाओं से प्रेक्षेपी चिट्ठा विधि द्वारा आवश्यक कार्यशील पूँजी का पूर्वानुमान कीजिए–

(1) 1 अप्रैल 2004 को शेष : समता अंश पूँजी 400000 रू., पूर्वाधिका अंश पूंजी 100000 रू., 9% ऋणपत्र 100000 रू. तथा स्थायी सम्पत्तियां 250000 रू. हैं।

(2) प्रति इकाई विक्रय मूल्य 10 रू. है, जिसका 50% सामग्री, 20% मजदूरी, 10% उपरि व्यय तथा 20% लाभ हैं:

(3) प्रतिवर्ष अनुमानित उत्पादन 120000 इकाइयाँ हैं

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(4) उत्पादन हेतु निर्गमन से पूर्व कच्चा माल भण्डार में औसतन 2 माह रखा जाता है,

(5) प्रक्रियांकन समय 1 1/2 माह है,

(6) निर्मित माल औसतन 2 माह स्टॉक में रहता है,

(7) देनदारों को उधार अवधि तीन माह हैं

(8) लेनदारों द्वारा स्वीकृत उधार दो माह हैं

(9) मजदूरी में भुगतान अन्तराल 1/2 माह तथा उपरिव्यय में एक माह है

(10) उत्पादन एवं विक्रय चक्र नियमित हैं। ह्रास का ध्यान नहीं रखना है।

From the following information forecast the working capital requirements by projected Balance Sheet Method:

(1) Balancees as on 1st April 2004: Equity Share Capital Rs. 400000, Preference Share Capital is Rs. 100000, 9% Debentures Rs. 100000 and Fixed assets Rs. 250000.

(2) Selling price per unit is Rs. 10, out of whcih 50% Material Cost, 20% Wages Cost, 10% Overhead Cost and 20% Profit.

(3) Estimated production per annum 120000 units.

(4) Raw materials are expected to remain in stock for an average of two months before issue to production.

(5) Processing time is 1½ months.

(6) Finished goods are in stock on an average two months

(7) Credit allowed to debtors is 3 months

(8) Credit allowed by creditors is two months

(9) Time lag in payment of wages is ½ month and of overhead is one month,

(10) There is regular production and sales cycle. Ignore depreciation.

Solution :

Projected Balance Sheet
as on 31st March, 2005

Liabilities	Amount (Rs.)	Assets	Amount (Rs)
Equity Share Capital	400000	Fixed Assets	250000
Pref. Share Capital	100000	Current Assets:	
Profit & Loss Account	231000	Stock of Raw Materials	100000
9% Debentures	100000	Stock of Work-in-Progress	97500
Creditors	100000	Stock of Finished Goods	160000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Outstanding wages	10000	Debtors	300000
Outstanding Overheads	10000	Cash (Balancing Figure)	43500
	951000		951000

Working Capital = Current Assets – Current Liabilities

= Rs. 641000 – Rs. 120000 = Rs. 521000

Current Assets = Rs. 100000 + Rs. 97500 + Rs. 160000 + Rs. 240000 + Rs. 43500 = Rs. 641000

Current Liabilities = Rs. 100000 + Rs. 10000 + Rs. 10000 = Rs. 120000

Notes : विभिन्न गणनायें निम्न प्रकार की गयी हैं–

(i) प्रति माह उत्पादन = $\frac{120000}{12}$ =10000 इकाइयां

(ii) प्रति इकाई सामग्री लागत = 10 रू. X $\frac{50}{100}$ = 5 रू.

प्रति इकाई श्रम लागत = 10 रू. X $\frac{20}{100}$ = 2 रू.

प्रति इकाई उपरिव्यय लागत = 10 रू. = 1 रू.

(iii) देनदार (विक्रय मूल्य पर) = 10000 X Rs. 10 X 3 month = Rs. 300000

देनदार (लागत पर) = 10000 X Rs.8 X 3 month = Rs. 240000

(iv) कच्ची सामग्री का स्टॉक = 10000 X Rs. 5 X 20 = Rs. 100000

(v) चालू कार्य का स्टाक Rs.

Raw Materials = 10000 X Rs. 5 X 1 $\frac{1}{2}$ = Rs. 75000

Wages = 10000 X Rs. 2 X $1\frac{1}{2}$ X $1\frac{1}{2}$ = Rs. 15000

Overheads = 10000 X Rs. 1 X 1 $\frac{1}{2}$ X $\frac{1}{2}$ = Rs. 7500

97500

(vi) निर्मित माल का स्टॉक : 10000 X Rs. 8 X 2= 160000

(vii) लेनदार = 10000 X Rs. 5 X 2 = 2 100000

(viii) बकाया मजदूरी = 10000 X Rs. 2 X $\frac{1}{2}$ = 10000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ix) बकाया उपरिव्यय = 10000 X Rs. 1 X 1=	10000
(x) वर्ष का लाभ = 120000 X Rs. 2 per unit =	240000
Less : Interest on Debentures	9000
Net Profit	231000

IV. लाभ–हानि समायोजन विधि (Profit and Loss Adjustment Method)

कार्यशील पूँजी का अनुमान करने के लिए लाभ–हानि समायोजन विधि का प्रयोग बैंकों द्वारा व्यावसायिक फर्मों की कार्यशील पूँजी की आवश्यकताओं की पूर्त का आकलन करने हेतु अधिक किया जाता है। इस विधि में सर्वप्रथम किसी भावी तिथि का अनुमानित लाभ ज्ञात किया जाता है। इस लाभ की राशि में रोकड़ अन्तर्वाह तथा रोकड़ बहिर्वाह का समायोजन करके कार्यशील पूँजी में वृद्धि अथवा कमी ज्ञात कर ली जाती है। यदि ध्यान से देखा जाय तो यह रोकड़ प्रवाह विवरण का ही एक ही रूप है।

Statement of Working Capital Computattion

Items	Amount
	Rs.
Net Income	x x x
Add : Non-trading/Non Cash Items	x x x
Working Capital provided by business operation	x x x
Add : Cash Inflow Items	x x x
	x x x
Less : Cash outflow items	x x x
Net Change in Working Capital	x x x

Illustration :7

हिन्दुस्तान मोटर्स लिमिटेड का 31 मार्च 2005 को समाप्त होने वाले वर्ष को पूर्वानुमानित लाभ–हानि खाता निम्नानुसार है–

Under-mentioned is the forecasted Profit and Loss Account of Hindustan Motor Limited for the year ended 31th March, 2005:

Particulars	Rs.	Particulas	Rs.
To Admn. & Selling Expenses	10000	By Gross Profit	200000
To Depreciation	20000	By Interest	10000
To Income Tax	5000		
To Interest	3000		
To Loss on Sale of Land	10000		
To Net Profit	162000		

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

	210000		210000
To Dividend	10000		162000
To Balance c/d	152000		
	162000		162000

अतिरिक्त सूचनाएं–

(1) 50000 रू. मूल्य की एक नई मशीन वर्ष के दौरान क्रय की जावेगी।

(2) 30000 रू. मूल्य की एक पुरानी मशीन जिस पर एकत्रित ह्रास 10000 रू. है, को 15000 रू. में बेचे जाने की सम्भावना है।

(3) 50000 रू. मूल्य के समता अंश 10 रू. प्रति अंश की दर पर निर्गमित किये जायेंगे।

(4) वर्ष के दौरान 100000 रू. के एक सावधि ऋण का भुगतान किया जायेगा।

कार्यशील पूंजी में कमी या वृद्धि का निर्धारण लाभ–हानि समायोजन विधि से कीजिए।

Additional Information :

(i) A new machine worth Rs. 50000 is to be purhased during the year.

(ii) An old machine of Rs. 30000 and with accumulated depreciation of Rs. 10000 is expected to be sold for Rs. 15000.

(iii) Equity Shares @ Rs.10 will be issued for cash aggregating Rs. 50000.

(iv) A term loan of Rs. 100000 will be repaid during the year.

Ascertain the amount of increase or decrease of working capital by Profit & Loss Adjustment Method.

Statement of Working Capital Computattion

Items	**Amount**	
	Rs.	**Rs.**
Net Profit as per P & L A/c		162000
Add : Non-Cash Charges not affecting working capital		
Depreciation	20000	
Less : On sale of land	10000	30000
Working Capital provided by business Operation		192000
Add : Cash inflows		
Issue of Equity Capital	50000	
Sale of Machine	15000	
		257000
Less : Cash Outflows :		
Repayment of term loan	100000	
Purchase of new machine	50000	
Payment of Dividend	10000	160000
Net Increase in Working Capital		97000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि वर्ष के अन्त में संस्था की शुद्ध कार्यशील पूंजी 97000 रूपये से बढ़ जायेगी। यदि हम यह मान लें कि वर्ष के प्रारम्भ में संस्था की शुद्ध कार्यशील पूँजी 123000 रूपये थी तो यह वर्ष के अन्त में बढ़कर 220000 रूपये हो जावेगी।

V. विक्रय का प्रतिशत विधि (Percentage of Sales Method)

कार्यशील पूँजी का निर्धारण की यह एक सरल एवं परम्परागत विधि है। इस विधि के अन्तर्गत भूतकालीन अनुभव के आधार पर कार्यशील पूँजी का निर्धारण किया जाता है। विभिन्न वर्षों में विक्रय एवं कार्यशील पूँजी के मध्य संबंध का अध्ययन कर कार्यशील पूँजी व उसके संघटकों का निर्धारण विक्रय के एक निश्चित प्रतिशत के रूप में कर लिया जाता है और इसी को आधार मानकर भावी विक्रय गतिविधियों हेतु कार्यशील पूंजी का अनुमान लगा लिया जाता है।

Illustration :8

अजय लिमिटेड का 31 मार्च 2005 को चिट्ठा निम्नानुसार है–

The Balance Sheet of Ajay Limited as on 31st March, 2005 is as follows:

Liabilities	Rs.	Assets	Rs.
Sahre Capital	1500000	Fixed Assets	1000000
Reserve & Surplus	400000	Current Assets:	
Term Loans	500000	Inventories	1200000
Sundry Creditors	800000	Receivables	800000
Provision for Taxation	200000	Cash & Bank	400000

कम्पनी का वर्ष 2004–05 का कुल विक्रय 40 लाख रू. है। कम्पनी द्वारा वर्ष 2005–06 में 50 लाख रू. का विक्रय किये जाने की सम्भावना है। वर्ष 2005–06 के लिए कार्यशील पूंजी का अनुमान कीजिए।

The sales of the company for 2004-05 was Rs. 40 lakhs. It anticipates a sales turnover of Rs. 50 lakhs in 2005-06. Estimate the working capital requirement of the compnay for 2005-06.

Statement of Working Capital Computattion

Items	Amount
(A) Current Assets	**Rs.**
Inventories (30% pf rs/ 5000000)	1500000
Receivable (20% of Rs. 5000000)	1000000
Cash & Bank (10% of Rs. 5000000)	500000
Total Current Assets (A)	3000000
(B) Current Liabilities	
Sundry Creditors (20% of Rs. 5000000)	1000000
Provision for Taxation (5% of Rs. 5000000)	250000
Total Current Liabilities	1250000
(C) Working Capital (A-B)	1750000

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Note : कार्यशील पूँजी के विभिनन घटक विक्रय के प्रतिशत के रूप में निम्नानुसार ज्ञात किये गये हैं–

(i) Inventories = $\frac{Rs.1200000}{Rs.4000000}$ x 100 = 30%

(ii) Receivables = $\frac{Rs.800000}{Rs.4000000}$ x 100 = 20%

(iii) Cash & Bank = $\frac{Rs.400000}{Rs.4000000}$ x 100 = 10%

(iv) Sundry Creditors = $\frac{Rs.800000}{Rs.4000000}$ x 100 = 20%

(v) Provision for Taxation = $\frac{Rs.200000}{Rs.4000000}$ x 100 = 5%

VI. प्रतीपगमन विश्लेषण विधि (Regression Analysis Method)

कार्यशील पूँजी के पूर्वानुमान की यह एक महत्वपूर्ण सांख्यिकीय तकनीक हैं इस विधि के अन्तर्गत भी पिछले अनुभव के आधार पर विक्रय एवं कार्यशील पूंजी व उसके विभिन्न घटकों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करके कार्यशील पूंजी का अनुमान लगाया जाता है। इस हेतु न्यूनतम वर्ग रीति का प्रयोग किया जाता है। विक्रय (X) तथा कार्यशील पूँजी (Y) का सम्बन्ध निम्न समीकरण द्वारा दिया गया है–

Y = a + bx (मूल समीकरण)

a तथा b का मूल्य निम्न सहायक समीकरणों द्वारा ज्ञात किया जायेगा

$\sum y = na + b\sum x$

$\sum xy = a\sum x + b\sum x^2$

यहां a = स्थिर मूल्य, b = परिवर्तनशील मूल्य, x = विक्रय, y = कार्यशील पूंजी, n = इकाइयों की संख्या

Illustration :8

विजय लिमिटेड की बिक्री एवं कार्यशील पूँजी के पिछले पांच वर्षों के आंकड़ों की सहायता से वर्ष 2006 के लिए कार्यशील पूंजी की आवश्यकता का अनुमान लगाइए, यदि प्रत्याशित विक्रय 160 लाख रू. हो।

With the help of sales and working capital figures (Rs. in lakhs) for Vijay Limited for the last five year, estimate the working capital requirements for the year 2006, if the anticipated sales in Rs. 160 laks.

Year	2001	2002	2003	2004	2005
Sales	64	88	104	118	138
Working Capital	44	54	64	88	90

Solution : Computation of Regression Equation of Sales and Working Capital

Year	Sales	Working Capital	XY	X^2

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

2000	64	44	2816	4096
2001	88	54	4752	7744
2002	104	64	6656	10816
2003	118	88	10384	13924
2004	138	90	12420	19044
N=5	=512	$\sum y$ =340	$\sum xy$ =37028	$\sum x^2$ =55624

सर्व प्रथम सहायक समीकरणों द्वारा a तथा b का मूल्य ज्ञात किया जायेगा।

$\sum y = na + b\sum x$ ..... (i)

$340 = 5a + 512b$

$\sum xy = a\sum x + b\sum x^2$

$37028 = 512a + 55624b$ ..... (ii)

समीकरण (1) को 512 से व समीकरण (2) को 5 से गुणा करके घटाने पर–

$174080 = 2560a + 262144b$ .....(iii)

$185140 = 2560a + 278120b$ .....(iv)

$-11060 = -15976b$

$b = \frac{11060}{15976} = 0.6923$

b का मान समीकरण (1) में रखने पर –

$340 = 5a + 512 \times 0.6923$

$340 - 354.46 = 5a$

$a = \frac{-14.46}{2} = -2.89$

a व b का मान मूल समीकरण (1) में रखने पर –

मूल समीकरण $y = a + bx$

Where y = Working Capital

x = Sales

विक्रय 160 लाख रूत्र होने पर कार्यशील पूँजी –

$y = -2.89 + 0.6923 \times 160$

= 107.878 लाख रू.

VII. रोकड़ पूर्वानुमान विधि (Cash Forecasting Method)

यह विधि वास्तव में देखा जाय तो कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाने की विधि न होकर किसी भावी तिथि को फर्म के रोकड़ की स्थिति जानने की विधि है। इस विधि में इस बात का अनुमान लगाया जाता है कि फर्म की पूर्व अनुमानित बजट क्रियाओं के कारण भविष्य की किसी तिथि को फर्म के पास रोकड़ का आधिक्य होगा अथवा कमी। यदि कमी होगी तो फर्म उसको प्राप्त करने की अग्रिम व्यवस्था करती है। और यदि आधिक्य है तो उसके विनियोग की व्यवस्था करती है अतः यह तो रोकड़ बजट का ही एक रूप है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कार्यशील पूँजी की मांग के निर्धारक घटक या तत्व
(Determinants of Working Capital Requirements)

कार्यशील पूँजी की राशि क्या हो, कितनी राशि का किस समय विशेष के लिए प्रबन्ध किया जाए तथा किस चालू सम्पत्ति में कितना विनियोजन किया जाए इत्यादि प्रश्नों के सम्बन्ध में वित्तीय प्रबन्धक को निर्णय लेने होते हैं। इन निर्णयों के लिए कोई सामान्य मापदण्ड नहीं है जिसे सभी संस्थाओं या उद्योगों पर समान रूप से लागू किया जा सके। इन प्रश्नों का निर्णय उद्योग में संलग्न व्यक्तिगत इकाइयों तथा विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार किया जा सकता है। कार्यशील पूँजी की राशि को विभिन्न आन्तरिक तथा बाह्य तत्व प्रभावित करते हैं जिनमे निम्न प्रमुख हैं–

1. **व्यवसाय की प्रकृति (Nature of Business)-** नियमित एवं निश्चित मांग वाले व्यवसायों में अनियमित एं अनिश्चित मांग वाले व्यवसायों की अपेक्षाकृत कम कार्यशील पूँजी से काम चल जाता है। नियमित एवं निश्चित माँग होने से नगद प्रवाह सदैव बना रहता है तथा स्कन्ध में अधिक विनियोग नहीं करना पड़ता हैं जिन व्यवसायों में मशीनीकरण की मात्रा कम व मानव श्रम की मात्रा अधिक होती है उन उद्योगों या व्यवसायों की अपेक्षा उन व्यवसायों में अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। जहाँ मशीनीकरण की मात्रा अधिक तथा मानव–श्रम से कम काम लिया जाता है।

2- फर्म या व्यवसाय का आकार (Size of the Business of Firm)- व्यवसाय या फर्म के आकर पर भी कार्यशील पूँजी की मात्रा निर्भर करती है। व्यवसाय का आकार जितना बड़ा होगा उतनी ही अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी, क्योंकि बड़े व्यवसायों में स्थायी पूँजी अधिक होती है जिसके लाभदायक उपयोग के लिए अधिक कार्यशील पूँजी होना आवश्यक है।

3- उत्पादन प्रक्रिया (Production Process)- यदि उत्पादन प्रक्रिया की सामान्य अवधि लम्बी है या उत्पादन प्रक्रिया जटिल है तो अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी, क्योंकि उत्पादन प्रक्रिया जटिल उपरिव्यय तथा अन्ततोगत्वा अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

4- रोक की आवश्यकता (Requirement of Cash)- रोकड़ शेष चालू सम्पत्तियों का एक भाग होता है, अतः रोकड़ की आवश्यकता कार्यशील पूँजी की मात्रा को प्रभावित करती है। रोकड़ की आवश्यकता प्रायः मजदूरी, वेतन, कर, किराया, विविध व्यय तथा लेनदार इल्यादि को भुगतान में पड़ती है। इन भुगतानों की राशि जितनी अधिक होगी, कार्यशील पूँजी की राशि उतनी ही अधिक होगी।

5- उत्पादन लागत में कच्चे माल का स्थान (Importance of Raw Materials in Production Cost)- जिन उद्योगों की उत्पादन लागत में कच्चे माल का महत्वपूर्ण स्थान होता है उनमें अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है, क्योंकि कच्चे माल को उसी अनुपात में क्रय करना, भण्डार करना तथा माल के आवागमन पर अन्य खर्चे वहन करने होते हैं।

6- उत्पादन नीतियाँ (Production Policies)- जिन उद्योगों में उत्पादन किसी एक मौसम विशेष में ही किया जाता है (जैसे बर्फ कारखाना, ऊनी वस्त्र उद्योग) या उत्पादन का विक्रया मौसम विशेष में किया

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जाता है (जैसे बिजली के पंखे, हीटर इत्यादि) वहाँ उस मौसम विशेष में अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

7- माल की आवृत्ति (Turnover of Inventories)- किसी भी संस्था में माल तीन प्रकार का हो सकता है– कच्चा माल, अर्द्धनिर्मित माल एवं निर्मित माल। तीनों ही प्रकार का माल चालू सम्पत्तियों में सम्मिलित होता है, अतः कार्यशील पूँजी को प्रभावित करता है। प्रायः माल जितनी तेजी से आवृत्त होगा उतनी ही कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी। कच्चा माल जिस तेजी से उत्पादन प्रक्रिया पूरी करेगा, अर्द्ध निर्मित माल जितनी जल्दी निर्मित माल में परिवर्तित होगा तथा निर्मित माल जितनी जल्दी नकदी का रूप धारण करेगा उतनी ही कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी।

8- खरीद की शर्तें एवं रीतियाँ (Terms and Methods of Purchases)- विभिन्न प्रकार का कच्चा माल एवं अन्य सामान किन शर्तों पर खरीदा जाता है तथा कितनी मात्रा में खरीदा जाता है, इसका भी कार्यशील पूँजी पर प्रभाव पड़ता है। यदि समस्त वर्ष भर का कच्चा माल किसी एक मौसम विशेष में खरीद लिया जाता है तो अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी और यदि कच्चा माल वर्ष के दौरान विभिन्न किस्तों में खरीदा जाता है तो कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त यदि माल उधार खरीदा जाता है तो कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी तथा यदि माल नकद खरीदा जाता है तो अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी।

9- विक्रय की शर्तें (Terms of Sales)- यदि माल उधार बेचा जाता है तो अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी लेकिन यदि माल नगद बेचा जाता है तो कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिकत उधार वसूली का का भी कार्यशील पूँजी पर प्रभाव पड़ता है। यदि धार वसूली समय पर हो जाती है तो अपेक्षा कृत कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी।

10. **क्रय एवं विक्रय की शर्तों के सम्बन्ध (Relation betwen Terms of Purchase and Sale)-** यदि माल उधार खरीदा जाता है तो उस स्थिति में अपेक्षा कृत कम कार्यशील पूँजी की आवश्यता पड़ेगी जबकि माल नकद खरीदा जाता है तथा उधार बेचा जाता हो। यदि माल नकद बेचा जाता हो और उधार खरीदा जाता हो तो भी कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ेगी। इसके अतिरिक्त यदि उधार विक्रय की वसूली सही समय पर नहीं होती हो लेकिन उधार क्रय का भुगतान सी समय पर देना पड़े तो अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी। उधार क्रय–विक्रय की अवधि का भी कार्यशील पूँजी पर प्रभाव पड़ता है। उधार क्रय की अवधि अधिक तथा उधार विक्रय की अवधि कम होने पर कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। लेकिन उधार विक्रय की अवधि तथा क्रय की अवधि कम होने पर अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

11- बैंकिंग सम्बन्ध (Banking Connections)- ऐसी संस्थाएँ जिन्हें पर्याप्त बैंकिंग सुविधाएं प्राप्त हैं अर्थात् बैंकों की दृष्टि से जिनकी साख अच्छी है तथा जिन संस्थाओं में बैंकों का विश्वास है, वे संस्थाएं समय पड़ने पर शीघ्र वित्त की व्यवस्था कर सकती हैं तथा अपना कार्य कम नकद कोषों पर भी चला सकती है। अतः ऐसी संस्थाओं को कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

12- व्यवसाय के विकास की सामान्य दर (Normal Rate of Expansion of the Business)- प्रारम्भ में कुछ वर्षों में व्यवसाय का विकास धीरे–धीरे होता है तथा विकास के साथ–साथ कार्यशील पूँजी की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। व्यवसाय के विकास की दर एवं कार्यशील पूँजी की कमी के कारण व्यवसाय की प्रगति में रूकावट हो सकती हे। प्रायः व्यवसाय के विकास के साथ–साथ अतिरिक्त कार्यशील पूँजी की पूर्ति लाभ के पुनर्वियोग द्वारा कर दी जाती है लेकिन यदि विकास की योजना बड़ी हो तो इसके लिए पर्याप्त कार्यशील पूँजी की व्यवस्था अन्य साधनों से की जानी चाहिए।

13- व्यावसायिक उच्चावचन (Business Cycles)- व्यवसाय को विभिन्न चक्रों से गुजरना पड़ता है जिसमें तेजी व मन्दी के चक्र भी सम्मिलित हैं। यदि व्यवसाय की दशा सामान्य है तो कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु व्यवसाय तेजी (Boom) या मन्दी (Slum) की दशा में है तो कार्यशील पूँजी की आवश्यकता में वृद्धि हो सकता है। तेजी काल में साधारणतया यह देखा गया है कि निर्मित माल का मूल्य उतनी शीघ्रता और उस अनुपात में नहीं बढ़ता जितनी शीघ्रता व जिस अनुपात में कच्चे माल का मूल्य व उत्पादन व्ययों में वृद्धि होती है। भावी मूल्य वृद्धि की आशा में अधिक कच्चा माल व अन्य सामान स्टॉक में रखना होता है। अतः अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। मन्दीकाल में व्यवसाय का संकुचन होता है। इस संकुचन के परिणामस्वरूप स्थायी सम्पत्तियों व कार्यशील पूँजी का एक भाग निष्क्रिय हो जाता है। मन्दी से व्यवसाय ज्यों–ज्यों उभरता है त्यो–त्यों कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पुनः उभरती है।

14- लाभांश नीतियाँ (Dividend Policies)- लाभांश नीति व कार्यशील पूँजी का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि लाभांश नकद में वितरित किया जाता है तो अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है लेकिन लाभांश अधिलाभांश अंशों (Bonus Shares) में वितरित किया जाता है तो कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी।

15- अन्य तत्व (Other Factors)- उपरोक्त के अतिरिक्त उपक्रम की उत्पादन एवं वितरण नीतियों में समन्वय, परिवहन एवं संवादवाहनण् स्रकारी नीति इत्यादि का कार्यशील पूँजी पर प्रभाव पड़ता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रोकड़ का प्रबन्ध (Management of Cash)

रोकड़ प्रबन्ध का अर्थ (Meaning of Management of Cash)

रोकड़ का प्रबन्ध करने से आशय सामान्यतः संस्था की रोकड़ सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु रोकड़ कोषों की व्यवस्था करने से लागाया जाता है। वित्तीय पबन्ध के दृष्टिकोण से रोकड़ प्रबन्ध में संस्था के विभिन्न प्रयोजनों को ध्यान में रखते हुए रोकड़ का अनुकूलतम स्तर का निर्धारण करना, आवश्यक रोकड़ कोषों की व्यवस्था करना, संस्था में रोकड़ के अन्तर्वाहों एवं बहिर्वाहों का ध्यान रखते हुए आवश्यकता के समय रोकड़ कोषों की उपलब्धता को सुनिश्चित करना, रोकड़ कोषों के आधिक्य का उचित विनियोजित करना और न्यूनतम रोकड़ कोषों से संस्था आवश्यकता की पूति करते हुए तरलता एवं लाभदायकता में सन्तुलन स्थापित करना शामिल हे। इस प्रकार रोकड़ के प्रबन्ध से आशय रोकड़ कोष के अनुकूलतम स्तर का निर्धारण करना और उसे बनाए रखने हेतु रोकड़ प्रवाहों पर नियंत्रण करते हुए फर्म के मूल्य को अधिकतम करने के उद्देश्य से तरलता एवं लाभदायकता में सन्तुलन स्थापित करना है।

रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्य (Objective of Management of Cash)-

रोकड़ के प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य संस्था के लाभों को अधिकतम करने के लिए तरलता एवं लाभदायकता में संतुलन बनाये रखना है। संस्था के पास जितनी अधिक रोकड़ होगी, तरलता उतनी ही अधिक होगी लेकिन लाभदायकता उतनी ही कम होगी। इसके विपरीत संस्था के पास जितने रोकड़ शेष कम होंगे, तरलता उतनी ही कम होगी तथा लाभ अर्जन शक्ति उतनी ही अधिक होगी। अतः संस्था को तरलता एवं लाभदायकता में संतुलन बनाये रखना होता है। इस दृष्टि से रोकड़ प्रबन्ध के दो मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है–

1. भुगतान अनुसूची के अनुसार रोकड़ वितरण की आवश्यकताओं की पूर्ति करना, और
2. रोकड़ शेष के रूप में बंधी राशि के स्तर को न्यूनतम रखना।

रोकड़ प्रबन्ध के कार्य अथवा क्षेत्र (Functions or Scope of Management of Cash)-

रोकड़ प्रबन्ध के लिए किये जाने वाले समस्त कार्यों का अध्ययन निम्न शीर्षकों में किया जा सकता है, रोकड़ प्रबन्ध में किए जाने वाले ये कार्य रोकड़ प्रबन्ध के क्षेत्र को भी स्पष्ट करते हैं–

1. रोकड़ का नियेाजन एवं नियन्त्रण (Cash Planning and Control)
2. कोषों का कुशलतापूर्वक संग्रहण एवं नियन्त्रण (Collecting and Disbursing Funds Effeciently),
3. उपयुक्त या समुचित कार्यशील रोकड़ शेष का निर्धारण (Determining the Appropriate Working Cash Balance), तथा
4. शेष आधिक्य रोकड़ का विनियोजन (Investing the Remaining Excess Cash Balance)

उपर्युक्त वर्णित प्रत्येक कार्य का विस्तार पूर्वक विवरण निम्न प्रकार हैं–

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

I. रोकड़ का विनियोजन एवं नियंत्रण (Cash Planning and Control)

रोकड़ प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य रोकड़ शेष को न्यूनतम रखते हुए लाभ को अधिकतम करना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु रोकड़ नियोजन एवं एवं नियन्त्रण आवश्यक है। रोकड़ नियोजन से अभिप्राय आगामी अवधि के लिए रोकड़ के आधिक्य एवं कमी का उचित प्रबन्ध करने हेतु रोकड़ प्राप्ति की मात्रा का अनुमान लगाना एवं भुगतानों को व्यवस्थित करने की प्रक्रिया से है जबकि रोकड़ नियन्त्रण से अभिप्राय यह देखने से है कि रोकड़ की प्राप्ति एवं भुगतान रोकड़ नियोजन के अनुसार हो रहे हैं या नहीं । रोकड़ नियोजन एवं नियन्त्रण के लिए बजट अवधि के लिए रोकड़ के अन्तर्वाहों एवं बहिर्वाहों के पूर्वानुमान लगाए जाते हैं। ये पूर्वानुमान आवश्यकता के अनुरूप अल्पकालीन अथवा दीर्घकालीन हो सकते हैं।

रोकड़ नियोजन एवं नियंत्रण हेतु निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है–

(अ) रोकड़ बजट (Cash Budget)- रोकड़ बजट रोकड़ नियोजन एवं नियंत्रण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। रोकड़ बजट आगामी अवधि के प्रत्याशित रोकड़ अन्तर्वाहों एवं बहिर्वाहों का एक संक्षिप्त विवरण होता है।

2. समायोजित लाभ–हानि विधि (Adjusted Proft and Loss Method) – यह विधि वहां अधिक उपयुक्त रहती है जहां रोकड़ का दीर्घकालीन पूर्वानुमान लगाया जाता है। इसे समायोजित लाभ हानि पद्धति इसलिए कहते हैं क्योंकि इसमें बजट अवधि के अनुमानित लाभ की राशि को रोकड़ अन्तर्वाह एवं रोकड़ बहिर्वाह को प्रभावित न करने वाली आय एवं व्यय की मदों से समायोजित करके रोकड़ राशि में बदला जाता है। इस विधि को रोकड़ प्रवाह विवरण (Cash Flow Statement) विधि भी कहा जाता है।

3. प्रक्षेपित चिट्ठा विधि (Project Balance Sheet Method) – यह विधि भी रोकड़ के दीर्घकालीन के पूर्वानुमानों के लिए अधिक प्रयोग में लाई जाती है। यह विधि सैद्धान्तिक रूप से समायोजित लाभ हानि विधि की तरह से ही है। इस विधि में बजट अवधि के लिए रोकड़ को छोड़कर चिट्टे की अन्य सभी मदों सम्पत्तियों एवं दायित्वों –को पूर्वानुमान लगाया जाता है। यदि समस्त दायित्वों, सम्पत्तियों से अधिक होते हैं तो यह राशि रोकड़ या बैंक शेष (Cash or Bank Balance) को व्यक्त करती हैं। विपरीत दशा में यह शेष बैंक अधिविकर्ष (Bank Overdraft) को व्यक्त करता है।

II. रोकड़ कोषों का संग्रहण एवं सवितरण (Collecting and Disbursion of Cash Funds)- रोकड़ कोषों के संग्रहण एवं सवितरण पर नियंत्रण करने के लिए सस्था के रोकड़ चक्र (Cash Cycle) को समझना आवश्यक है। रोकड़ चक्र कच्ची सामग्री के क्रय से लेकर विक्रय की नकद वसूली तक की घटनाओं के क्रम को पूरा करने में लगने वाले समय एवं रोकड़ कोषों की आवश्यकता को दर्शाता है।

III. समुचित कार्यशील रोकड़ शेष का निर्धारण (Determining the Appropriate Working Cash Balance)- रोकड़ कोषों का कुशलतापूर्वक संग्रहण व सवितरण करने के पश्चात संस्था के सामने समुचित कार्यशील रोकड़ के शेष के निर्धारण की समस्या आती है। संस्था दीर्घकालीन वित्तीय ढांचा दीर्घकालीन योजनाओं द्वारा निर्धारित होता है। लेकिन कार्यशील रोकड़ शेषों का निर्धारण परिचालन योजना (Operating Plan) पर निर्भर करता है। कार्यशीन व नकद शेष से अभिप्राय रोकड़ की उस राशि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

से है जिसकी सहायकता से परिचालन योजना के व्ययों का भुगतान समय पर किया जा सके। यदि रोकड़ शेष परिचालन योजना के व्ययों से अधिक होता है तो आधिक्य शेषों का अल्पकालीन प्रतिभूतियों में विनियोजन कर दिया जाता है।

IV. रोकड़ आधिक्य शेष का विनियोजन (Investing the Remaining Excess Cash Balance)- आधिक्य रोकड़ शेष से अभिप्राय संस्था में आवश्यक रोकड़ शेषों से अधिक मात्रा में रखे गये रोकड़ शेष से हैं। प्रायः आकस्मिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संस्थाएं सुरक्षा की दृष्टि से कुछ अतिरिक्त रोकड़ शेष संस्था में रखना पसंद करती हैं। इस प्रकार से अतिरिक्त रोकड़ शेष का विनियोजन का विक्रयशील प्रतिभूतियों में कर दिया जाना चाहिए जिससे कि तरलता को प्रभावित किये बिना ब्याज अर्जित किया जा सके।

रोकड़ प्रबन्ध के लाभ (Advantage of Cash Management)-

रोकड़ प्रबन्ध से संस्था को निम्न लाभ प्राप्त होते हैं–

1. **जीवन रक्त (Life blood)-** रोकड़ की सामयिक पूर्ति संस्था के लिए जीवन रक्त के समान है। रोकड़ कोषों की पर्याप्त पूर्ति एक असफल फर्म को हानियों के बावजूद जिन्दा रख सकती है जबकि अपर्याप्त रोकड़ कोषों की पूर्ति सम्भावित अच्छी आय वाली फर्म को भी असफल कर सकती है।

2- अनुकूलतम कार्यशील पूंजी (Optimum Working Capital)- एक फर्म या संस्था सामयिक रोकड़ बजट द्वारा अग्रिम रूप से रोकड़ आधिक्य अथवा घाटे को जानकर उसके उपयुक्त विनियोग अथवा घाटे की पूर्ति हेतु अधिविकर्ष आदि की व्यवस्था करके कार्यशील पूंजी की अनुकूलतम स्थिति प्राप्त कर सकती है।

3- रोकड़ प्रवाहों की संस्था में निरन्तरता (Continuous Circulation of Cash Inflows)- रोकड़ व्यवसाय के लिए जीवन रक्त होता है। जिस तरह शरीर के स्वस्थ रहने के लिए रक्त का प्रवाह शरीर के सभी भागों निरन्तर बना रहना चाहिए तथा यदि यह शरीर के किसी भी भाग में रूक जाता है तब मृत्यु तक हो जाती है। ठीक इसी रोकड़ का प्रवाह व्यवसाय के सभी क्षेत्रों में निरन्तरता होना चाहिए। इस कार्य में रोकड़ प्रबन्ध बड़ा सहायक होता है।

4- संस्था की शोधन क्षमता (Solvency of the Firm) – एक संस्था शोधन क्षमता तभी रख सकती है जब वह अपने लेनदारों को उनकी राशि देय होने पर चुकाने की क्षमता रखती है यह तभी संभव है कि जब रोकड़ प्रबन्ध द्वारा संस्था में अनुकूल मात्रा में तरल कोष अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन आवश्यकताओं के लिए रखा जाय।

5- लाभ –हानि खातें में प्रकट न होने वाले परिवर्तनों व रोकड़ प्रवाहों की जानकारी (Knowledge of Other Changes and Cash Flows which are not reflected through profit and loss account)- बहुत से परिवर्तन जो लाभ हानि खाते से ज्ञात नहीं होते हैं वे परिवर्तन रोकड़ प्रवाह विवरण से ज्ञात हो सकते हैं जैसे पूंजी व्यय।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

6- मन्दी के समय सहायक (Helpful during recession) – रोकड़ प्रबन्ध रोकड़ की उन मात्राओं को बताता है जो मंदी के समय संस्था के पास उपलब्ध होंगे जिनका उपयोग संस्था कर सकती है।

7- समस्याओं पर गत्यात्मक दृष्टि से विचार (Dynamic view of problems)- रोकड़ प्रबन्ध न केवल वर्तमान बल्कि भविष्य में होने वाले परिवर्तनों को ध्यान में रखकर अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन पृथक–पृथक रोकड़ बजटों का निर्माण करता है तथा आकस्मिकताओं के लिए भी आवश्यक व्यवस्था की जाती है।

8- सुदृढ़ ऋण नीति (Sound debt policy) – प्रभावी रोकड़ प्रबन्ध अच्छे समय में जब फर्म की लाभदायकता ऊंची होती है तथा फर्म की शोधन क्षमता अच्छी होती है समता पर व्यापार की नीति (Policy of trading on equity) को अपनाकर सस्ती दर पर ऋण साधन प्राप्त करके समता अंशधारियों की आय में अधिक वृद्धि कर सकता है।

9- कम रोकड़ साधनों से अधिक कुशलता (More efficiency with less cash resources) – रोकड़ प्रबन्ध की प्रभावी व्यवस्था द्वारा रोकड़ अन्तर्वाहों तथा रोकड़ बहिर्वाहों में ऐसा सामंजस्य बैठाया जाता है जिससे संस्था न्यूनतम रोकड़ शेषों से अपनी क्रियाओं का संचालन करने में सफल हो जाती है।

10- एकीकृत योजना व पक्रियाएं (Integrated Planning and Procedures) – रोकड़ की आवश्यकता संस्था की सभी क्रियाओं एवं विभागों को होती है अतः रोकड़ प्रबन्ध की योजना तथा इसकी प्रक्रियाएं एकीकृत होती हैं तथा इनकी सफलता में सभी विभागों का योगदान होता है।

रोकड़ प्रबन्ध की सीमाएं (Limitations of Cash Management)-

रोकड़ प्रबन्ध और विशेषतः कठोर रोकड़ प्रबन्ध तथा अवास्तविक मान्यताओं युक्त रोकड़ प्रबन्ध संस्था के लिए अनेक कठिनाइयां उत्पन्न कर देता हैं –

1. **अनिश्चित भविष्य (Uncertain Future)-** जब संस्था अपनी भावी क्रियाओं के बारे में ठीक से अनुमान नहीं कर सकती है तो रोकड़ प्रबन्ध फर्म की सहायकता करने की अपेक्षा बाधायें अधिक उत्पन्न करता हैं।

2- मन्दी के अतिरिक्त अन्य तत्व (Factors other than recession)- रोकड़ बजट भावी तेजी या मन्दी का तो अनुमान लगता है परन्तु ग्राहकों के व्यवहार में बदलाव तकनीक में परिवर्तन तथा राजनीतिक परिवर्तन भी संस्था के भविष्य को प्रभावित करते हैं जिन पर यह विचार नहीं करता है।

3- वित्तीय दबाव (Financial distress) -एक संस्था की शोधन क्षमता वित्तीय साधनों की उपलब्धता पर निर्भर करती है तथा फर्म का दिवालियापन वित्तीय दबावों की पराकाष्ठा होती है। रोकड़ प्रबन्ध में होने वाली चूंके फर्म के वित्तीय दबावों को बढ़ा देती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

4- रोकड़ रखने की लागत (Cost of holding cash) –फर्म रोकड़ कोष अपने पास न रखकर उसका विनियोजन करके लाभ कमा सकता है। अतः रोकड़ रखने की लागत उस लाभ से वंचित होना है जो उसे विनियोजित करके कमाया जा सकता था।

उदाहरण–3

निम्नलिखित समंकों के आधार पर कलकत्ता फ्रूट कम्पनी लि. का जून, 2005 में समाप्य तिमाही के लिए रोकड़ बजट बनाइए तथा जून, 2005 के लिए उसकी रोकड़ आवश्यकताओं का अनुमान लगाइए–

(i) बिक्री फरवरी, 2005 : 25000 रू.

मार्च, 2005 : 20000 रू.

अप्रैल से जून, : 30000 रू. प्रतिमाह।

लगभग आधी बिक्री नकद में होती है। उधार का 90 प्रतिशत बिक्री के एक महीने पश्चातवसूल होता है और शेष राशि और भी एक महीने बाद।

(ii) 5 प्रतिशत नकद छूट का लाभ प्राप्त करने हेतु फल हमेशा नकद में क्रय किये जाते हैं। द्वितीय तिमाही (अप्रेल–जून) के लिए क्रय बजट 1 रूपया प्रति टोकरी की दर से 15000 टोकरियाँ प्रति महीना है।

(vi) द्वितीय तिमाही के लिए मजदूरी एवं वेतन का बजट 5000 रू. प्रति महीन है।

(vii) तिमाही के लिए निर्माणी एवं अन्य व्ययों के बजट इस प्रकार हैं–

नकद निर्माणी व्यय	4500 रू.
ह्रास	7500 रू.
विक्रय व्यय	3000 रू.
प्रशासनिक व्यय	2000 रू. (केवल अप्रैल व मई में)

On the basis of the data given below, prepare a cahs budget of Calcutta Fruit Co. Ltd. for the quarter ending June, 2005 and estimate its cash requirements for June, 2005: (i) Sales :

February, 2005	Rs. 25000
March, 2005	Rs. 20000
April to June, 2005	Rs. 30000 p.m.

Roughly half the sales are for cash. 90% of credit sales are collected in the month following the month of sale and the balance one month later.

(ii) Fruts are always bought for cash to avail of the cash discount of 5%. The purchases budget for the second quarter (April-June) was 15000 basekets per month @ Rs. 1 per basket.

(iii) Wages and salaries for second quarter were budgeted at Rs. 5000 per month.

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(iv) Manufacturing and other expenses budgeted for the quarter are as follows:

Cash Manufacturing Expenses	Rs. 4500
Depreciation	Rs. 7500
Selling Expenses	Rs. 3000
Administrative Expenses	Rs. 2000 (in April and May only)

Solution:

Cash Budged

Period-Three months ending June, 2005

Payments :			
(i) Cash Purchases			
Less Cash discount	14250	14250	14250
(ii) Wages and Salaries	5000	5000	5000
(iii) Cash Manufacturing Expenses (1/3 of Rs. 4500)	1500	1500	1500
(iv) Selling Expenses (1/3 of Rs. 3000)	1000	1000	1000
(v) Administration Expenses (1/2 of Rs. 2000 for April and May only)	1000	1000	----
Total (B)	22750	22750	21750
Closing Balance (A-B)	2500	9250	17500

Cash requirement for June 2005 : Rs. 21750

टिप्पणियाँ– (1) सूचना के अभाव में यह माना गया है कि अप्रैल माह के प्रारम्भ में रोकड़ शेष कुछ नहीं है।

(2) देनदारों से वसूली की गणना निम्न प्रकार की गई है–

Particulars	**April (Rs.)**	**May (Rs.)**	**June (Rs.)**
90% of the credit sales made one month ago	9000	13500	13500
10% of the credit sales made two months ago	1250	1000	1500
Total Collection	10250	14500	15000

(3) ह्रास की राशि को गैर–रोकड़ी व्यय होने के कारण सम्मिलित नहीं किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

Illustraion:

रिलायन्स लि. अप्रैल, 2005 से जून, 2005 की अवधि के लिए बैंक से अल्पकालिक अधिविकर्ष सुविधा लेना चाहते हैं। इस तिमाही के दौरान कम्पनी अधिकांशतः स्कन्ध के लिए निर्माण करेगी। निम्नलिखित समंको से प्रत्येक माह के अन्त में कम्पनी के लिए वांछित अधिविकर्ष की राशि बताते हुए रोकड़ बजट बनाइए–

Reliance Litd. wishes to approach the bankers for temporary overdraft facility for the period April, 2005 toJune, 2005. During this quarter, the company will be manufacturing mostly for stock. Prepare a Cash Budget for the above period from the following data, indicating the extent as the Bank facilities the company will require at the end of each month:

Months	Sales (Rs.)	Purchases (Rs.)	Wages (Rs.)
February	180000	124800	12000
March	192000	144000	14000
April	108000	243000	11000
May	174000	246000	10000
June	126000	268000	15000

(अ) उधार विक्रय का 50 प्रतिशत विक्रय` अगले महीने में वसूल हो जाता है तथा शेष 50 प्रतिशत अगले महीने में। लेनदारों को क्रय के एक महीने पश्चात् भुगतान किया जाता है।

(ब) 1 अप्रैल को अनुमानित बैंक शेष 25000 रू. है।

(a) 50% of the credit Sales are realised in the month following the sales and the remaining sales in the second month following the sales. The creditors are paid after one month of purchases.

(b) Cash at Bank on 1st April (estimated) Rs. 25000.

Solution:

Cash Budget

Period : April to June, 2005

	April (Rs.)	May (Rs.)	June (Rs.)
A. Receipt from Sales:			
50% of Sales two months ago	90000	96000	54000
50% of Sales one month ago	96000	54000	87000
	186000	144000	14000
B. Payments :			
Creditors	144000	243000	246000
Workers	11000	10000	15000
	155000	253000	261000
C. Balance (A-B)	31000	(-)103000	(-)120000
Opening Balance	25000	56000	---
Balance in Hand	56000	56000	---
Overdraft required	---	(-) 47000	(-) 120000
Cumulative Overdraft	----	----	(-) 167000

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्राप्यों का प्रबन्ध (Receivables Management)-

प्राप्यों के प्रबन्ध का अर्थ (Meaning of Receivables Management)

'साख व्यापार की जीवन रक्त है, इस कथन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जो महत्व मानव के शरीर में रक्त का है वही व्यापार में साख का है। वर्तमान प्रतिस्पर्धी युग में बिना साख–सुविधा प्रदान किये किसी फर्म का अस्तित्व में रहना मुश्किल ही नहीं असम्भव भी है। परन्तु उधार माल बेचने से पूंजी का एक महत्वपूर्ण भाग प्राप्यों में फंस जाता है जिससे न केवल ब्याज के रूप में नुकसान होता है वरन् डूबत ऋण के रूप में दोहरी जोखिम हो जाती है। अतः लाभों एवं लागतों का सावधानीपूर्वक अध्ययन कर इनमें सामंजस्य स्थापित करना ही प्राप्यों का प्रबन्ध कहलाता है।

प्राप्यों के प्रबन्ध का उद्देश्य (Objective of Receivables Management)

प्राप्यों के प्रबन्ध का मूल उद्देश्य प्राप्यों में विनियोजित राशि पर आधिकाधिक लाभों की प्राप्ति करना है अथवा जोखिम की मात्रा में कमी करते हुए अधिकाधिक विक्रय करना हैं एस.ई. बोल्टन के शब्दों में "प्राप्यों का प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य विक्रय एवं लाभों को उस बिन्दु तक बढ़ाना है जहां प्राप्यों में अतिरिक्त कोषों के विनियोग पर प्रत्याय उस अतिरिक्त साख के लिए प्राप्त कोषों की लागत अर्थात् पूंजी लागत से कम है।" अतः संक्षेप में प्राप्यों के प्रबन्ध के मुख्य उद्देश्य निम्नानुसार है–

- पर्याप्त मात्रा में विक्रय करना
- साख लागतों में कमी करना
- प्राप्यों में विनियोग को अनुकूलतम स्तर पर बनाए रखना
- विनियोजित राशि पर अधिकतम प्रत्यय प्राप्त करना
- जोखिम की मात्रा में कमी करना।

प्राप्यों के प्रबन्ध का क्षेत्र अथवा कार्य (Scope or Functions of Receivables Management)

प्राप्यों का सृजन उधार माल बेचने के कारण होता है। अतः प्राप्यों का प्रबन्ध साख विभाग द्वारा किया जाता है। प्राप्यों के प्रबन्ध हेतु साख विभाग द्वारा सर्वप्रथम यह निश्चित किया जाता है कि किन–किन ग्राहकों को उधार माल का विक्रय करना है तथा उधार माल की राशि का ग्राहकों की ऋणदेय क्षमता के आधार पर निर्धारण किया जाता है। इसके अतिरिक्त ऋण की वसूली, प्राप्यों में निवेश को अनुकूलतम स्तर पर रखना आदि कार्य भी साख विभाग द्वारा किये जाते हैं। प्राप्यों के प्रबन्ध के अन्तर्गत साख विभाग द्वारा सम्पादित निम्न कार्यों को सम्मिलित किया जाता है–

1. साख नीति का निर्धारण एवं मूल्यांकन

2- संग्रहण प्रक्रिया का निर्धारण

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3- साख आवेदकों का मूल्यांकन करना तथा

4- प्राप्यों का विश्लेषण एवं नियन्त्रण

स्कन्ध प्रबन्ध/नियन्त्रण (Inventory Management/Control)

स्कन्ध प्रबन्ध/नियन्त्रण (Meaning of Inventory Management/Control)

स्कन्ध नियन्त्रण दो शब्दो– स्कन्ध तथा नियन्त्रण से मिलकर बना हैं अतः स्कन्ध नियन्त्रण का अर्थ समझने के लिए आवश्यक है कि पहले इन दोनों शब्दों का अर्थ पृथक–पृथक समझाा जाये।

व्यापारिक संस्थाओं में स्कन्ध का आशय विक्रय के लिए उपलब्ध माल या वस्तुओं सेलिया जाता है जबकि निर्माणी संस्थाओं में स्कन्ध के अन्तर्गत कच्चा मकाल, अर्द्धनिर्मित माल व निर्मित माल सम्मिलित किया जाता है।

इस प्रकार स्कन्ध से अभिप्राय संस्था द्वारा विक्रय किये जाने वाले निर्मित उत्पाद एवं उस उत्पाद को निर्मित रूप तक पहुंचाने वाले तत्वों के संचय से है जिसमें मुख्यतः कच्चा माल एवं अर्द्धनिर्मित माल शामिल हैं।

विभिन्न संस्थाओं में स्कन्ध में शामिल की जाने वाली सम्पत्तियाँ निम्न हैं–

1. **कच्चा माल एवं आपूर्तियाँ (Raw Material and Supplies)**– निर्माणी संस्था के स्कन्ध का सबसे महत्वपूर्ण भाग कच्चा माल होता है, जो भावी उत्पादन हेतु संगृहीत किया जाता हे। इसकी अपर्याप्तता उत्पादन प्रक्रिया को बाधित कर सकती है।

2- अद्धनिर्मित माल (Work-in-Progress)– इसमें ऐसे माल को शामिल करते हैं जो वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर निर्माणी प्रक्रिया में होता है। अर्थात् जो कच्चे माल से निर्मित माल में परिवर्तन के चणों में कुछ चरणों को पार कर चुका होता है अर्थात् अर्द्धनिर्मित अवस्था में होता है।

3- निर्मित माल (Finished Goods)–व्यापारिक संस्थानों के लिए तो स्कन्ध का अभिप्राय ही निर्मित माल होता है जबकि निर्माणी संस्था में निर्मित माल से अभिप्राय उत्पादन प्रक्रिया के बाद विक्रय हेतु तैयार उत्पादों से होता है।

4- उपभोग्य सामग्री (Consumable Stores)– यद्यपि उपभोग्य सामग्री विक्रय के लिए नहीं होती है तथापि इसे स्कन्ध का भाग मानते हैं। उपभोग्य सामग्री से अभिप्राय उत्पादन क्रिया में मशीनों के रख–रखाव संचालन में काम में आने वाले कलपुर्जों एवं अन्य सामान से होता है।

नियन्त्रण का अर्थ (Meaning of Control) – स्कन्ध के सम्बन्ध में नियन्त्रण शब्द का प्रयोग निम्न दो अर्थों में किया जाता है–

1. इकाई अथवा भौतिक नियन्त्रण (Unit or Physical Control)

2- मूल्य नियन्त्रण (Value Control)

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

क्रम तथा उत्पादन विभागों का प्रमुख उद्देश्य उत्पादन हेतु आवश्यक मात्रा में सामग्री की व्यवस्था करना होता है, अतः वे स्कन्ध नियन्त्रण से आशय इकाई गत अथवा भौतिक नियन्त्रण से लेते हैं। स्कन्ध के भौतिक नियन्त्रण में क्रय, भण्डारण, स्कन्ध की सुरक्षा, चोरी, गवन तााि छीजत से बचाव तथा उचित निर्गमन व्यवस्था, इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। जबकि मूल्य नियन्त्रण का अभिप्राय स्कन्ध में विनियोजित राशि पर नियन्त्रण रखना है, अतः वित्तीय प्रबन्धक मूल्य नियन्त्रण पर अधिक बल देता है।

इस प्रकार स्कन्ध नियन्त्रण का अर्थ कच्चे माल, अर्द्धनिर्मित माल तथा निर्मित माल की मात्रा तथा इसमें विनियोजन को नियन्त्रित करने से होता है।

ध प्रबन्ध/नियन्त्रण के उद्देश्यों को निम्न बिन्दुओं में व्यक्त किया जा सकता है–

1. **कार्यशील पूंजी में न्यूनतम विनियोग हेतु (To make minimum investment in working capital)** – स्कन्ध नियन्त्रण कार्यशील पूंजी में न्यूनतम विनियोग के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए व्यवसाय में आवश्यकता के अनुरूप ही कच्चे माल एवं निर्मित माल का स्कन्ध रखता है। इस हेतु क्रय –उत्पादन– विक्रय चक्र की आवश्यकताओं का पहले अनुमान लगा लिया जाता है और उसके अनुरूप व्यवसाय में स्कन्ध के स्तर रखे जाते हैं।

2- उत्पादन प्रक्रिया में निरन्तरता बनाए रखना (To make continuous production process) – स्कन्ध प्रबन्ध का एक प्रमुख उद्देश्य उत्पादन प्रक्रिया में निरन्तरता को बनाए रखना होता है। इसके लिए स्कन्ध नियन्त्रण के अन्तर्गत भण्डार में उत्पादन प्रक्रिया के लिए आवश्यक स्कन्ध को बनाएं रखा जाता है। इस स्तर को निर्धारित करते समय विभिन्न आकस्मिकताओं के लिए भी प्रावधान रखा जाता है ताकि उत्पादन प्रक्रिया अनवरत चलती रहे।

3- क्रय एवं स्कन्ध लागतों को न्यूनतम रखने हेतु (To minimise Purchase and Inventory Cost) – स्कन्ध प्रबन्ध क्रय एवं विभिन्न स्कन्ध लागतों यथा आदेश लागत एवं संग्रहण लागतों आदि को न्यूनतम रखने हेतु क्रय की अनुकूलतम मात्रा का निर्धारण करता हैं इन लागतो ंको कम रखने के साथ–साथ स्कन्ध प्राप्ति समय को भी न्यूनतम रखने का प्रयास किया जाता है।

4- ग्राहकों को अच्छी सेवा देने हेतु (To provide better service to customers) –स्कन्ध पबन्ध का एक उद्देश्य ग्राहकों को अच्छी सेवा देना भी है। ग्राहकों को अच्छडी सेवा दउेने के लिए कच्चे माल एवं निर्मित माल का पर्याप्त स्कन्ध रख जाता है ताकि ग्राहकों का निष्पादन शीघ्रता से किया जा सके।

5- हानि की जोखिम कम करने हेतु (To minimise risk of loss) –स्कन्ध नियन्त्रण बेहतर स्कन्ध प्रबन्धन के द्वारा माल के अप्रचलन, चोरी, क्षय, संकुचन, छीजत एवं बर्वादी को रोक कर स्कन्ध सम्बन्धी हानि की जोखमों को भी कम करता है। इस हेतु स्कन्ध के स्तर का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि हानि की जोखिम अपने न्यूनतम स्तर पर रहे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्कन्ध रखने की आवश्यकता (Need to Hold Inventories) – किसी भी व्यावसायकि संस्थान में स्कन्ध रखने पर व्यवसा को संग्रहण लागत तथा आवागमन लागत वहन करनी होती है। इसके बावजूद भी प्रत्येक संस्था पर्याप्त मात्रा में स्कन्ध रखती है। ऐसा निम्नलिखित कारण से किया जाता है–

1. **निर्बाध उत्पादन के लिए (For Non-stop Production)** – पर्याप्त मात्रा में स्कन्ध न होने पर उत्पादन कार्य में रूकावट उत्पन्न हो सकती है, अतः उत्पादन कार्य निरन्तर चालू रखने के लिए यह आवश्यक है कि पर्याप्त मात्रा में स्कन्ध रखा जाए।

2- आदेश लागतें कम करने के लिए (For Less Ordering Cost) – कच्चे माल का क्रय आदेश देने पर संस्था को आदेश लागतें वहन करनी होती है। छोटी–छोटी मात्रा में कच्चे माल का क्रय करने पर आदेश लागतें बढ़ जाती हैं अतः आदेश लागतों को कम करने के लिए पर्याप्त मात्रा में कच्चे माल का क्रय कर लिया जाता है।

3- मात्रा छूट पाने के लिए (To take Volume Discount)– यदि मात्रा छूट की राशि संग्रहण लागत व आदेश लागत के योग से अधिक है तो ऐसी स्थिति में मात्रा छूट का लाभ लेने हेतु अधिक मात्रा में माल का क्रय लिया जाता है।

4- बिक्री की हानि से बचने के लिए (To Avoid Sales Losses)– स्कन्ध की मात्रा में कमी होने पर यह सम्भव है कि उत्पादन पर्याप्त मात्रा में न हो जिससे बिक्री हेतु माच समय पर उपलब्ध न हो अतः माल की अनुपलब्धता के ाकरण होने वाली विक्रय हानि से बचने के लिए माच का स्कन्ध पर्याप्त मात्रा में रखा जाता है।

5- उत्पादन क्षमता का समुचित उपयोग करने के लिए (To Use of Production Capacity Properly)– उत्पादन क्षमता का समुचित उपयोग करने के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन क्षमता के अनुरूप कच्चे माल का भण्डार रखा जावे। इस हेतु आकस्मिकताओं को ध्यान में रखते हुए कच्चे माल का पर्याप्त भण्डार रखा जाता है।

6- आकस्मिकताओं का सामना करने हेतु (To Meet Contingencies/Unforseen Circumstance)– व्यवसाय में पर्याप्त स्कन्ध व्यवसाय को विभिनन आकस्मिकताओं जैसे माल के आपूर्तिकर्ताओं की हड़ताल, परिवहन के साधनों की हड़ताल, आपूर्ति में कमी आदि का सामना करने के योग्य बनाता है।

7- अनुकूल अवसरों का लाभ प्राप्त करने हेतु (To Get Advantage of Favourable or Sudden Opportunities)– स्कन्ध की पर्याप्त मात्रा संस्था को अनुकूल अवसरों का लाभ लेने के लिए योग्य बनाती है। संस्था नए ग्राहकों के आदेश स्वीकार कर सकती है। विदेशी बाजारों का विदोहन करने के अवसरों को भुना सकती है।

8- विन्डो ड्रेसिंग एवं ख्याति हेतु (For Window dressing and Goodwill)– संस्था में पर्याप्त स्कन्ध उसकी ख्याति को बढ़ाता है साथ ही उसकी आदेशों की पूर्ति की सुदृढ़ता को भी व्यक्त करता है।

स्कन्ध की मात्रा पर्याप्त रखने पर संस्था को उपर्युक्त वर्णित लाभ प्राप्त होते हैं–लेकिन आवश्यकता से अधिक सामग्री या स्कन्ध का संग्रहण हो जाने की स्थिति में संस्था को निम्न हानियाँ हो सकती है–

1. कोषों का अनावश्यक विनियोग
2. भण्डारण लागत में वृद्धि
3. स्कन्ध की मात्रा में ह्रास
4. तरलता की हानि

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun